मानसरोवर

[भाग २]

लेखक

प्रेमचन्द

सरस्वती प्रेस बनारस

विषय-सूची

कुसुम

साल-भर की बात है, एक दिन शाम को हवा खाने जा रहा था कि महाशय नवीन से मुलाकात हो गई। मेरे पुराने दोस्त हैं, बड़े बेतकल्लुफ और मनचले। आगरे मकान है, अच्छे कवि हैं। उनके कवि समाज मे कई बार शरीक हो चुका हूँ। ऐसा कविता का उपासक मैंने नहीं देखा। पेशा तो वकालत है, पर डूबे रहते हैं काव्य-चिन्तन में। आदमी ज़हीन हैं, मुकदमा सामने आया और उसकी तह तक पहुँच गये, इसलिए कभी-कभी मुक़दमे मिल जाते हैं, लेकिन कचहरी के बाहर अदालत या मुकदमे की चर्चा उनके लिए निषिद्ध है। आदलत की चारदीवारी के अन्दर चार-पाँच घण्टे वह वकील होते हैं। चारदीवारी के बाहर निकलते ही कवि हैं सिर से पाँव तक। जब देखिए, कवि-मण्डल जमा है, कवि-चर्चा हो रही है, रचनाएँ सुन रहे हैं, मस्त हो-होकर झूम रहे हैं, और अपनी रचना सुनाते समय तो उन पर एक तल्लीनता-सी छा जाती है। कण्ठ-स्वर भी इतना मधुर है कि उनके पद बाण की तरह सीधे कलेजे में उतर जाते है। अध्यात्म मे माधुर्य की सृष्टि करना, निर्गुण मे सगुण की बहार दिखाना उनकी रचनाओं की विशेषता है। वह जब लखनऊ आते हैं, मुझे पहले सूचना दे दिया करते हैं। आज उन्हें अनायास लखनऊ मे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। पूछा—आप यहाँ कैसे? कुशल तो है? मुझे आने की सूचना तक न दी।

बोले—भाई जान, एक जंजाल मे फँस गया हूँ। आपको सूचित करने का समय न था। फिर आपके घर को मैं अपना घर समझता हूँ। इस तकल्लुफ की क्या ज़रूरत है कि आप मेरे लिए कोई विशेष प्रबन्ध करें। मैं एक जरूरी मुआमले मे आपको कष्ट देने आया हूँ। इस वक्त की सैर को स्थगित कीजिए और चलकर मेरी विपत्ति-कथा सुनिए।

मैंने घबड़ाकर कहा—आपने तो मुझे चिन्ता मे डाल दिया। आप और विपत्ति-कथा! मेरे प्राण सूखे जाते हैं।

'घर चलिए, चित्त शान्त हो तो सुनाऊँ।'

'बाल बच्चे तो अच्छी तरह हैं ?'

'हाँ, सब अच्छी तरह हैं। वैसी कोई बात नहीं है।'

'तो चलिए, रेस्ट्राँ मे कुछ जलपान तो कर लीजिए।'

'नहीं भाई, इस वक्त मुझे जलपान नहीं सूझता।'

हम दोनों घर की ओर चले।

घर पहुँचकर मैंने उनका हाथ-मुँह धुलाया, शरबत पिलाया। इलायची-पान खाकर उन्होंने अपनी विपत्ति-कथा सुनानी शुरु की—

'कुसुम के विवाह मे तो आप गये ही थे। उसके पहले भी आपने उसे देखा था। मेरा विचार है कि किसी सरल प्रकृति के युवक को आकर्षित करने के लिए जिन गुणों की ज़रूरत है वह सब उसमें मौजूद हैं। आपका क्या खयाल है ?'

मैंने तत्परता से कहा—मैं आपसे कहीं ज़्यादा कुसुम का प्रशसक हूँ। ऐसी लज्जाशील, सुघड़, सलीकेदार और विनोदिनी बालिका मैंने दूसरी नहीं देखी।

महाशय नवीन ने करुण स्वर मे कहा—वही कुसुम आज अपने पति के निर्दय व्यवहार के कारण रो-रोकर प्राण दे रही है। उसका गौना हुए एक साल हो रहा है। इस बीच मे वह तीन बार ससुराल गई, पर उसका पति उससे बोलता ही नहीं। उसकी सूरत से बेज़ार है। मैंने बहुत चाहा कि उसे बुलाकर दोनो मे सफाई करा दूँ, मगर न आता है, न मेरे पत्रो का उत्तर देता है। न-जाने ऐसी क्या गाँठ पड़ गई है कि उसने इस बेदर्दी से आँखें फेर लीं। अब सुनता हूँ, उसका दूसरा विवाह होनेवाला है। कुसुम का बुरा हाल हो रहा है। आप शायद उसे देखकर पहचान भी न सकें। रात-दिन रोने के सिवा दूसरा काम नहीं है। इससे आप हमारी परेशानी का अनुमान कर सकते हैं। ज़िन्दगी की सारी अभिलाषाएँ मिटी जाती हैं। हमे ईश्वर ने पुत्र न दिया; पर हम अपनी कुसुम को पाकर सतुष्ट थे और अपने भाग्य को धन्य मानते थे। उसे कितने लाड़-प्यार से पाला, कभी उसे फूल की छड़ी से भी न छुआ। उसकी शिक्षा-दीक्षा मे कोई बात उठा न रखी। उसने बी० ए० नहीं पास किया; लेकिन विचारों की प्रौढता और ज्ञान-विस्तार में किसी ऊँचे दर्जे की शिक्षिता महिला से कम नहीं। आपने उसके लेख देखे हैं। मेरा खयाल है, बहुत कम देवियाँ वैसे लेख लिख सकती हैं। समाज, धर्म, नीति, सभी विषयो मे उसके विचार बड़े परिष्कृत हैं। बहस

करने मे तो वह इतनी पटु है कि मुझे आश्चर्य होता है। गृह-प्रवन्ध में इतनी कुशल कि मेरे घर का प्राय. सारा प्रवन्ध उसीके हाथ में था ; किन्तु पति की दृष्टि मे वह पाँव की धूल के बराबर भी नहीं। वार-वार पूछता हूँ, तूने उसे कुछ कह दिया है, या क्या वात है ? आखिर वह क्यों तुझसे उदासीन है ? इसके जवाव मे रोकर यही कहती है—'मुझसे तो उन्होंने कभी कोई बातचीत ही नहीं की।' मेरा विचार है कि पहले ही दिन दोनों मे कुछ मनमुटाव हो गया। वह कुसुम के पास आया होगा और उससे कुछ पूछा होगा। उसने मारे शर्म के जवाव न दिया होगा। सम्भव है, उसने दो-चार वातें और भी की हों। कुसुम ने सिर न उठाया होगा। आप जानते ही हैं, वह कितनी शर्मीली है। बस पतिदेव रूठ गये होंगे। मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकता कि कुसुम-जैसी बालिका से कोई पुरुष उदासीन रह सकता है ; लेकिन दुर्भाग्य को कोई क्या करे। दुखिया ने पति के नाम कई पत्र लिखे, पर उस निर्दयी ने एक का भी जवाब न दिया। सारी चिट्ठियाँ लौटा दीं। मेरी समझ में नहीं आता कि उस पाषाण-हृदय को कैसे पिघलाऊँ। मैं अब खुद तो उसे कुछ लिख नहीं सकता। आप ही कुसुम की प्राण-रक्षा करें, नहीं शीघ्र ही उसके जीवन का अन्त हो जायगा, और उसके साथ हम दोनों प्राणी भी सिधार जायँगे। उसकी व्यथा अब नहीं देखी जाती।

नवीनजी की आँखें सजल हो गईं। मुझे भी अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्हें तसल्ली देता हुआ बोला—आप इतने दिनों इस चिन्ता में पड़े रहे, मुझसे पहले ही क्यों न कहा - मैं आज ही मुरादाबाद जाऊँगा और उस लौंडे की इस बुरी तरह खबर लूँगा कि वह भी याद करेगा। बचा को जबरदस्ती घसीटकर लाऊँगा और कुसुम के पैरों पर गिरा दूँगा।

नवीनजी मेरे आत्मविश्वास पर मुस्कराकर बोले—आप उनसे क्या कहेंगे ?

'यह न पूछिए। वशीकरण के जितने मन्त्र हैं, उन सभी की परीक्षा करूँगा।'

'तो आप कदापि सफल न होंगे। वह इतना शीलवान, इतना विनम्र, इतना प्रसन्न-मुख है, इतना मधुर-भाषी कि आप वहाँ से उसके भक्त होकर लौटेंगे। वह नित्य आपके सामने हाथ बांधे खड़ा रहेगा। आपकी सारी कठोरता शान्त हो जायगी। आपके लिए तो एक ही साधन है। आपके कलम में जादू है! आपने कितने ही युवकों को सन्मार्ग पर लगाया है। हृदय में सोई हुई मानवता को जगाना आपका हिस्सा है। मैं चाहता हूँ, आप कुसुम की ओर से एक ऐसा करुणा-जनक, ऐसा दिल

हिला देनेवाला पत्र लिखें कि वह लज्जित हो जाय और उसकी प्रेम-भावना सचेत हो उठे। मैं जीवन-पर्यन्त आपका आभारी रहूँगा।'

नवीनजी कवि ही तो ठहरे। इस तजवीज में वास्तविकता की अपेक्षा कवित्व ही की प्रधानता थी। आप मेरे कई गल्पों को पढकर रो पड़े हैं, इससे आपको विश्वास हो गया है कि मैं चतुर सँपेरे की भाँति जिस दिल को चाहूँ, नचा सकता हूँ। आपको यह मालूम नहीं कि सभी मनुष्य कवि नहीं होते, और न एक-से भावुक। जिन गल्पों को पढकर आप रोये हैं, उन्हीं गल्पों को पढकर कितने ही सज्जनों ने विरक्त होकर पुस्तक फेंक दी है। पर इन बातों का वह अवसर न था। वह समझते कि मैं अपना गला छुड़ाना चाहता हूँ, इसलिए मैंने सहृदयता से कहा—आपको बहुत दूर की सूझी है और मैं उस प्रस्ताव से सहमत हूँ, और यद्यपि आपने मेरी करुणोत्पादक शक्ति का अनुमान करने में अत्युक्ति से काम लिया है; लेकिन मैं आपको निराश न करूँगा। मैं पत्र लिखूँगा और यथाशक्ति उस युवक की न्याय-बुद्धि को जगाने की चेष्टा भी करूँगा, लेकिन आप अनुचित न समझें तो पहले मुझे वह पत्र दिखा दें, जो कुसुम ने अपने पति के नाम लिखे थे। उसने पत्र तो लौटा ही दिये हैं और यदि कुसुम ने उन्हें फाड़ नहीं डाला है, तो उसके पास होंगे। उन पत्रों को देखने से मुझे ज्ञात हो जायगा कि किन पहलुओं पर लिखने की गुञ्जाइश बाकी है।

नवीनजी ने जेब से पत्रों का एक पुलिन्दा निकालकर मेरे सामने रख दिया और बोले—मैं जानता था, आप इन पत्रों को देखना चाहेंगे, इसलिए इन्हे साथ लेता आया। आप इन्हें शौक़ से पढें। कुसुम जैसी मेरी लड़की है, वैसी ही आपकी भी लड़की है। आपसे क्या परदा!

सुगन्धित, गुलाबी, चिकने कागज पर बहुत ही सुन्दर अक्षरों मे लिखे हुए उन पत्रों को मैंने पढना शुरू किया—

पहला पत्र

मेरे स्वामी, मुझे यहाँ आये एक सप्ताह हो गया; लेकिन आँखें पल भर के लिए भी नहीं झपकीं। सारी रात करवटें बदलते बीत जाती है। वार-बार सोचती हूँ, मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ कि उसकी आप मुझे यह सज़ा दे रहे हैं। आप मुझे झिड़कें, घुड़कें, कोसें, इच्छा हो तो मेरे कान भी पकड़ें। मैं इन सभी सज़ाओं को सहर्ष सह लूँगी; लेकिन यह निष्ठुरता नहीं सही जाती। मैं आपके घर एक सप्ताह रही। पर-

मात्मा जानता है कि मेरे दिल में क्या-क्या अरमान थे। मैंने कितनी बार चाहा कि आपसे कुछ पूछूँ, आपसे अपने अपराधों को क्षमा कराऊँ; लेकिन आप मेरी परछाईं से भी दूर भागते थे। मुझे कोई अवसर न मिला। आपको याद होगा कि जब दोपहर को सारा घर सो जाता था, तो मैं आपके कमरे में जाती थी और घण्टों सिर झुकाये खड़ी रहती थी, पर आपने कभी आँख उठाकर न देखा। उस वक्त मेरे मन की क्या दशा होती थी, इसका कदाचित् आप अनुमान न कर सकेंगे। मेरी जैसी अभागिनी स्त्रियाँ इसका कुछ अन्दाज़ कर सकती हैं। मैंने अपनी सहेलियों से उनकी सोहागरात की कथाएँ सुन-सुनकर अपनी कल्पना में सुखों का जो स्वर्ग बनाया था, उसे आपने कितनी निर्दयता से नष्ट कर दिया!

मैं आपसे पूछती हूँ, क्या आपके ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है? अदालत भी किसी अपराधी को दण्ड देती है, तो उस पर कोई-न-कोई अभियोग लगाती है। गवाहियाँ लेती है, उसका बयान सुनती है। आपने तो कुछ पूछा ही नहीं, मुझे अपनी खता मालूम हो जाती, तो आगे के लिए सचेत हो जाती। आपके चरणों पर गिरकर कहती, मुझे क्षमा-दान दो। मैं शपथ-पूर्वक कहती हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम, आप क्यों रुष्ट हो गये। सम्भव है, आपने अपनी पत्नी में जिन गुणों को देखने की कामना की हो वह मुझमें न हो। बेशक मैं अङ्गरेजी नहीं पढ़ी, अङ्गरेजी-समाज की रीति-नीति से परिचित नहीं, न अङ्गरेजी खेल ही खेलना जानती हूँ। और भी कितनी ही त्रुटियाँ मुझमें होंगी। मैं मानती हूँ कि मैं आपके योग्य न थी। आपको मुझसे कहीं अधिक रूपवती, बुद्धिमती स्त्री मिलनी चाहिए थी, लेकिन मेरे देवता, दण्ड अपराधों का मिलना चाहिए, त्रुटियों का नहीं। फिर मैं तो आपके इशारे पर चलने को तैयार हूँ। आप मेरी दिलजोई करें, फिर देखिए, मैं अपनी त्रुटियों को कितनी जल्द पूरा कर लेती हूँ। आपका प्रेम-कटाक्ष मेरे रूप को प्रदीप्त, मेरी बुद्धि को तीव्र और मेरे भाग्य को बलवान कर देगा। वह विभूति पाकर मेरी कायाकल्प हो जायगी।

स्वामी, क्या आपने सोचा है, आप यह क्रोध किस पर कर रहे हैं? वह अबला, जो आपके चरणों पर पड़ी हुई आपसे क्षमा-दान माँग रही है, जो जन्म-जन्मान्तर के लिए आपकी चेरी है, क्या इस क्रोध का सहन कर सकती है? मेरा दिल बहुत कम-ज़ोर है। मुझे रुलाकर आपको पश्चात्ताप के सिवा और क्या हाथ आयेगा! इस क्रोधाग्नि की एक चिनगारी मुझे भस्म कर देने के लिए काफी है; अगर आपकी

यही इच्छा है कि मैं मर जाऊँ, तो मैं मरने के लिए तैयार हूँ। केवल आपका इशारा चाहती हूँ। अगर मेरे मरने से आपका चित्त प्रसन्न हो, तो मैं बड़े हर्ष से अपने को आपके चरणों पर समर्पित कर दूँगी। मगर इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि मुझमें सौ ऐब हों, पर एक गुण भी है—मुझे दावा है कि आपकी जितनी सेवा मैं कर सकती हूँ, उतनी कोई दूसरी स्त्री नहीं कर सकती। आप विद्वान् हैं, उदार हैं, मनोविज्ञान के पण्डित हैं, आपकी लौंडी आपके सामने खड़ी दया की भीख माँग रही है। क्या उसे द्वार से ठुकरा दीजिएगा ?

आपकी अपराधिनी,

—कुसुम

यह पत्र पढ़कर मुझे रोमाञ्च हो आया। यह बात मेरे लिए असह्य थी कि कोई स्त्री अपने पति की इतनी ख़ुशामद करने पर मजबूर हो जाय। पुरुष अगर स्त्री से उदासीन रह सकता है, तो स्त्री क्यों उसे नहीं ठुकरा सकती ? यह दुष्ट समझता है कि विवाह ने एक स्त्री को उसका गुलाम बना दिया। वह उस अबला पर जितना अत्याचार चाहे करे, कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता, कोई चूँ भी नहीं कर सकता। पुरुष अपनी दूसरी, तीसरी, चौथी शादी कर सकता है, स्त्री से कोई सम्बन्ध न रखकर भी उस पर उसी कठोरता से शासन कर सकता है। वह जानता है कि स्त्री कुल-मर्यादा के बन्धनों में जकड़ी हुई है, उसे रो-रोकर मर जाने के सिवा और कोई उपाय नहीं, अगर उसे भय होता कि औरत भी उसकी ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, ईंट से भी नहीं, केवल थप्पड़ से दे सकती है, तो उसे कभी इस बदमिजाजी का साहस न होता। बेचारी स्त्री कितनी विवश है। शायद मैं कुसुम की जगह होता, तो इस निष्ठुरता का जवाब इसकी दसगुनी कठोरता से देता। उसकी छाती पर मूँग दलता। संसार के हँसने की जरा भी चिन्ता न करता। समाज अबलाओं पर इतना जुल्म देख सकता है और चूँ तक नहीं करता, उसके रोने या हँसने की मुझे जरा भी परवाह न होती। अरे अभागे युवक ! तुझे खबर नहीं, तू अपने भविष्य की गर्दन पर कितनी बेदर्दी से छुरी फेर रहा है ! यह वह समय है, जब पुरुष को अपने प्रणय-भण्डार से स्त्री के माता-पिता, भाई-बहन, सखियाँ-सहेलियाँ, सभी के प्रेम की पूर्ति करनी पड़ती है, अगर पुरुष में यह सामर्थ्य नहीं है, तो स्त्री की क्षुधित आत्मा को कैसे सन्तुष्ट रख सकेगा। परि-

णाम वही होगा, जो बहुधा होता है। अबला कुढ़-कुढ़कर मर जाती है। यही वह समय है, जिसकी स्मृति जीवन मे सदैव के लिए मिठास पैदा कर देती है। स्त्री की प्रेम-क्षुधा इतनी तीव्र होती है कि वह पति का स्नेह पाकर अपना जीवन सफल समझती है, और इस प्रेम के आधार पर जीवन के सारे कष्टों को हँस-खेलकर सह लेती है। यह वह समय है, जब हृदय मे प्रेम का वसन्त आता है और उसमें नयी-नयी आशा-कोपलें निकलने लगती हैं। ऐसा कौन निर्दयी है, जो इस ऋतु में उस वृक्ष पर कुल्हाड़ा चलायेगा! यही वह समय है, जब शिकारी किसी पक्षी को उसके बसेरे से लाकर पिंजरे मे बन्द कर देता है। क्या वह उसकी गर्दन पर छुरी चलाकर उसका मधुर गान सुनने की आशा रखता है? मैंने दूसरा पत्र पढना शुरू किया।

(२)

दूसरा पत्र

मेरे जीवन-धन, दो सप्ताह जवाब की प्रतीक्षा करने के बाद आज फिर यह उल-हना देने बैठी हूँ। जब मैंने यह पत्र लिखा था, तो मेरा मन गवाही दे रहा था कि उसका उत्तर ज़रूर आयेगा। आशा के विरुद्ध आशा लगाये हुए थी। मेरा मन अब भी इसे स्वीकार नहीं करता कि जान-बूझकर उसका उत्तर नहीं दिया। कदाचित् आपको अवकाश नहीं मिला, या ईश्वर न करे, कहीं आप अस्वस्थ तो नहीं हो गये? किससे पूछूँ? इस विचार से ही मेरा हृदय काँप रहा है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आप प्रसन्न और स्वस्थ हों, पत्र मुझे न लिखें, न सही, रोकर चुप हो तो हो जाऊँगी। आपको ईश्वर का वास्ता है; अगर आपको किसी प्रकार का कष्ट हो, तो मुझे तुरन्त पत्र लिखिए, मैं किसीको साथ लेकर आ जाऊँगी। मर्यादा और परिपाटी के बन्धनों से मेरा जी घबराता है, ऐसी दशा मे भी यदि आप मुझे अपनी सेवा से वञ्चित रखते हैं, तो आप मुझसे मेरा वह अधिकार छीन रहे हैं, जो मेरे जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु है। मैं आपसे और कुछ नहीं माँगती, आप मुझे मोटे-से-मोटा खिलाइए, मोटे से मोटा पहनाइए, मुझे ज़रा भी शिकायत न होगी। मैं आपके साथ घोर-से-घोर विपत्ति मे भी प्रसन्न रहूँगी। मुझे आभूषणों की लालसा नहीं, महल मे रहने की लालसा नहीं, सैर तमाशे की लालसा नहीं, धन बटोरने की लालसा नहीं। मेरे जीवन का उद्देश्य केवल आपकी सेवा करना है। यही उसका ध्येय है। मेरे लिए दुनिया मे कोई देवता नहीं, कोई गुरु नहीं, कोई हाकिम नहीं। मेरे देवता आप हैं,

मेरे गुरु आप हैं, मेरे राजा आप हैं। मुझे अपने चरणों से न हटाइए, मुझे ठुकराइए नहीं। मैं सेवा और प्रेम के फूल लिये, कर्तव्य और व्रत की भेंट अञ्चल में सजाये आपकी सेवा मे आई हूँ। मुझे इस भेंट को, इन फूलों को अपने चरणों पर रखने दीजिए। उपासक का काम तो पूजा करना है। देवता उसकी पूजा स्वीकार करता है या नहीं, यह सोचना उसका धर्म नहीं।

मेरे सिरताज, शायद आपको पता नही, आजकल मेरी क्या दशा है। यदि मालूम होता तो आप इस निष्ठुरता का व्यवहार न करते। आप पुरुष हैं, आपके हृदय में दया है, सहानुभूति है, मैं विश्वास नहीं कर सकती कि आप मुझ-जैसी नाचीज पर क्रोध कर सकते हैं। मैं आपकी दया के योग्य हूँ — कितनी दुर्बल, कितनी अपङ्ग, कितनी बेज़बान। आप सूर्य हैं, मैं अणु हूँ, आप अग्नि हैं, मै तृण हूँ, आप राजा हैं, मैं भिखारिन हूँ। क्रोध तो बराबरवालों पर करना चाहिए, मैं भला आपके क्रोध का आघात कैसे सह सकती हूँ? अगर आप समझते हैं कि मैं आपकी सेवा के योग्य नहीं हूँ, तो मुझे अपने हाथों से विष का प्याला दे दीजिए। मैं उसे सुधा समझकर सिर और आँखो से लगाऊँगी और आँखें बन्द करके पी जाऊँगी। जब यह जीवन आपकी भेंट हो गया, तो आप इसे मारें या जिलायें, यह आपकी इच्छा है। मुझे यही सन्तोष काफी है कि मेरी मृत्यु से आप निश्चिन्त हो गये। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि मैं आपकी हूँ और सदैव आपकी रहूँगी, इस जीवन में ही नहीं, बल्कि अनन्त तक।

अभागिनी,

—कुसुम

यह पत्र पढ़कर मुझे कुसुम पर भी झुँझलाहट आने लगी और उस लौंडे से तो घृणा हो गई। माना, तुम स्त्री हो, आजकल के प्रथानुसार पुरुष को तुम्हारे ऊपर हर तरह का अधिकार है ; लेकिन नम्रता की भी तो कोई सीमा होती है? स्त्री मे कुछ तो मान, कुछ तो अकड़ होनी चाहिए। अगर पुरुष उससे ऐंठता है, तो उसे भी चाहिए कि उसकी बात न पूछे। स्त्रियो को धर्म और त्याग का पाठ पढा-पढाकर हमने उनके आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास दोनों ही का अन्त कर दिया, अगर पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं, तो स्त्री पुरुष की मुहताज क्यो हो? ईश्वर ने पुरुष को हाथ दिये हैं, तो क्या स्त्री को उससे वञ्चित रखा है? पुरुष के पास बुद्धि है, तो क्या स्त्री अबोध है? इसी नम्रता ने तो मरदों का मिज़ाज आसमान पर पहुँचा दिया। पुरुष रूठ गया

तो स्त्री के लिए मानो प्रलय आ गया। मैं तो समझता हूँ, कुसुम नहीं, उसका अभागा पति दया के योग्य है, जो कुसुम-जैसी स्त्री-रत्न की कद्र नहीं कर सकता। मुझे ऐसा सन्देह होने लगा कि इस लौंडे ने कोई दूसरा रोग पाल रखा है। किसी शिकारी के रङ्गीन जाल में फँसा हुआ है।

खैर, मैंने तीसरा पत्र खोला—

तीसरा पत्र

प्रियतम, अब मुझे मालूम हो गया कि मेरी ज़िन्दगी निरुद्देश्य है। जिस फूल को देखनेवाला, चुननेवाला कोई नहीं, वह खिले तो क्यों? क्या इसी लिए कि मुरझा-कर ज़मीन पर गिर पड़े और पैरों से कुचल दिया जाय? मैं आपके घर में एक महीना रहकर दोबारा आई हूँ। ससुरजी ही ने मुझे बुलाया, ससुरजी ही ने मुझे बिदा कर दिया। इतने दिनों में आपने एक बार भी मुझे दर्शन न दिये। आप दिन मे बीसों हो बार घर मे आते थे, अपने भाई-बहनों से हँसते-बोलते थे, या मित्रों के साथ सैर-तमाशे देखते थे, लेकिन मेरे पास आने को आपने कसम खा ली थी। मैंने कितनी बार आपके पास सन्देशे भेजे, कितना अनुनय-विनय किया, कितनी बार बेशर्मी करके आपके कमरे मे गई; लेकिन आपने कभी मुझे आँख उठाकर भी न देखा। मै तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि कोई प्राणी इतना हृदयहीन हो सकता है। मैं प्रेम के योग्य नहीं, विश्वास के योग्य नहीं, सेवा करने के भी योग्य नहीं, तो क्या दया के भी योग्य नहीं? मैंने उस दिन कितनी मेहनत और प्रेम से आपके लिए रसगुल्ले बनाये थे। आपने उन्हे हाथ से छुआ भी नहीं। जब आप मुझसे इतने विरक्त हैं, तो मेरी समझ मे नही आता कि जीकर क्या करूँ। न जाने वह कौन-सी आशा है, जो मुझे जीवित रखे हुए है। क्या अन्धेर है कि आप सज़ा तो देते हैं, पर अपराध नहीं बतलाते! यह कौन-सी नीति है! आपको ज्ञात है, इस एक मास में मैंने मुश्किल से दस दिन आपके घर में भोजन किया होगा। मैं इतनी कमज़ोर हो गई हूँ कि चलती हूँ तो आँखो के सामने अँधेरा छा जाता है। आँखों में जैसे ज्योति ही नहीं रही। हृदय मे मानो रक्त का सचालन ही नहीं रहा। खैर, सता लीजिए, जितना जी चाहे, इस अनीति का अन्त भी एक दिन हो ही जायगा। अब तो मृत्यु ही पर सारी आशाएँ टिकी हुई हैं। अब मुझे प्रतीत हो रहा है कि मेरे मरने की खबर पाकर आप उछ-लेंगे और हल्की सांस लेंगे, आपकी आँखों से आँसू की एक बूँद भी न गिरेगी; पर

यह आपका दोष नहीं, मेरा दुर्भाग्य है। उस जन्म मे मैंने कोई बहुत बड़ा पाप किया था। मैं चाहती हूँ, मैं भी आपकी परवाह न करूँ, आप ही को भाँति आपसे आँखें फेर लूँ, मुँह फेर लूँ, दिल फेर लूँ, लेकिन न-जाने क्यों मुझमें वह शक्ति नहीं है। क्या लता वृक्ष की भाँति खड़ी रह सकती है? वृक्ष के लिए किसी सहारे की ज़रूरत नही। लता वह शक्ति कहाँ से लाये? वह तो वृक्ष से लिपटने के लिए पैदा की गई है। उसे वृक्ष से अलग कर दो और वह सूख जायगी। मैं आपसे पृथक् अपने अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकती। मेरे जीवन की हर एक गति, प्रत्येक विचार, प्रत्येक कामना मे आप मौजूद होते हैं। मेरा जीवन वह वृक्ष है, जिसके केन्द्र आप हैं। मैं वह हार हूँ, जिसके प्रत्येक फूल मे आप धागे की भाँति घुसे हुए हैं। उस धागे के बग़ैर हार के फूल बिखर जायँगे और धूल मे मिल जायँगे।

मेरी एक सहेली है शन्नो। उसका इस साल पाणिग्रहण हो गया है। उसका पति जब ससुराल आता है, शन्नो के पाँव जमीन पर नही पड़ते। दिन-भर में न-जाने कितने रूप बदलती है। मुख-कमल खिल जाता है। उल्लास सँभाले नहीं सँभलता। उसे बिखेरती, लुटाती चलती है, हम जैसे अभागो के लिए। जब आकर मेरे गले मे लिपट जाती है, तो हर्ष और उन्माद की वर्षा मे जैसे मैं लथपथ हो जाती हूँ। दोनों अनुराग से मतवाले हो रहे हैं। उनके पास धन नहीं है, जायदाद नहीं है। मगर अपनी दरिद्रता मे ही मगन हैं। इस अखण्ड प्रेम का एक क्षण! उसकी तुलना मे ससार की कौन-सी वस्तु रखी जा सकती है? मैं जानती हूँ, यह रङ्गरेलियाँ और बेफिक्रियाँ बहुत दिन न रहेगी। जीवन की चिन्ताएँ और दुराशाएँ उन्हे भी परास्त कर देंगी; लेकिन यह मधुर स्मृतियाँ सचित धन की भाँति अन्त तक उन्हे सहारा देती रहेगी। प्रेम की भीगी हुई सूखी रोटियाँ और प्रेम में रँगे हुए मोटे कपडे और प्रेम के प्रकाश से आलोकित छोटी-सी कोठरी, अपनी इस विपन्नता मे भी वह स्वाद, वह शोभा और वह विश्राम रखती है, जो शायद देवताओ को स्वर्ग मे भी नसीब नहीं। जब शन्नो का पति अपने घर चला जाता है, तो वह दुखिया किस तरह फूट-फूटकर रोती है कि मेरा हृदय गद्गद हो जाता है; उसके पत्र आ जाते हैं तो मानो उसे कोई विभूति मिल जाती है। उसके रोने मे भी, उसकी विफलताओं मे भी, उसके उपालम्भों मे भी एक स्वाद है, एक रस है। उसके आँसू व्यग्रता और विह्लता के हैं, मेरे आँसू निराशा और दुःख के। उसकी व्याकुलता मे प्रतीक्षा और

उल्लास है, मेरी व्याकुलता में दैन्य और परवशता। उसके उपालम्भ में अधिकार और ममता है, मेरे उपालम्भ में भग्नता और रुदन।

पत्र लम्बा हुआ जाता है और दिल का बोझ हलका नहीं होता। भयकर गरमी पड़ रही है। दादा मुझे मसूरी ले जाने का विचार कर रहे हैं। मेरी दुर्बलता से उन्हें 'टी० बी०' का सन्देह हो रहा है। वह नहीं जानते कि मेरे लिए मसूरी नहीं, स्वर्ग भी कालकोठरी है।

अभागिनी,

—कुसुम

चौथा पत्र

मेरे पत्थर के देवता, कल मसूरी से लौट आई। लोग कहते हैं, बड़ा स्वास्थ्य-वर्द्धक और रमणीक स्थान है, होगा। मैं तो एक दिन भी कमरे से नहीं निकली। भग्न हृदयों के लिए ससार सूना है।

मैंने एक रात बड़े मज़े का सपन देखा। बतलाऊँ, पर क्या फायदा। न-जाने क्यों अब भी मौत से डरती हूँ। आशा का कच्चा धागा मुझे अब भी जीवन से बाँधे हुए है। जीवन-उद्यान के द्वार पर जाकर बिना सैर किये लौट जाना कितना हसरतनाक है! अन्दर क्या सुषमा है, क्या आनन्द है। मेरे लिए वह द्वार ही बन्द है! कितनी अभिलाषाओं से विहार का आनन्द उठाने चली थी—कितनी तैयारियों से—पर मेरे पहुँचते ही द्वार बन्द हो गया है।

अच्छा बतलाओ, मैं मर जाऊँगी, तो मेरी लाश पर आँसू की दो बूँदें गिराओगे? जिसकी ज़िन्दगी-भर की जिम्मेदारी ली थी, जिसकी सदैव के लिए बाँह पकड़ी थी, क्या उसके साथ इतनी उदारता भी न करोगे? मरनेवालों के अपराध सभी क्षमा कर दिया करते हैं। तुम भी क्षमा कर देना। आकर मेरे शव को अपने हाथों से नहलाना, अपने हाथ से सोहाग के सिन्दूर लगाना, अपने हाथ से सोहाग की चूड़ियाँ पहनाना, अपने हाथ से मेरे मुँह में गगाजल डालना, दो-चार पग कन्धा दे देना, बस मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो जायगी और तुम्हें आशीर्वाद देगी। मैं वचन देती हूँ कि मालिक के दरबार में तुम्हारा यश गाऊँगी। क्या यह भी महँगा सौदा है? इतने से शिष्टाचार से तुम अपनी सारी जिम्मेदारी से मुक्त हुए जाते हो। आह! मुझे विश्वास होता कि तुम इतना शिष्टाचार करोगे, तो मैं कितनी ख़ुशी से

मौत का स्वागत करती ; लेकिन मैं तुम्हारे साथ अन्याय न करूँगी। तुम कितने ही निष्ठुर हो, इतने निर्दयी नहीं हो सकते। मैं जानती हूँ, तुम यह समाचार पाते ही आओगे और शायद एक क्षण के लिए मेरी शोक-मृत्यु पर तुम्हारी आँखें रो पड़ें। कहीं मैं अपने जीवन मे वह शुभ अवसर देख सकती!

अच्छा, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकती हूँ? नाराज़ न होना। क्या मेरी जगह किसी और सौभाग्यवती ने ले ली है? अगर ऐसा है, तो बधाई! जरा उसका चित्र मेरे पास भेज देना। मैं उसकी पूजा करूँगी, उसके चरणो पर शीश नवाऊँगी। मैं जिस देवता को प्रसन्न न कर सकी, उसी देवता से उसने वरदान प्राप्त कर लिया। ऐसी सौभागिनी के तो चरण धो-धो पीना चाहिए। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम उसके साथ सुखी रहो। यदि मैं उस देवी की कुछ सेवा कर सकती, अपरोक्ष न सही, परोक्ष रूप से ही तुम्हारे कुछ काम आ सकती। तुम मुझे केवल उसका शुभ नाम और स्थान बता दो, मैं सिर के बल दौड़ी हुई उसके पास जाऊँगी और कहूँगी, देवी, तुम्हारी लौंडी हूँ, इसलिए कि तुम मेरे स्वामी की प्रेमिका हो, मुझे अपने चरणों में शरण दो। मैं तुम्हारे लिए फूलों की सेज बिछाऊँगी, तुम्हारी माँग मोतियों से भरूँगी, तुम्हारी एड़ियों में महावर रचाऊँगी—यही मेरे जीवन की साधना होगी! यह न समझना कि मैं जलूँगी या कुढ़ूँगी। जलन तब होती है, जब कोई मुझसे मेरी वस्तु छीन रहा हो। जिस वस्तु को अपना समझने का मुझे कभी सौभाग्य ही न हुआ, उसके लिए मुझे क्यों जलन हो?

अभी बहुत-कुछ लिखना था, लेकिन डाक्टर साहब आ गये हैं। बेचारा हृदय-दाह को 'टी० बी' समझ रहा है।

दुःख की सताई हुई,

—कुसुम

इन दोनो पत्रों ने मेरे धैर्य का प्याला भर दिया। मैं बहुत ही आवेशहीन आदमी हूँ। भावुकता मुझे छू भी नहीं गई। अधिकांश कलाविदो की भाँति मैं भी शब्दों से आन्दोलित नहीं होता। क्या वस्तु दिल से निकलती है, क्या वस्तु केवल मर्म को स्पर्श करने के लिए लिखी गई है? यह भेद बहुधा मेरे साहित्यिक आनन्द मे बाधक हो जाता है, लेकिन इन पत्रों ने मुझे आपे से बाहर कर दिया। एक स्थान पर तो सचमुच मेरी आँखें भर आईं। यह भावना कितनी वेदनापूर्ण थी कि वही

बालिका, जिस पर माता-पिता प्राण छिड़कते रहते थे, विवाह होते ही इतनी विपद्-ग्रस्त हो जाय ! विवाह क्या हुआ, मानो उसकी चिता बनी, या उसकी मौत का पर-वाना लिखा गया। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी वैवाहिक दुर्घटनाएँ कम होती हैं, लेकिन समाज की वर्तमान दशा में उनकी सम्भावना बनी रहती है। जब तक स्त्री-पुरुष के अधिकार समान न होंगे, ऐसे आघात नित्य होते रहेंगे। दुर्बल को सताना कदाचित् प्राणियों का स्वभाव है। काटनेवाले कुत्ते से लोग दूर भागते हैं, सीधे कुत्ते पर बालवृन्द विनोद के लिए पत्थर फेकते हैं। तुम्हारे दो नौकर एक ही श्रेणी के हों, उनमें कभी झगड़ा न होगा, लेकिन आज उनमें से एक को अफसर और दूसरे को उसका मातहत बना दो, फिर देखो, अफसर साहब अपने मातहत पर कितना रोब जमाते हैं ? सुखमय दाम्पत्य की नींव अधिकार-साम्य ही पर रखी जा सकती है। इस वैषम्य में प्रेम का निवास हो सकता है, मुझे तो इसमे सन्देह है। हम आज जिसे पुरुषों मे प्रेम कहते हैं वह वही प्रेम है, जो स्वामी को अपने पशु से होता है। पशु सिर झुकाये काम किये चला जाय स्वामी उसे भूसा और खली भी देगा, उसकी देह भी सहलायेगा, उसे आभूषण भी पहनायेगा, लेकिन जानवर ने ज़रा चाल धीमी की, ज़रा गर्दन टेढी की और मालिक का चाबुक पीठ पर पड़ा। इसे प्रेम नहीं कहते।

खैर, मैंने पाँचवाँ पत्र खोला।

पाँचवाँ पत्र

जैसा मुझे विश्वास था, आपने मेरे पिछले पत्र का भी उत्तर न दिया। इसका खुला हुआ अर्थ यह है कि आपने मुझे परित्याग करने का सकल्प कर लिया है। जैसी आपकी इच्छा। पुरुष के लिए स्त्री पाँव की जूती है, स्त्री के लिए तो पुरुष देव-तुल्य है, वल्कि देवता से भी बढकर। विवेक का उदय होते ही वह पति की कल्पना करने लगती है। मैंने भी वही किया। जिस समय मैं गुड़ियाँ खेलती थी, उसी समय आपने गुड्डे के रूप मे मेरे मनोदेश मे प्रवेश किया। मैंने आपके चरणों को पखारा, माला-फूल और नैवेद्य से आपका सत्कार किया। कुछ दिनों के बाद कहानियाँ सुनने और पढ़ने की चाट पड़ी, तब आप कथाओं के नायक के रूप में मेरे घर आये। मैंने आपको हृदय मे स्थान दिया। बाल्यकाल ही से आप किसी-न-किसी रूप में मेरे जीवन में घुसे हुए थे। वह भावनाएँ मेरे अन्तस्तल की गहराइयों तक पहुँच गई हैं।

मेरे अस्तित्व का एक-एक अणु उन भावनाओं से गुँथा हुआ है। उन्हे दिल से निकाल डालना सहज नहीं है। उसके साथ मेरे जीवन के परमाणु भी बिखर जायँगे, लेकिन आपकी यही इच्छा है तो यही सही। मैं आपकी सेवा मे सब कुछ करने को तैयार थी। अभाव और विपन्नता का तो कहना ही क्या, मैं तो अपने को मिटा देने को भी राज़ी थी। आपकी सेवा में मिट जाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य था। मैंने लज्जा और संकोच का परित्याग किया, आत्म सम्मान को पैरों से कुचला, लेकिन आप मुझे स्वीकार नहीं करना चाहते। मजबूर हूँ। आपका कोई दोष नहीं। अवश्य मुझसे कोई ऐसी बात हो गई है, जिसने आपको इतना कठोर बना दिया है। आप उसे ज़बान पर लाना भी उचित नहीं समझते। मैं इस निष्ठुरता के सिवा और हर एक सज़ा झेलने को तैयार थी। आपके हाथ से ज़हर का प्याला लेकर पी जाने में भी मुझे विलम्ब न होता, किन्तु विधि की गति निराली है। मुझे पहले इस सत्य के स्वीकार करने में बाधा थी कि स्त्री पुरुष की दासी है। मैं उसे पुरुष को सचहरी, अर्द्धाङ्गिनी समझती थी, पर अब मेरी आँखें खुल गईं। मैंने कई दिन हुए एक पुस्तक मे पढा था कि आदिकाल मे स्त्री पुरुष की उसी तरह सम्पत्ति थी, जैसे गाय, बैल या खेत-बारी। पुरुष को अधिकार था स्त्री को बेचे, गिरो रखे या मार डाले। विवाह की प्रथा उस समय केवल यह थी कि वर-पक्ष अपने सूर-सामन्तों को लेकर सशस्त्र आता था और कन्या को उड़ा ले जाता था। कन्या के साथ कन्या के घर मे रुपया-पैसा, अनाज या पशु जो कुछ उसके हाथ लग जाता था उसे भी उठा ले जाता था। स्त्री को अपने घर ले जाकर वह उसके पैरों मे बेड़ियाँ डालकर घर के अन्दर बन्द कर देता था। उसके आत्म-सम्मान के भावों को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है, सोहाग स्त्री की सबसे बड़ी विभूति है। आज कई हजार वर्षों के बीतने पर पुरुष के उस मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पुरानी सभी प्रथाएँ कुछ विकृत या सस्कृत रूप में मौजूद हैं। आज मुझे मालूम हुआ कि उस लेखक ने स्त्री-समाज की दशा का कितना सुन्दर निरूपण किया था।

अब आपसे मेरा सविनय अनुरोध है, और यही अन्तिम अनुरोध है कि आप मेरे पत्रों को लौटा दें। आपके दिये हुए गहने और कपड़े अब मेरे किसी काम के नहीं। इन्हे अपने पास रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं। आप जिस समय चाहें, वापस मँगवा लें। मैंने उन्हें एक पेटारी मे बन्द करके अलग रख दिया है। उनको

सूची भी वहीं रखी हुई है, मिला लीजिएगा। आज से आप मेरी ज़बान या कलम से कोई शिकायत न सुनेंगे। इस भ्रम को भूलकर भी दिल मे स्थान न दीजिएगा कि मैं आपसे बेवफाई या विश्वासघात करूँगी। मैं इसी घर मे कुढ-कुढकर मर जाऊँगी, पर आपकी ओर से मेरा मन कभी मैला न होगा। मैं जिस जलवायु मे पली हूँ, उसका मूल तत्त्व है पति मे श्रद्धा। ईर्ष्या या जलन भी उस भावना को मेरे दिल से नहीं निकाल सकती। मै आपके कुल-मर्यादा की रक्षिका हूँ। उस अमानत मे जीते-जी खयानत न करूँगी, अगर मेरे बस मे होता, तो मैं उसे भी वापस कर देती, लेकिन यहाँ मैं भी मजबूर हूँ और आप भी मजबूर हैं। मेरी ईश्वर से यही विनती हैं कि आप जहाँ रहे, कुशल से रहे। जीवन मे मुझे सबसे कटु अनुभव जो हुआ, वह यही है कि नारी-जीवन अधम है, अपने लिए, अपने माता-पिता के लिए, अपने पति के लिए। उसकी क़दर न माता के घर मे है, न पति के घर मे। मेरा घर शोकागार बना हुआ है। अम्माँ रो रही हैं, दादा रो रहे हैं, कुटुम्ब के लोग रो रहे हैं, एक मेरी जात से लोगों को कितनी मानसिक वेदना हो रही है। कदाचित् वे सोचते होंगे, यह कन्या कुल में न आती तो अच्छा होता, मगर सारी दुनिया एक तरफ हो जाय, आपके ऊपर विजय नहीं पा सकती। आप मेरे प्रभु हैं। आपका फैसला अटल है। उसकी कहीं अपील नहीं, कहीं फरियाद नहीं। खैर, आज से यह काण्ड समाप्त हुआ, अब मैं हूँ और मेरा दलित, भग्न-हृदय। हसरत यही है कि आपकी कुछ सेवा न कर सकी!

अभागिनी

—कुसुम

(२)

मालूम नहीं, मैं कितनी देर तक मूक-वेदना की दशा में बैठा रहा कि महाशय नवीन बोले—आपने इन पत्रों को पढकर क्या निश्चय किया?

मैंने रोते हुए हृदय से कहा—अगर इन पत्रों ने उस नरपिशाच के दिल पर कोई असर नहीं किया, तो मेरा पत्र भला क्या असर करेगा! इससे अधिक करुणा और वेदना मेरी शक्ति के बाहर है। ऐसा कौन-सा धार्मिक भाव है, जिसे इन पत्रों में स्पर्श न किया गया हो। दया, लज्जा, तिरस्कार, न्याय, मेरे विचार में तो कुसुम ने कोई पहलू नहीं छोड़ा। मेरे लिए अब यही अन्तिम उपाय है कि उस शैतान के सिर पर

सवार हो जाऊँ और उससे मुँह-दरमुँह बातें करके इस समस्या की तह तक पहुँचने की चेष्टा करूँ। अगर उसने मुझे कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दिया, तो मैं उसका और अपना खून एक कर दूँगा। या तो मुझी को फांसी होगी, या वही कालेपानी जायगा। कुसुम ने जिस धैर्य और साहस से काम लिया है, वह सराहनीय है। आप उसे सान्त्वना दीजिएगा। मैं आज रात की गाड़ी से मुरादाबाद जाऊँगा और परसों तक जैसी कुछ परिस्थिति होगी, उसकी आपको सूचना दूँगा। मुझे तो यह कोई चरित्र-हीन और बुद्धिहीन युवक मालूम होता है।

मैं उस बहक में जाने क्या-क्या बकता रहा। इसके बाद हम दोनों भोजन करके स्टेशन चले। वह आगरे गये, मैंने मुरादाबाद का रास्ता लिया। उनके प्राण अब भी सूखे जाते थे कि मैं क्रोध के आवेश में कोई पागलपन न कर बैठूँ। बारे मेरे बहुत समझाने पर उनका चित्त शान्त हुआ।

मैं प्रातःकाल मुरादाबाद पहुँचा और जांच शुरू कर दी। इस युवक के चरित्र के विषय मे मुझे जो सन्देह था, वह गलत निकला। महल्ले मे, कालेज में, उसके इष्ट-मित्रोंमें, सभी उसके प्रशसक थे। अँधेरा और गहरा होता हुआ जान पड़ा। सन्ध्या-समय मै उसके घर जा पहुँचा। जिस निष्कपट भाव से वह दौड़कर मेरे पैरों पर झुका है, वह मैं नहीं भूल सकता। ऐसा वाक्-चतुर, ऐसा सुशील और विनीत युवक मैंने नहीं देखा। बाहर और भीतर में इतना आकाश पाताल का अन्तर मैंने कभी न देखा था। मैंने कुशल-क्षेम और शिष्टाचार के दो-चार वाक्यों के बाद पूछा—तुमसे मिलकर चित्त प्रसन्न हुआ; लेकिन आखिर कुसुम ने क्या अपराध किया है, जिसका तुम उसे इतना कठोर दण्ड दे रहे हो। उसने तुम्हारे पास कई पत्र लिखे, तुमने एक का भी उत्तर न दिया। वह दो-तीन बार यहाँ भी आई। पर तुम उससे बोले तक नहीं। क्या उस निर्दोष बालिका के साथ तुम्हारा यह अन्याय नहीं है?

युवक ने लज्जित भाव से कहा—बहुत अच्छा होता कि आपने इस प्रश्न को न उठाया होता। उसका जवाब देना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। मैंने तो इसे आप लोगों के अनुमान पर छोड़ दिया था; लेकिन इस गलतफहमी को दूर करने के लिए मुझे विवश होकर कहना पड़ेगा।

यह कहते-कहते वह चुप हो गया। बिजली की बत्ती पर भाँति-भाँति के कीट-पतग जमा हो गये थे। कई झींगुर उछल-उछलकर मुँह पर आ जाते थे, और जैसे

मनुष्य पर अपनी विजय का परिचय देकर उड़ जाते थे। एक बड़ा-सा ऑखफोड़ भी मेज़ पर बैठा था और शायद जस्त मारने के लिए अपनी देह तौल रहा था। युवक ने एक पत्ता लाकर मेज़ पर रख दिया, जिससे विजयी कीट-पतगों को दिखा दिया कि मनुष्य इतना निर्बल नहीं है, जितना वे समझ रहे थे। एक क्षण में मैदान साफ हो गया और हमारी बातों में दखल देनेवाला कोई न रहा।

युवक ने सकुचाते हुए कहा—सम्भव है, आप मुझे अत्यन्त लोभी, कमीना और स्वार्थी समझें, लेकिन यथार्थ यह है कि इस विवाह में मेरी वह अभिलाषा पूरी न हुई, जो मुझे प्राणों से भी प्रिय थी। मैं विवाह पर रज़ामन्द न था, अपने पैरों में बेड़ियाँ न डालना चाहता था; किन्तु जब महाशय नवीन बहुत पीछे पड़ गये और उनकी बातों से मुझे यह आशा हुई कि वह सब प्रकार से मेरी सहायता करने को तैयार हैं, तब मैं राज़ी हो गया; पर विवाह होने के बाद उन्होंने मेरी बात भी न पूछी। मुझे एक पत्र भी न लिखा कि कब तक वह मुझे विलायत भेजने का प्रबन्ध कर सकेंगे। हालाँकि मैंने अपनी इच्छा उन पर पहले ही प्रकट कर दी थी, पर उन्होंने मुझे निराश करना ही उचित समझा। उनकी इस अकृपा ने मेरे सारे मन्सूबे धूल में मिला दिये। मेरे लिए अब इसके सिवा और क्या रह गया है कि एल्-एल्० बी० पास कर लूँ और कचहरी में जूती फटफटाता फिरूँ।

मैंने पूछा—तो आखिर तुम नवीनजी से क्या चाहते हो? लेन-देन में तो उन्होंने शिकायत का कोई अवसर नहीं दिया। तुम्हें विलायत भेजने का खर्च तो शायद उनके काबू से बाहर हो।

पद प्राप्त करना चाहते हैं। विद्यार्जन के लिए विदेश जाना बुरा नहीं। ईश्वर सामर्थ्य दे तो शौक से जाओ ; किन्तु पत्नी का परित्याग करके ससुर पर इसका भार रखना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। तारीफ की बात तो तब थी कि तुम अपने पुरुषार्थ से जाते। इस तरह किसीकी गरदन पर सवार होकर, अपना आत्म-सम्मान बेचकर, गये तो क्या गये! इस पामर की दृष्टि में कुसुम का कोई मूल्य ही नहीं। वह केवल उसकी स्वार्थ-सिद्धि का साधन मात्र है! ऐसे नीच प्रकृति के आदमी से कुछ तर्क करना व्यर्थ था। परिस्थिति ने हमारी चुटिया उसके हाथ में रखी थी और हमे उसके चरणों पर सिर झुकाने के सिवा और कोई उपाय न था।

दूसरी गाड़ी से मैं आगरे जा पहुँचा और नवीनजी से यह वृत्तान्त कहा। उन बेचारे को क्या मालूम था कि यहाँ सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल दी गई है ; यद्यपि इस मन्दी ने उनकी वकालत भी ठण्डी कर रखी हैं और वह दस-पाँच हज़ार का खर्च सुगमता से नहीं उठा सकते ; लेकिन इस युवक ने उनसे इसका सकेत भी किया होता, तो वह अवश्य कोई-न-कोई उपाय करते। कुसुम के सिवा दूसरा उनका कौन बैठा हुआ है। उन बेचारे को तो इस बात का ज्ञान ही न था। अतएव मैंने ज्योंही उनसे यह समाचार कहा, तो वह बोल उठे—छि! इस ज़रा-सी बात को इस भले आदमी ने इतना तूल दे दिया। आप आज ही उसे लिख दें कि वह जिस वक्त जहाँ पढ़ने के लिए जाना चाहे, शौक़ से जा सकता है। मै उसका सारा भार स्वीकार करता हूँ। साल-भर तक निर्दयी ने कुसुम को रुला-रुलाकर मार डाला।

घर मे इसकी चर्चा हुई। कुसुम ने भी माँ से सुना। मालूम हुआ, एक हज़ार का चेक उसके पति के नाम भेजा जा रहा है, पर इस तरह, जैसे किसी सङ्कट का मोचन करने के लिए अनुष्ठान किया जा रहा हो।

कुसुम ने भृकुटी सिकोड़कर माँ से कहा-- अम्माँ, दादा से कह दो, कहीं रुपये भेजने की ज़रूरत नहीं।

माता ने विस्मित होकर बालिका की ओर देखा--कैसे रुपये? अच्छा! वह! क्यों इसमें क्या हर्ज है? लड़के का मन है, तो विलायत जाकर पढ़े। हम क्यों रोकने लगें। यों भी उसी का है, ओं भी उसी का है। हमें कौन छाती पर लादकर ले जाना है।

'नहीं, आप दादा से कह दीजिए, एक पाई न भेजें!'

'आखिर इसमें क्या बुराई है?'

'इसीलिए कि यह उसी तरह की डाकाज़नी है, जैसे बदमाश लोग किया करते हैं। किसी आदमी को पकड़कर ले गये और उसके घरवालों से उसके मुक्तिधन के तौर पर अच्छी रक़म ऐंठ ली।'

माता ने तिरस्कार की आँखों से देखा।

'कैसी बातें करती हो बेटी? इतने दिनों के बाद तो जाके देवता सीधे हुए हैं और तुम उन्हें फिर चिढाये देती हो।'

कुसुम ने झल्लाकर कहा--ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा। जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है, उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे देती हूँ, वहाँ रुपये गये, तो मैं ज़हर खा लूँगी। इसे दिल्लगी न समझना। मैं ऐसे आदमी का मुँह भी नहीं देखना चाहती। दादा से कह देना और अगर तुम्हें डर लगता हो, तो मैं खुद कह दूँ। मैंने स्वतन्त्र रहने का निश्चय कर लिया है।

माँ ने देखा, लड़की का मुखमण्डल आरक्त हो उठा है। मानो इस प्रश्न पर वह न कुछ कहना चाहती है, न सुनना।

दूसरे दिन नवीनजी ने यह हाल मुझसे कहा, तो मैं एक आत्मविस्मृत की दशा में दौड़ा हुआ गया और कुसुम को गले लगा लिया। मैं नारियों में ऐसा ही आत्माभिमान देखना चाहता हूँ। कुसुम ने वही कर दिखाया, जो मेरे मन में था और जिसे प्रकट करने का साहस मुझमें न था।

साल-भर हो गया है, कुसुम ने पति के पास एक पत्र भी नहीं लिखा और न उसका ज़िक्र ही करती है। नवीनजी ने कई बार जमाई को मना लाने की इच्छा प्रकट की; पर कुसुम उसका नाम भी सुनना नहीं चाहती। उसमें स्वाव-लम्बन की ऐसी दृढता आ गई है कि आश्चर्य होता है। उसके मुखपर निराशा और वेदना के पीलेपन और तेजहीनता की जगह स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की लाली और तेजस्विता भासित हो गई है।

खुदाई फ़ौजदार

सेठ नानकचन्द को आज फिर वही लिफाफा मिला और वही लिखावट सामने आई, तो उनका चेहरा पीला पड़ गया। लिफाफा खोलते हुए हाथ और हृदय—दोनो काँपने लगे। खत में क्या है, यह उन्हें खूब मालूम था। इसी तरह के दो खत पहले पा चुके थे। इस तीसरे खत में भी वही धमकियाँ हैं, इसमें उन्हें सन्देह न था। पत्र हाथ में लिये हुए आकाश की ओर ताकने लगे। वह दिल के मज़बूत आदमी थे, धमकियो से डरना उन्होंने न सीखा था, मुर्दों से भी अपनी रकम वसूल कर लेते थे। दया या उपकार-जैसी मानवीय दुर्बलताएँ उन्हे छू भी न गई थीं, नहीं महाजन ही कैसे बनते! उस पर धर्मनिष्ठ भी थे। हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा सुनते थे। हर मङ्गल को महावीरजी को लड्डू चढाते थे, नित्य-प्रति जमुना में स्नान करते थे और हर एकादशी को व्रत रखते और ब्राह्मणो को भोजन कराते थे। और इधर जबसे घी मे करारा नफा होने लगा था, एक धर्मशाला बनवाने की फिक्र में थे। ज़मीन ठीक कर ली थी। उनके असामियों में सैकड़ो ही थवई और बेलदार थे, जो केवल सूद मे काम करने को तैयार थे। इन्तजाम यही था कि कोई ईंट और चूने-वाला फँस जाय और दस-बीस हज़ार का दस्तावेज़ लिखा ले, तो सूद मे ईंट और चूना भी मिल जाय। इस धर्म-निष्ठा ने उनकी आत्मा को और भी शक्ति प्रदान कर दी थी। देवताओ के आशीर्वाद और प्रताप से उन्हे कभी किसी सौदे में घाटा नहीं हुआ और भीषण परिस्थितियों में भी वह स्थिरचित्त रहने के आदी थे, किन्तु जब-से यह धमकियो से भरे हुए पत्र मिलने लगे थे, उन्हे बरबस तरह-तरह की शकाएँ व्यथित करने लगी थीं। कहीं सचमुच डाकुओं ने छापा मारा, तो कौन उनकी सहा-यता करेगा। दैवी बाधाओ में तो देवताओ की सहायता पर वह तकिया कर सकते थे; पर सिर पर लटकती हुई इस तलवार के सामने वह श्रद्धा कुछ काम न देती थी। रात को उनके द्वार पर केवल एक चौकीदार रहता है। अगर दस-बीस हथियार-

चन्द आदमी आ जायँ, तो वह अकेला क्या कर सकता है । शायद उनकी आहट पाते ही भाग खड़ा हो । पड़ोसियों में ऐसा कोई नज़र न आता था, जो इस सकट मे काम आवे । यद्यपि सभी उनके असामी थे, या रह चुके थे , लेकिन यह एहसान-फरामोशों का सम्प्रदाय है, जिस पत्तल में खाता है, उसीमें छेद करता है ; जिसके द्वार पर अवसर पड़ने पर नाक रगड़ता है, उसीका दुश्मन हो जाता है । इनसे कोई आशा नहीं। हाँ, किवाड़े सुदृढ हैं, उन्हे तोड़ना आसान नहीं, फिर अन्दर का दरवाज़ा भी तो है । सौ आदमी लग जायँ, तो हिलाये न हिले । और किसी ओर से हमले का खटका नहीं । इतनी ऊँची सपाट दीवार पर कोई क्या खाके चढेगा । फिर उनके पास रायफलें भी तो हैं । एक रायफल से वह दरजनों आदमियों को भूनकर रख देंगे , मगर इतने प्रतिबन्धों के होते हुए भी उनके मन में एक हूक-सी समाई रहती थी । कौन जाने चौकीदार भी उन्हीं मे मिल गया हो, खिदमतगार भी आस्तीन के साँप हो गये हों । इसलिए वह अब बहुधा अन्दर ही रहते थे, और जब तक मिलनेवालों का पता-ठिकाना न पूछ लें , उनसे मिलते न थे । फिर भी दो-चार घण्टे तो चौपाल मे बैठना ही पड़ता था, नहीं सारा कारोबार मिट्टी में न मिल जाता । जितनी देर बाहर रहते थे, उनके प्राण जैसे सूली पर टँगे रहते थे । इधर उनके मिजाज़ में बड़ी तबदीली हो गई थी । इतने विनम्र और मिष्टभाषी वह कभी न थे । गालियाँ तो क्या, किसी से तू तकरार भी न करते । सूद की दर भी कुछ घटा दी थी , लेकिन फिर भी चित्त को शान्ति न मिलती थी । आखिर कई मिनट तक दिल को मज़बूत करने के बाद पत्र खोला, और जैसे गोली लग गई । सिर में चक्कर आ गया और सारी चीजें नाचती हुई मालूम हुई । साँस फूलने लगा । आँखें फैल गई । लिखा था, तुमने हमारे दोनों पत्रों पर कुछ भी ध्यान न दिया । शायद तुम समझते होगे कि पुलिस तुम्हारी रक्षा करेगी , लेकिन यह तुम्हारा भ्रम है। पुलिस उस वक्त आयेगी, जब हम अपना काम करके सौ कोस निकल गये होंगे । तुम्हारी अक्ल पर पत्थर पड़ गया है, इसमे हमारा कोई दोष नहीं । हम तुमसे सिर्फ २५ हज़ार रुपये माँगते हैं । इतने रुपये दे देना तुम्हारे लिए कुछ भी मुश्किल नहीं । हमे पता है कि तुम्हारे पास एक लाख की मोहरें रखी हुई हैं , लेकिन 'विनाशकाले विपरीत-बुद्धि ।' अब हम तुम्हे और ज़्यादा न समझायेंगे । तुमको समझाने की चेष्टा करना ही व्यर्थ है। आज शाम तक अगर रुपये न आ गये, तो रात को तुम्हारे ऊपर धावा होगा । अपनी हिमायत

के लिए जिसे बुलाना चाहो, बुला लो। जितने आदमी और हथियार जमा करना चाहो, जमा कर लो। हम ललकारकर आयेंगे और दिन-दहाड़े आयेंगे। हम चोर नहीं हैं, हम वीर हैं और हमारा विश्वास बाहुबल में है। हम जानते हैं कि लक्ष्मी उसी के गले में जयमाल डालती है, जो धनुष को तोड़ सकता है, मछली को वेध सकता है। आदि...

सेठजी ने तुरन्त बही-खाते बन्द कर दिये और रोकड़ सँभालकर तिजोरी मे रख दिया और सामने का द्वार भीतर से बन्द करके मरे हुए-से केसर के पास आकर बोले—आज फिर वही खत आया केसर! सब आज ही आ रहे हैं।

केसर दोहरे बदन की स्त्री थी, यौवन बीत जाने पर भी युवती, शौक-सिंगार में लिप्त रहनेवाली, उस फलहीन वृक्ष की तरह, जो पतझड़ में भी हरी-भरी पत्तियों से लदा रहता है। सन्तान की विफल कामना में जीवन का बड़ा भाग बिता चुकने के बाद, अब उसे अपनी सञ्चित माया को भोगने की धुन सवार रहती थी। मालूम नहीं कब आँखें बन्द हो जायँ, फिर यह थाती किसके हाथ लगेगी, कौन जाने? इसलिए उसे सबसे अधिक भय बीमारी का था, जिसे वह मौत का पैग़ाम समझती थी और नित्य ही कोई-न-कोई दवा खाती रहती थी। काया के इस वस्त्र को उस समय तक उतारना न चाहती थी, जब तक उसमें एक तार भी बाकी रहे। बाल-बच्चे होते तो वह मृत्यु का स्वागत करती, लेकिन अब तो उसके जीवन ही के साथ अन्त था। फिर क्यों न वह अधिक-से-अधिक समय तक जिये। हाँ, वह जीवन निरानन्द अवश्य था, उस मधुर आम की भाँति जिसे हम इसलिए खा जाते हैं कि रखे-रखे सड़ जायगा।

उसने घबराकर कहा—मैं तुमसे कबसे कह रही हूँ कि दो-चार महीनों के लिए यहाँ से कहीं भाग चलो, लेकिन तुम सुनते ही नहीं। आख़िर क्या करने पर तुले हुए हो?

सेठजी सशङ्क तो थे, और यह स्वाभाविक था। ऐसी दशा मे कौन शान्त रह सकता था; लेकिन वह कायर नहीं थे। उन्हें अब भी विश्वास था कि अगर कोई सकट आ पड़े, तो वह पीछे क़दम न हटायेंगे। जो कुछ कमजोरी आ गई थी, वह सकट को सिर पर मँडराते देखकर भाग गई थी। हिरन भी तो भागने की राह न पाकर शिकारी पर चोट कर बैठता है। कभी-कभी नहीं, अकसर सकट पड़ने पर ही आदमी के जौहर खुलते हैं। इतनी देर में सेठजी ने एक तरह से भावी विपत्ति का सामना

करने का पक्का इरादा कर लिया था। डरें क्यों, जो कुछ होना है, वह होकर रहेगा। अपनी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है, मरना-जीना विधि के हाथ में है। सेठानीजी को दिलासा देते हुए बोले—तुम नाहक इतना डरती हो केसर! आखिर वह सब भी तो आदमी हैं! अपनी जान का मोह उन्हें भी है, नहीं यह कुकर्म ही क्यों करते? मैं खिड़की की आड़ से दस-बीस आदमियों को गिरा सकता हूँ। पुलिस को इत्तला देने भी जा रहा हूँ। पुलिस का कर्त्तव्य है कि हमारी रक्षा करे। हम दस हज़ार सालाना टैक्स देते हैं, किसलिए? मैं अभी दारोग़ाजी के पास जाता हूँ। जब सरकार हमसे टैक्स लेती है, तो हमारी मदद करना उसका धर्म हो जाता है।

राजनीति का यह तत्त्व उसकी समझ मे न आया। वह तो किसी तरह उस भय से मुक्त होना चाहती थी, जो उसके दिल मे सांप की भांति बैठा फुफकार रहा था। पुलिस का उसे जो अनुभव था, उससे चित्त को सन्तोष न होता था। बोली—पुलिस-वालों को बहुत देख चुकी। वारदात के समय तो उनकी सूरत नही दिखाई देती। जब वारदात हो चुकती है, तब अलबत्ता शान के साथ आकर रोब जमाने लगते हैं।

'पुलिस तो सरकार का राज चला रही है, तुम क्या जानो।'

मैं तो कहती हूँ, यों अगर कल वारदात होनेवाली होगी, तो पुलिस को खबर देने से आज ही हो जायगी। लूट के माल मे इनका भी साझा होता है।

'जानता हूँ, देख चुका हूँ और रोज देखता हूँ, लेकिन मैं सरकार को दस हजार सालाना टैक्स देता हूँ। पुलिसवालों का आदर-सत्कार भी करता रहता हूँ। अभी जाड़ों मे सुपरिटेंडेंट साहब आये थे, तो मैंने कितनी रसद पहुँचाई थी। एक पूरा कनस्तर घी और एक शक्कर की पूरी बोरी भेज दी थी। यह सब खिलाना-पिलाना किस दिन काम आयेगा? हाँ, आदमी को सोलहो आने दूसरों के भरोसे न बैठना चाहिए, इसलिए मैंने सोचा है, तुम्हे भी बन्दूक चलाना सिखा दूँ। हम दोनों बन्दूकें छोड़ना शुरु करेंगे, तो डाकुओं की क्या मजाल है कि अन्दर क़दम रख सकें।

प्रस्ताव हास्यजनक था। केसर ने मुस्कराकर कहा—हां, और क्या अब आज मैं बन्दूक चलाना सीखूँगी! तुमको जब देखो, हँसी ही सूझती है।

'इसमे हँसी की क्या बात है? आजकल तो औरतों की फौजें बन रही हैं। सिपाहियों की तरह औरतें भी कवायद करती हैं, बन्दूक चलाती हैं, मैदानों में खेलती हैं। औरतों के घर मे बैठने का जमाना अब नहीं है।'

'विलायत की औरतें बन्दूक चलाती होंगी, यहाँ की औरतें क्या चलायेंगी। हाँ, हाथ-भर की जबान चाहे चला लें।'

'यहाँ की औरतों ने बहादुरी के जो-जो काम किये हैं, उनसे इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। आज भी दुनिया उन वृत्तान्तों को पढ़कर चकित हो जाती है।'

'पुराने जमाने की बातें छोड़ो। तब औरतें बहादुर रही होंगी। आज कौन बहादुरी कर रही है?'

'वाह! अभी हज़ारों औरतें घर-बार छोड़कर हँसते-हँसते जेल चली गईं, यह बहादुरी नहीं थी? अभी पंजाब में हरनाम कुँवर ने अकेले चार सशस्त्र डाकुओं को गिरफ्तार किया और लाटसाहब तक ने उसकी प्रशंसा की।'

'क्या जाने वह कैसी औरतें हैं। मैं तो डाकुओं को देखते ही चक्कर खाकर गिर पड़ूँगी।'

उसी वक्त नौकर ने आकर कहा--सरकार, थाने से चार कानिस्टिबिल आये हैं, आपको बुला रहे हैं।

सेठजी प्रसन्न होकर बोले--थानेदार भी है?

'नहीं सरकार, अकेले कानिस्टिबिल हैं।'

'थानेदार क्यों नहीं आया?'—यह कहते हुए सेठजी ने पान खाया और बाहर निकले।

(२)

सेठजी को देखते ही चारों कान्सटेबिलों ने झुककर सलाम किया, बिल्कुल अँगरेजी कायदे से, मानो अपने किसी अफसर को सैल्यूट कर रहे हों। सेठजी ने उन्हें बेंचों पर बैठाया और बोले—दारोगाजी का मिज़ाज तो अच्छा है? मैं तो उनके पास आनेवाला था।

चारों में जो सबसे प्रौढ़ था और जिसकी आस्तीन पर कई बिल्ले लगे हुए थे, बोला--आप क्यों तकलीफ करते, वह तो ख़ुद ही आ रहे थे; पर एक बड़ी जरूरी तहकीकात आ गई, इससे रुक गये। कल आपसे मिलेंगे। जबसे यहाँ डाकुओं की खबरें आई हैं, बेचारे बहुत घबराये हुए हैं। आपकी तरफ हमेशा उनका ध्यान रहता है। कई बार कह चुके हैं कि मुझे सबसे ज़्यादा फिकर सेठजी की है। गुमनाम खत तो आपके पास भी आये होंगे?

सेठजी ने लापरवाही दिखाकर कहा--अजी, ऐसी चिट्ठियाँ आती ही रहती हैं, इनकी कौन परवाह करता है। मेरे पास तो तीन खत आ चुके हैं, मैंने किसीसे ज़िक्र भी नहीं किया।

कान्सटेबिल हँसा—दारोग़ाजी को खबर मिली थी।

'सच !'

'हाँ साहब ! रत्ती-रत्ती खबर मिलती रहती है। यहाँ तक मालूम हुआ है कि कल आपके मकान पर उनका धावा होनेवाला है। ज़भी तो आज दारोग़ाजी ने मुझे आपकी खिदमत मे भेजा।'

'मगर वहाँ कैसे खबर पहुँची ? मैंने तो किसीसे कहा ही नहीं।'

कान्सटेबिल ने रहस्यमय भाव से कहा—हुजूर, यह न पूछें। इलाके के सबसे बड़े सेठ के पास ऐसे खत आयें और पुलिस को खबर न हो ! भला कोई बात है। फिर ऊपर से बराबर ताकीद आती रहती है कि सेठजी को शिकायत का कोई मौका न दिया जाय। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की खास ताकीद है आपके लिए। और हुजूर, सरकार भी तो आप ही के बूते पर चलती है। सेठ-साहूकारों के जान-माल की हिफ़ाज़त न करे, तो रहे कहाँ ? हमारे होते मजाल है कि कोई आपकी तरफ तिर्छी आँखों से देख सके, मगर यह कम्बख्त डाकू इतने दिलेर और तादाद में इतने ज्यादा हैं कि थाने के बाहर उनसे मुकाबिला करना मुश्किल है। दारोग़ाजी गारद मँगाने की बात सोच रहे थे, मगर ये हत्यारे कहीं एक जगह तो रहते नहीं, आज यहाँ हैं, तो कल यहाँ से दो सौ कोस पर। गारद मँगाकर ही क्या किया जाय ? इलाके की रिआया की तो हमे ज्यादा फिक्र नहीं, हुजूर मालिक हैं, आपसे क्या छिपायें, किसके पास रखा है इतना माल-असबाब ! और अगर किसी के पास दो-चार सौ की पूँजी निकल ही आई, तो उसके लिए पुलिस डाकुओं के पीछे अपनी जान हथेली पर लिये न फिरेगी। उन्हे क्या, वह तो छूटते ही गोली चलाते हैं, और अकसर छिपकर। हमारे लिए तो हज़ार बन्दिशें हैं। कोई बात बिगड़ जाय तो उलटे अपनी ही जान आफत मे फँस जाय। हमे तो ऐसे रास्ते चलना है कि साँप मरे और लाठी न टूटे, इसलिए दारोग़ाजी ने आपसे यह अर्ज करने को कहा है कि आपके पास जोखिम की जो चीज़ें हों, उन्हे लाकर सरकारी खज़ाने में जमा कर दीजिए। आपको उसकी रसीद दे दी जायगी। ताला और मुहर आप ही की रहेगी। जब यह हङ्गामा ठण्डा हो जाय तो

मँगवा लीजिएगा। इससे आपको भी बेफिक्री हो जायगी और हम भी जिम्मेदारी से बच जायँगे। नहीं, ख़ुदा न क़रे, कोई वारदात हो जाय, तो हुजूर का तो जो नुकसान हो वह तो हो ही, हमारे ऊपर भी जवाबदेही आ जाय। और यह ज़ालिम सिर्फ माल-असबाब लेकर ही तो जान नहीं छोड़ते—खून करते हैं, घर में आग लगा देते हैं, यहाँ तक कि औरतों की बेइज्जती भी करते हैं। हुजूर तो जानते हैं, होता है वही जो तकदीर मे लिखा है। आप इकबालवाले आदमी हैं, डाकू आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। सारा कस्बा आपके लिए जान देने को तैयार है। आपका पूजा-पाठ, धर्म-कर्म खुदा ख़ुद देख रहा है। यह इसी की बरकत है कि आप मिट्टी भी छू लें, तो सोना हो जाय, लेकिन आदमी भरसक अपनी हिफाज़त करता है। हुजूर के पास मोटर है ही, जो कुछ रखना हो उस पर रख दीजिए। हम चार आदमी आपके साथ हैं ही, कोई खटका नहीं। वहाँ एक मिनट मे आपको फुरसत हो जायगी। पता चला है कि इस गोल मे बीस जवान हैं। दो तो बैरागी बने हुए हैं, दो पजाबियों के भेष मे धुस्से और अलवान बेचते फिरते हैं। इन दोनो के साथ दो बहँगीवाले भी है। दो आदमी बलूचियों के भेष मे छूरियाँ और ताले बेचते हैं। कहाँ तक गिनाऊँ हुजूर! हमारे थाने मे तो हर एक का हुलिया रखा हुआ है।

खतरे मे आदमी का दिल कमजोर हो जाता है और वह ऐसी बातो पर विश्वास कर लेता है, जिन पर शायद होश-हवास मे न करता। जब किसी दवा से रोगी को लाभ नहीं होता, तो हम दुआ, तावीज, ओझो और सयानो की शरण लेते है, और यहाँ तो सन्देह करने का कोई कारण ही न था। सम्भव है, दारोगाजी का कुछ स्वार्थ हो, मगर सेठजी इसके लिए तैयार थे, अगर दो-चार सौ वल खाने पड़ें तो कोई बड़ी बात नहीं। ऐसे अवसर तो जीवन मे आते ही रहते हैं और इस परिस्थिति मे इससे अच्छा दूसरा क्या इन्तज़ाम हो सकता था, बल्कि इसे तो ईश्वरीय प्रेरणा समझना चाहिए। माना, उनके पास दो-दो बन्दूकें हैं, कुछ लोग मदद करने के लिए निकल ही आयेंगे, लेकिन है जान-जोखिम। उन्होने निश्चय किया, दारोगाजी की इस कृपा से लाभ उठाना चाहिए। इन्हीं आदमियो को कुछ दे-दिलाकर सारी चीज़ें निकलवा लेंगे। दूसरों का क्या भरोसा? कहीं कोई चीज उड़ा दें तो बस!

उन्होंने इस भाव से कहा, मानो दारोगाजी ने उन पर कोई विशेष कृपा नहीं की है—वह तो उनका कर्तव्य ही था—मैंने यहाँ ऐसा प्रबंध किया था कि यहाँ वह सब

आते तो उनके दाँत खट्टे कर दिये जाते, सारा क़स्वा मदद के लिए तैयार था । सभी से तो अपना मित्र-भाव है, लेकिन दारोग़ाजी की तजवीज मुझे पसन्द है । इससे वह भी अपनी जिम्मेदारी से बरी हो जाते हैं और मेरे सिर से भी फिक्र का बोझ उतर जाता है, लेकिन भीतर से चीज़ें बाहर निकाल-निकालकर लाना मेरे बूते की बात नहीं । आप लोगों की दुआ से नौकर-चाकरों की तो कमी नहीं है, मगर किसी की नीयत कैसी है, कौन जान सकता है ? आप लोग कुछ मदद करें तो काम आसान हो जाय ।

हेड कान्सटेबिल ने बड़ी खुशी से यह सेवा स्वीकार कर ली और बोला—हम सब हुजूर के तावेदार हैं, इसमें मदद की कौन बात है ? तलब सरकार से पाते हैं, यह ठीक है, मगर देनेवाले तो आप ही हैं । आप केवल सामान हमें दिखाते जायँ, हम बात की-बात में सारी चीजें निकाल लायेंगे । हुजूर की खिदमत करेंगे तो कुछ इनाम-इकराम मिलेगा ही । तनख्वाह में गुज़र नहीं होता सेठजी, आप लोगों की करम की निगाह न हो, तो एक दिन भी निबाह न हो । बाल-बच्चे भूखों मर जायँ । पन्द्रह-बीस रुपया में क्या होता है हुजूर, इतना तो हमारे लिए ही पूरा नहीं पड़ता ।

सेठजी ने अन्दर जाकर केसर से यह समाचार कहा तो उसे जैसे आँखें मिल गईं । बोली—भगवान् ने सहायता की, नहीं मेरे प्राण बड़े सकट में पड़े हुए थे ।

सेठजी ने सर्वज्ञता के भाव से फरमाया—इसी को कहते हैं सरकार का इन्तज़ाम ! इसी मुस्तैदी के बल पर सरकार का राज थमा हुआ है । कैसी सुव्यवस्था है कि जरा-सी कोई बात हो, वहाँ तक खबर पहुँच जाती है और तुरन्त उसके रोक-थाम का हुक्म हो जाता है । और यहाँवाले ऐसे बुद्धू है कि स्वराज्य-स्वराज्य चिल्ला रहे हैं । इनके हाथ में अख्तियार आ जाय तो दिन-दोपहर लूट मच जाय, कोई किसीकी न सुने । ऊपर से ताकीद आई है । हाकिमों का आदर-सत्कार कभी निष्फल नहीं जाता । मैं तो सोचता हूँ, कोई बहुमूल्य वस्तु घर में न छोड़ूँ । साले आयें तो अपना-सा मुँह लेकर रह जायँ ।

केसर ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा—कुञ्जी उनके सामने फेंक देना कि जो चीज़ चाहो, निकाल ले जाओ ।

'साले झेंप जायँगे ।,

मुँह में कालिख लग जायगी ।,

'घमण्ड तो देखो कि तिथि तक बता दी। यह नहीं समझे कि अंग्रेज़ी सरकार का राज है। तुम डाल-डाल चलो, तो वह पात-पात चलती है।'

'समझे होंगे कि धमकी मे आ जायँगे।'

तीन कान्सटेबिलों ने आकर सन्दूकचे और सेफ निकालने शुरू किये। एक बाहर सामान को मोटर पर लाद रहा था और हरेक चीज को नोट-बुक पर टाँकता जाता था। आभूषण, मुहरें, नोट, रुपये, कीमती कपड़े, साड़ियाँ, लहँगे, शाल-दुशाले, सब कार में रख दिये गये। मामूली बरतन, लोहे-लकड़ी के सामान, फर्श आदि के सिवा घर में और कुछ न बचा। और डाकुओं के लिए यह चीजें कौड़ी की भी नहीं। केसर का सिंगार दान ख़ुद सेठजी लाये और हेड के हाथ में देकर बोले—इसे बड़ी हिफाज़त से रखना भाई!

हेड ने सिंगार-दान लेकर कहा—मेरे लिए एक-एक तिनका इतना ही कीमती है।

सेठजी के मन मे एक सन्देह उठा। पूछा—खज़ाने की कुञ्जी तो मेरे ही पास रहेगी?

'और क्या, यह तो मैं पहले ही अर्ज़ कर चुका, मगर यह सवाल आपके दिल में क्यो पैदा हुआ?'

'यों ही पूछा था'—सेठजी लज्जित हो गये।

'नहीं, अगर आपके दिल में कुछ शुबहा हो, तो हम लोग यहाँ भी आपकी खिदमत के लिए हाज़िर हैं। हाँ, हम जिम्मेदार न होंगे।

'अजी नहीं हेड साहब मैंने यों ही पूछ लिया था। यह फिहरिस्त तो मुझे दे दोगे न?'

'फिहरिस्त आपको थाने में दारोगाजी के दस्तखत से मिलेगी। इसका क्या एतबार।'

कार पर सारा सामान रख दिया गया। कस्बे के सैकड़ों आदमी तमाशा देख रहे थे। कार बड़ी थी; पर ठसा ठस भरी हुई थी। बड़ी मुश्किल से सेठजी के लिए जगह निकली। चारों कान्सटेबिल आगे की सीट पर सिमटकर बैठे।

कार चली। केसर द्वार पर इस तरह खड़ी थी, मानो उसकी बेटी विदा हो रही हो। बेटी ससुराल जा रही है, जहाँ वह मालकिन बनेगी; लेकिन उसका घर सूना किये जा रही है!

(४)

थाना यहाँ से पाँच मील पर था। क़स्बे से बाहर निकलते ही पहाड़ों का पथरीला सन्नाटा था, जिसके दामन में हरा-भरा मैदान था और इसी मैदान के बीच-में से लाल मोरम की सड़क चक्कर खाती हुई लाल साँप-जैसी निकल गई थी।

हेड ने सेठजी से पूछा—यह कहाँ तक सही है सेठजी कि आज से पचीस साल पहले आपके बाप केवल लोटा-डोर लेकर यहाँ खाली हाथ आये थे?

सेठजी ने गर्व करते हुए कहा—बिलकुल सही है। मेरे पास कुल तीन रुपये थे। उसी से आटे-दाल की दूकान खोली थी। तक़दीर का खेल है, भगवान् की दया चाहिए, आदमी के बनते-बिगड़ते देर नहीं लगती, लेकिन मैंने कभी पैसे को दाँतों से नहीं पकड़ा। यथाशक्ति धर्म का पालन करता गया। धन की शोभा धर्म ही से है, नहीं धन से कोई फायदा नहीं।

'आप बिलकुल ठीक कहते हैं सेठजी। आपकी मूरत बनाकर पूजना चाहिए। तीन रुपये से तीन लाख कमा लेना मामूली काम नहीं है!'

'आधी रात तक सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती, खाँ साहब!'

'आपको तो यह सब कारोबार जञ्जाल-सा लगता होगा?'

'जञ्जाल तो है ही, मगर भगवान् की ऐसी माया है कि आदमी सब कुछ समझकर भी इसमें फँस जाता है और सारी उम्र फँसा रहता है। मौत आ जाती है, तभी छुट्टी मिलती है। बस, यही अभिलाषा है कि कुछ यादगार छोड़ जाऊँ।'

'आपके कोई औलाद हुई ही नहीं?'

'भाग्य में न थी खाँ साहब, और क्या कहूँ। जिनके घर में भूनी भाँग नहीं है, उनके यहाँ घास-फूस की तरह बच्चे-ही-बच्चे देख लो, जिन्हें भगवान् ने खाने को दिया है, वे सन्तान का मुँह देखने को तरसते हैं।'

'आप बिलकुल ठीक कहते हैं सेठजी! ज़िन्दगी का मज़ा सन्तान से है। जिसके आगे अँधेरा है, उसके लिए धन-दौलत किस काम का।'

'ईश्वर की यही इच्छा है तो आदमी क्या करे! मेरा बस चलता, तो मायाजाल से निकल भागता खाँ साहब, एक क्षण-भर यहाँ न रहता, कहीं तीर्थस्थान में बैठकर भगवान् का भजन करता, मगर करूँ क्या, मायाजाल तोड़े नहीं टूटता।'

'एक बार दिल मज़बूत करके तोड़ क्यों नहीं देते? सब उठाकर ग़रीबों को बाँट दीजिए। साधु-सन्तों को नहीं, न मोटे ब्राह्मणों को; बल्कि उनको, जिनके लिए यह ज़िन्दगी बोझ हो रही है, जिनकी यही एक आरज़ू है कि मौत आकर उनकी विपत्ति का अन्त कर दे।'

'इस मायाजाल को तोड़ना आदमी का काम नहीं है खाँ साहब। भगवान् की इच्छा होती है, तभी मन में वैराग आता है।'

'आज भगवान् ने आपके ऊपर दया की है। हम इस मायाजाल को मकड़ी के जाले की तरह तोड़कर आपको आजाद करने के लिए भेजे गये हैं। भगवान् आपकी भक्ति से प्रसन्न हो गये हैं और आपको इस बन्धन में नहीं रखना चाहते, जीवन-मुक्त कर देना चाहते हैं।'

'ऐसी भगवान् की दया हो जाती, तो क्या पूछना खाँ साहब।'

'भगवान् की ऐसी ही दया है सेठजी, विश्वास मानिए। हमे इसी लिए उन्होंने मृत्युलोक मे तैनात किया है। हम कितने ही मायाजाल के कैदियों की बेड़ियाँ काट चुके हैं। आज आपकी बारी है।'

सेठजी की नाड़ियों मे जैसे रक्त का प्रवाह बन्द हो गया। सहमी हुई आँखों से सिपाहियों को देखा। फिर बोले—आप बड़े हँसोड़ हो खाँ साहब!

'हमारे जीवन का सिद्धान्त है कि किसी को कष्ट मत दो, लेकिन ये रुपयेवाले कुछ ऐसी औंधी खोपड़ी के लोग हैं कि जो उनका उद्धार करने आता है, उसी के दुश्मन हो जाते हैं। हम आपको बेड़ियाँ काटने आये है, लेकिन अगर आपसे कहें कि यह सब जमा जथा और लता-पता छोड़कर घर की राह लीजिए, तो आप चीखना-चिल्लाना शुरू कर देंगे। हम लोग वही खुदाई फौजदार हैं, जिनके इत्तलाई खत आपके पास पहुँच चुके हैं!'

सेठजी मानो आकाश से पाताल मे गिर पड़े। सारी ज्ञानेन्द्रियों ने जवाब दे दिया; और इसी मूर्च्छा की दशा मे वह मोटरकार से नीचे ढकेल दिये गये और गाड़ी चल पड़ी।

सेठजी की चेष्टा जाग पड़ी। बदहास गाड़ी के पीछे दौड़े—हुजूर, सरकार, तबाह हो जायँगे, दया कीजिए, घर मे एक कौड़ी भी नहीं है······

खाँ साहब ने खिड़की से बाहर हाथ निकाला और तीन रुपये जमीन पर फेंक दिये। मोटर की चाल तेज हो गई।

सेठजी सिर पकड़कर बैठ गये और विक्षिप्त नेत्रों से मोटरकार को देखा, जैसे कोई शव स्वर्गारोही प्राण को देखे। उनके जीवन का स्वप्न उड़ा चला जा रहा था।

वेश्या

छ महीने बाद कलकत्ते से घर आने पर दयाकृष्ण ने पहला काम जो किया, वह अपने प्रिय मित्र सिंगारसिंह से मातमपुरसी करने जाना था। सिंगार के पिता का आज तीन महीने हुए देहान्त हो गया था। दयाकृष्ण बहुत व्यस्त रहने के कारण उस समय न आ सका था। मातमपुरसी की रस्म पत्र लिखकर अदा कर दी थी; लेकिन ऐसा एक दिन भी नहीं बीता कि सिंगार की याद उसे न आई हो। अभी वह दो-चार महीने और कलकत्ते रहना चाहता था, क्योंकि वहाँ उसने जो कारोबार जारी किया था, उसे सङ्गठित रूप में लाने के लिए उसका वहाँ मौजूद रहना ज़रूरी था और उसकी थोड़े दिन की गैरहाज़िरी से भी हानि की शङ्का थी, किन्तु जब सिंगार की स्त्री लीला का परवाना आ पहुँचा, तो वह अपने को न रोक सका। लीला ने साफ़-साफ़ तो कुछ न लिखा था, केवल उसे तुरन्त बुलाया था, लेकिन दयाकृष्ण को पत्र के शब्दों से कुछ ऐसा अनुमान हुआ कि वहाँ की परिस्थिति चिन्ताजनक है और इस अवसर पर उसका वहाँ पहुँचना ज़रूरी है। सिंगार सम्पन्न बाप का बेटा था, बड़ा ही अल्हड़, बड़ा ही ज़िद्दी, बड़ा ही आरामपसन्द। दृढ़ता या लगन उसे छू भी नहीं गई थी। उसकी माँ उसके बचपन ही मे मर चुकी थी और बाप ने उसके पालने मे निमन्त्रण की अपेक्षा स्नेह से ज़्यादा काम लिया था। उसे कभी दुनिया की हवा नहीं लगने दी। उद्योग भी कोई वस्तु है, यह वह जानता ही न था। उसके महज़ इशारे पर हर एक चीज़ सामने आ जाती थी। वह जवान बालक था, जिसमे न अपने विचार थे, न सिद्धान्त। कोई भी आदमी उसे बड़ी आसानी से अपने कपट-बाणों का निशाना बना सकता था। मुख़तारों और मुनीमों के दांव पेंच समझना उसके लिए लोहे के चने चबाना था। उसे किसी ऐसे समझदार और हितैषी मित्र की ज़रूरत थी, जो स्वार्थियों के हथकण्डों से उसकी रक्षा करता रहे। दयाकृष्ण पर इस घर के बड़े-बड़े एहसान थे। उस दोस्ती का हक अदा करने के लिए उसका आना आवश्यक था।

मुँह-हाथ धोकर सिगारसिंह के घर पर ही भोजन करने का इरादा करके दया-कृष्ण उससे मिलने चला। नौ बज गये थे और हवा और धूप में गर्मी आने लगी थी।

सिंगारसिंह उसकी खबर पाते ही बाहर निकल आया। दयाकृष्ण उसे देखकर चौंक पड़ा। लम्बे-लम्बे केशों की जगह उसके सिर पर घुँघराले बाल थे (वह सिक्ख था), आड़ी माँग निकाली हुई। आँखों में न आँसू थे, न शोक का कोई दूसरा चिह्न। चेहरा कुछ ज़र्द अवश्य था, पर उस पर विलासिता की मुस्कराहट थी। वह एक महीन रेशमी कमीज़ और मखमली जूते पहने हुए था, मानो किसी महफ़िल से उठा आ रहा हो। समवेदना के शब्द दयाकृष्ण के ओठों तक आकर निराश लौट गये। वहाँ बधाई के शब्द ज्यादा अनुकूल प्रतीत हो रहे थे।

सिंगारसिंह लपककर उसके गले से लिपट गया और बोला—तुम खूब आये यार, इधर तुम्हारी बहुत याद आ रही थी, मगर पहले यह बतला दो, वहाँ का कारोबार बन्द कर आये या नहीं? अगर वह झंझट छोड़ आये हो, तो पहले उसे तिलांजलि दे आओ। अब आप यहाँ से जाने न पायेंगे। मैंने तो भई अपना कैंड़ा बदल दिया। बताओ, कब तक तपस्या करता? अब तो आये-दिन जलसे होते हैं। मैंने सोचा यार, दुनिया में आये तो कुछ दिन सैर-सपाटे का आनन्द भी उठा लो। नहीं, एक दिन यों ही हाथ मलते चले जायँगे। कुछ भी साथ न जायगा।

दयाकृष्ण विस्मय से उसके मुँह की ओर ताकने लगा। यह वही सिंगार है या कोई और! बाप के मरते ही इतनी तब्दीली!

दोनों मित्र कमरे में गये और सोफे पर बैठे। सरदार साहब के सामने इस कमरे में फर्श और मसनद की आलमारी थी। अब दर्जनों गद्देदार सोफे और कुर-सियाँ हैं, कालीन का फर्श है, रेशमी परदे हैं, बड़े-बड़े आइने हैं। सरदार साहब को संचय की धुन थी, सिंगार को उड़ाने की धुन है।

सिंगार ने एक सिगार जलाकर कहा—तेरी बहुत याद आती थी यार, तेरी जान की क़सम।

दयाकृष्ण ने शिकवा किया—क्यों झूठ बोलते हो भाई, महीनों गुज़र जाते थे, एक खत लिखने की तो आपको फुर्सत न मिलती थी, मेरी याद आती थी!

सिंगार ने अल्हड़पन से कहा—बस, इसी बात पर मेरी सेहत का एक जाम पियो। अरे यार, इस ज़िन्दगी में और क्या रखा है। हँसी-खेल में जो वक्त कट

जाय, उसे ग़नीमत समझो। मैंने तो वह तपस्या त्याग दी। अब तो आये दिन जलसे होते हैं, कभी दोस्तों की दावत है, कभी दरिया की सैर, कभी गाना-बजाना, कभी शराब के दौर। मैंने कहा, लाओ कुछ दिन यह बहार भी देख लूँ। हसरत क्यों दिल में रह जाय। आदमी ससार में कुछ भोगने के लिए आता है, यही ज़िन्दगी के मजे हैं। जिसने यह मजे नहीं चखे, उसका जीना वृथा है। बस दोस्तों की मजलिस हो, बगल मे माशूक हो, और हाथ में प्याला हो, इसके सिवा मुझे और कुछ न चाहिए।

उसने आलमारी खोलकर एक बोतल निकाली और दो गिलासो में शराब ढालकर बोला—यह मेरी सेहत का जाम है। इन्कार न करना। मैं तुम्हारी सेहत का जाम पीता हूँ।

दयाकृष्ण को कभी शराब पीने का अवसर न मिला था। वह इतना धर्मात्मा तो न था कि शराब पीना पाप समझता, हाँ, उसे दुर्व्यसन समझता था। गन्ध ही से उसका जी मालिश करने लगा। उसे भय हुआ कि वह शराब की घूँट चाहे मुँह में ले ले, उसे कण्ठ के नीचे नहीं उतार सकता। उसने प्याले को शिष्टाचार के तौर पर हाथ में ले लिया, फिर उसे ज्यों-का-त्यों मेज़ पर रखकर बोला, तुम जानते हो, मैंने कभी नहीं पी। इस समय मुझे क्षमा करो। दस-पाँच दिन मे यह फ़न भी सीख जाऊँगा, मगर यह तो बताओ, अपना कारोबार भी कुछ देखते हो, या इसी में पड़े रहते हो?

सिंगार ने अरुचि से मुँह बनाकर कहा—ओह, क्या ज़िक्र तुमने छेड़ दिया यार, कारोबार के पीछे इस छोटी-सी ज़िन्दगी को तबाह नहीं कर सकता। न कोई साथ लाया है, न साथ ले जायगा। पापा ने मर-मरकर धन सञ्चय किया। क्या हाथ लगा? पचास तक पहुँचते-पहुँचते चल बसे। उनकी आत्मा अब भी ससार के सुखों के लिए तरस रही होगी। धन छोड़कर मरने से फाक़ेमस्त रहना कहीं अच्छा है। धन की चिन्ता तो नहीं सताती, यह हाय तो नहीं होती कि मेरे बाद क्या होगा। तुमने गिलास मेज़ पर रख दिया? ज़रा पियो, आँखें खुल जायँगी। दिल हरा हो जायगा। और लोग सोडा और बरफ मिलाते हैं, मैं तो खालिस पीता हूँ। इच्छा हो, तो तुम्हारे लिए बरफ मँगाऊँ?

दयाकृष्ण ने फिर क्षमा माँगी; मगर सिंगार गिलास-पर-गिलास पीता गया। उसकी

आँखें लाला-लाल निकल आईं, ऊल-ज़लूल बकने लगा, खूब डींगें मारीं, फिर बेसुरे राग में एक बाज़ारी गीत गाने लगा। अन्त में उसी कुरसी पर पड़ा-पड़ा बेसुध हो गया।

(२)

सहसा पीछे का परदा हटा और लीला ने उसे इशारे से बुलाया। दयाकृष्ण की धमनियों में शतगुण वेग से रक्त दौड़ने लगा। उसकी सङ्कोचमय, भीरु प्रकृति भीतर से जितनी ही रूपाशक्त थी, बाहर से उतनी ही विरक्त। सुन्दरियों के सम्मुख आकर वह स्वय अवाक् हो जाता था, उसके कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ जाती थी और आँखें झुक जाती थीं, लेकिन मन उनके चरणों पर लोटकर अपने-आपको समर्पित कर देने के लिए विकल हो जाता था। मित्रगण उसे बूढ़े बाबा कहा करते थे। स्त्रियाँ उसे अरसिक समझकर उससे उदासीन रहती थीं। किसी युवती के साथ लङ्का तक रेल में एकान्त-यात्रा करके भी वह उससे एक शब्द भी बोलने का साहस न करता। हाँ, यदि युवती स्वय उसे छेड़ती, तो वह अपने प्राण तक उसकी भेंट कर देता। उसके इस सङ्कोचमय, अवरुद्ध जीवन में लीला ही एक युवती थी, जिसने उसके मन को समझा था और उससे सवाक् सहृदयता का व्यवहार किया था। तभी से दयाकृष्ण मन से उसका उपासक हो गया था। उसके अनुभव-शून्य हृदय में लीला नारी-जाति का सबसे सुन्दर आदर्श थी। उसकी प्यासी आत्मा को शर्बत या लेमनेड की उतनी इच्छा न थी, जितना ठण्ढे, मीठे पानी की। लीला में रूप है, लावण्य है, सुकुमारता है, इन बातों की ओर उसका ध्यान न था। उससे ज्यादा रूपवती, लावण्यमयी और सुकुमार युवतियाँ उसने पार्कों में देखी थीं। लीला में सहृदयता है, विचार है, दया है, इन्हीं तत्त्वों की ओर उसका आकर्षण था। उसकी रसिकता में आत्म-समर्पण के सिवा और कोई भाव न था। लीला के किसी आदेश का पालन करना उसकी सबसे बड़ी कामना थी, उसकी आत्मा की तृप्ति के लिए इतना काफी था। उसने काँपते हाथों से परदा उठाया और अन्दर जाकर खड़ा हो गया और विस्मयभरी आँखों से उसे देखने लगा। उसने लीला का यहाँ न देखा होता, तो पहचान भी न सकता। वह रूप, यौवन और विकास की देवी इस तरह मुरझा गई थी, जैसे किसीने उसके प्राणों को चूसकर निकाल लिया हो। करुण स्वर में बोला — यह तुम्हारा क्या हाल है लीला! बीमार हो, क्या? मुझे सूचना तक न दी।

लीला मुसकिराकर बोली—तुमसे मतलब! मैं बीमार हूँ या अच्छी हूँ, तुम्हारी

बला से ! तुम तो अपने सैर-सपाटे करते रहे । छः महीने के बाद जब आपको याद आई है, तो पूछते हो बीमार हो ? मैं उस रोग में ग्रस्त हूँ, जो प्राण लेकर ही छोड़ता है । तुमने इन महाशय की हालत देखी ? उनका यह रङ्ग देखकर मेरे दिल पर क्या गुज़रती है, यह क्या मैं अपने मुँह से कहूँ तभी समझोगे ? मैं अब इस घर में ज़बरदस्ती पड़ी हूँ और बेहयाई से जीती हूँ । किसी को मेरी चाह या चिन्ता नहीं है । पापा क्या मरे, मेरा सोहाग ही उठ गया । कुछ समझाती हूँ, तो बेवकूफ बनाई जाती हूँ । रात-रात-भर न-जाने कहाँ गायब रहते हैं । जब देखो, नशे में मस्त । हफ्तों घर में नहीं आते कि दो बातें तो कर लूँ, अगर इनके यही ढङ्ग रहे, तो साल-दो-साल में रोटियों को मुहताज हो जायँगे ।

दया ने पूछा—यह लत इन्हें कैसे पड़ गई ? यह बातें तो इनमें न थीं ।

लीला ने व्यथित स्वर में कहा—रुपये की बलिहारी है, और क्या, इसीलिए तो बूढ़े मर-मरके कमाते हैं और मरने के बाद लड़कों के लिए छोड़ जाते हैं । अपने मन में समझते होंगे, हम लड़कों के लिए बैठने का ठिकाना किये जाते हैं । मैं कहती हूँ, तुम उनके सर्वनाश का सामान किये जाते हो, उनके लिए ज़हर बोये जाते हो । पापा ने लाखों रुपये की सम्पत्ति न छोड़ी होती, तो आज यह महाशय किसी काम में लगे होते, कुछ घर की चिन्ता होती, कुछ ज़िम्मेदारी होती । नहीं तो बैंक से रुपये निकाले और उड़ाये । अगर मुझे विश्वास होता कि सम्पत्ति समाप्त करके वह सीधे मार्ग पर आ जायँगे, तो मुझे ज़रा भी दुःख न होता ; पर मुझे तो यह भय है कि ऐसे लोग फिर किसी काम के नहीं रहते । या तो जेलखाने में मरते हैं, या अनाथालय में । आपकी एक वेश्या से आशनाई है । माधुरी नाम है और वह इन्हें उल्टे छुरे से मूँड़ रही है, जैसा उसका धर्म है । आपको यह खब्त हो गया है कि वह मुझ पर जान देती है । उससे विवाह का प्रस्ताव भी किया जा चुका है । मालूम नहीं, उसने क्या जवाब दिया । कई बार जी में आया कि जब यहाँ किसी से कोई नाता ही नही है, तो अपने घर चली जाऊँ ; लेकिन डरती हूँ कि तब तो यह और भी स्वतन्त्र हो जायँगे । मुझे किसी पर विश्वास है, तो वह तुम हो, इसीलिए तुम्हें बुलाया था, कि शायद तुम्हारे समझाने-बुझाने का कुछ असर हो ; अगर तुम भी असफल हुए, तो मैं एक क्षण यहाँ न रहूँगी । भोजन तैयार है, चलो कुछ खा लो ।

दयाकृष्ण ने सिंगारसिंह की ओर संकेत करके कहा—और यह ?

'यह तो अब कहीं दो-तीन बजे चेतेंगे।'

'बुरा मानेंगे।'

'मैं अब इन बातों की परवाह नहीं करती। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि अगर मुझे कभी आँखें दिखाईं, तो मैं भी इन्हें मज़ा चखा दूँगी। मेरे पिताजी फौज में सूबेदार मेजर हैं। मेरी देह में उनका रक्त है।

लीला की मुद्रा उत्तेजित हो गई। विद्रोह की वह आग, जो महीनों से पड़ी सुलग रही थी, प्रचण्ड हो उठी।

उसने उसी लहजे में कहा—मेरी इस घर में इतनी साँसत हुई है, इतना अपमान हुआ है और हो रहा है कि मैं उसका किसी तरह भी प्रतीकार करके आत्म-ग्लानि का अनुभव न करूँगी। मैंने पापा से अपना हाल छिपा रखा है। आज लिख दूँ, तो इनकी सारी मशीखत उतर जाय। नारी होने का दण्ड भोग रही हूँ; लेकिन नारी के धैर्य की भी सीमा है।

दयाकृष्ण उस सुकुमारी का वह तमतमाया हुआ चेहरा, वह जलती हुई आँखें, वह काँपते हुए होंठ देखकर काँप उठा। उसकी दशा उस आदमी की-सी हो गई, जो किसी रोगी को दर्द से तड़पते देखकर वैद्य को बुलाने दौड़े। आर्द्र कण्ठ से बोला—इस समय मुझे क्षमा करो लीला! फिर कभी तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार करूँगा। तुम्हें अपनी ओर से इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे अपना सेवक समझती रहना। मुझे न मालूम था कि तुम्हें इतना कष्ट है, नहीं शायद अब तक मैंने कुछ युक्ति सोची होती। मेरा यह शरीर तुम्हारे किसी काम आये, इससे बढ़कर सौभाग्य की बात मेरे लिए और क्या होगी?

दयाकृष्ण यहाँ से चला, तो उसके मन में इतना उल्लास भरा हुआ था, मानो विमान पर बैठा हुआ स्वर्ग की ओर जा रहा है। आज उसे जीवन में एक ऐसा लक्ष्य मिल गया था, जिसके लिए वह जी भी सकता है, मर भी सकता है। वह एक महिला का विश्वासपात्र हो गया था। इस रत्न को वह अपने हाथ से कभी न जाने देगा, चाहे उसकी जान ही क्यों न जाय।

(३)

एक महीना गुजर गया। दयाकृष्ण सिंगारसिंह के घर नहीं आया। न सिंगारसिंह ने उसकी परवाह की। इस एक ही मुलाकात में उसने समझ लिया था कि दया

इस नये रंग में आनेवाला आदमी नहीं है। ऐसे सात्विकजनों के लिए उसके यहाँ स्थान न था। वहाँ तो रँगीले, रसिया, अय्याश, बिगड़े दिलों ही की चाह थी। हाँ, लीला को हमेशा उसकी याद आती रहती थी।

मगर दयाकृष्ण के स्वभाव में अब वह सयम नहीं है। विलासिता का जादू उस पर भी चलता हुआ मालूम होता है। माधुरी के घर उसका आना-जाना भी शुरू हो गया है। वह सिंगारसिंह का मित्र नहीं रहा, प्रतिद्वन्द्वी हो गया है। दोनों एक ही प्रतिमा के उपासक हैं, मगर उनकी उपासना में अन्तर है। सिंगार की दृष्टि में माधुरी केवल विलास की एक वस्तु है, केवल विनोद का एक यन्त्र। दयाकृष्ण विनय की मूर्ति है जो माधुरी की सेवा में ही प्रसन्न है। सिंगार माधुरी के हास-विलास को अपना ज़रखरीद हक समझता है। दयाकृष्ण इसी में संतुष्ट है कि माधुरी उसकी सेवाओं को स्वीकार करती है। माधुरी की ओर से ज़रा भी अरुचि देखकर वह उसी तरह बिगड़ जायगा जैसे अपनी प्यारी घोडी की मुँहज़ोरी पर। दयाकृष्ण अपने को उसकी कृपादृष्टि के योग्य ही नहीं समझता। सिंगार जो कुछ माधुरी को देता है, गर्व-भरे आत्मा-प्रदर्शन के साथ ; मानो उस पर कोई एहसान कर रहा हो। दयाकृष्ण के पास देने को है ही क्या, पर वह जो कुछ भेंट करता है, वह ऐसी श्रद्धा से, मानो देवता को फूल चढाता हो। सिंगार का आसक्त मन माधुरी को अपने पिंजरे मे बन्द रखना चाहता है, जिसमें उस पर किसी की निगाह न पड़े। दयाकृष्ण निर्लिप्त भाव से उसकी स्वच्छन्द क्रीड़ा का आनन्द उठाता है। माधुरी को अब तक जितने आदमियों से साबिका पड़ा था, वे सब सिंगारसिंह की ही भाँति कामुक, ईर्ष्यालु, दम्भी और कोमल भावों से शून्य थे, रूप को भोगने की वस्तु समझनेवाले। दयाकृष्ण उन सबोंसे अलग था, सहृदय, भद्र और सेवाशील, मानो उस पर अपनी आत्मा का समर्पण कर देना चाहता हो। माधुरी को अब अपने जीवन मे कोई ऐसा पदार्थ मिल गया है, जिसे वह बड़ी एहतियात से सँभालकर रखना चाहती है। जड़ाऊ गहने अब उसकी आँखों मे उतने मूल्यवान् नहीं रहे, जितनी यह फ़क़ीर की दी हुई तावीज़। जड़ाऊ गहने हमेशा मिलेंगे, यह तावीज़ खो गई तो फिर शायद ही कभी हाथ आये। जड़ाऊ गहने केवल उसकी विलास-प्रवृत्ति को उत्तेजित करते हैं ; पर इस तावीज़ मे तो कोई दैवी शक्ति है, जो न-जाने कैसे उसमे सदनुराग और परिष्कार-भावना को जगाती है। दयाकृष्ण कभी प्रेम-प्रदर्शन नहीं करता, अपनी

विरह-व्यथा के राग नहीं अलापता ; पर माधुरी को उस पर पूरा विश्वास है। सिंगार-सिह के प्रलाप में उसे बनावट और दिखावे का आभास होता है। वह चाहती है, यह जल्द यहाँ से टले ; लेकिन दयाकृष्ण के सयत भाषण मे उसे गहराई तथा गाम्भीर्य और गुरुत्व का आभास होता है। औरों की वह प्रेमिका है, लेकिन दयाकृष्ण की आशिक, जिसके कदमों की आहट पाकर उसके अन्दर एक तूफ़ान उठने लगता है। उसके जीवन मे यह नयी अनुभूति है। अब तक वह दूसरों के भोग की वस्तु थी, अब कम-से-कम एक प्राणी की दृष्टि मे वह आदर और प्रेम की वस्तु है।

सिगारसिह को जबसे दयाकृष्ण के इस प्रेमाभिनय की सूचना मिली है, उसके खून का प्यासा हो गया है। ईर्ष्याग्नि से फुँका जा रहा है। उसने दयाकृष्ण के पीछे कई शोहदे लगा रखे हैं कि उसे जहाँ पायें, उसका काम तमाम कर दें। वह ख़ुद पिस्तौल लिये उसकी टोह मे रहता है। दयाकृष्ण इस ख़तरे को समझता है, जानता है, पर अपने नियत समय पर माधुरी के पास बिला नागा आ जाता है। मालूम होता है, उसे अपनी जान का कुछ भी मोह नहीं है। शोहदे उसे देखकर क्यों कतरा जाते हैं, मौक़ा पाकर भी क्यों उस पर वार नहीं करते, इसका रहस्य वह नहीं समझता।

एक दिन माधुरी ने कहा—कृष्णजी, तुम यहाँ न आया करो। तुम्हे तो पता नहीं है, पर यहाँ तुम्हारे बीसों दुश्मन हैं। मैं डरती हूँ कि किसी दिन कोई बात न हो जाय।

शिशिर की तुषार मण्डित सन्ध्या थी। माधुरी एक काश्मीरी शाल ओढे हुए अँगीठी के सामने बैठी हुई थी। कमरे से बिजली का रजत-प्रकाश फैला हुआ था। दयाकृष्ण ने देखा, माधुरी की आँखें सजल हो गई हैं और वह मुँह फेरकर उन्हें दयाकृष्ण से छिपाने की चेष्टा कर रही है। प्रदर्शन पर सुखभोग करनेवाली रमणी क्यो इतना सकोच कर रही है, यह उसका अनाड़ी मन न समझ सका। हाँ, माधुरी के गोरे, प्रसन्न, सङ्कोच हीन मुख पर लज्जा-मिश्रित मधुरिमा की ऐसी छटा उसने कभी न देखी थी। आज उसने उस मुख पर कुल-वधू की भीरु आकांक्षा और दृढ वात्सल्य देखा और उसके अभिनय मे सत्य का उदय हो गया।

उसने स्थिर भाव से जवाब दिया—मैं तो किसी की बुराई नहीं करता, मुझसे किसी को क्यों वैर होने लगा। मै यहाँ किसी का बाधक नहीं, किसी का विरोधी नहीं। दाता के द्वार पर सभी भिक्षुक जाते हैं। अपना अपना भाग्य है, किसी को

एक चुटकी मिलती है, किसी को पूरा थाल। कोई क्यों किसी से जले ? अगर किसी पर तुम्हारी विशेष कृपा है, तो मैं उसे भाग्यशाली समझकर उसका आदर करूँगा। जलूँ क्यों ?

माधुरी ने स्नेह-कातर स्वर में कहा—जी नहीं, आप कल से न आया कीजिए।

दयाकृष्ण मुसकिराकर बोला—तुम मुझे यहाँ आने से नहीं रोक सकतीं। भिक्षुक को तुम दुत्कार सकती हो, द्वार पर आने से नहीं रोक सकतीं।

माधुरी स्नेह की आँखों से उसे देखने लगी, फिर बोली—क्या सभी आदमी तुम्हीं जैसे निष्कपट हैं ?

'तो फिर मैं क्या करूँ ?'

'यहाँ न आया करो।'

'यह मेरे बस की बात नहीं।'

माधुरी एक क्षण तक विचार करके बोली—एक बात कहूँ, मानोगे ? चलो, हम-तुम किसी दूसरे नगर की राह लें।

'केवल इसलिए कि कुछ लोग मुझसे खार खाते हैं ?'

'खार नहीं खाते, तुम्हारी जान के गाहक हैं।'

दयाकृष्ण उसी अविचलित भाव से बोला—जिस दिन प्रेम का यह पुरस्कार मिलेगा, वह मेरे जीवन का नया दिन होगा माधुरी, इससे अच्छी मृत्यु और क्या हो सकती है। तब मैं तुमसे पृथक् न रहकर तुम्हारे मन में, तुम्हारी स्मृति में रहूँगा।

माधुरी ने कोमल हाथ से उसके गाल पर थपकी दी। उसकी आँखें भर आई थीं। इन शब्दों में जो प्यार भरा हुआ था, वह जैसे पिचकारी की धार की तरह उसके हृदय मे समा गया। ऐसी विकल वेदना ! ऐसा नशा ! इसे वह क्या कहे।

उसने करुण स्वर मे कहा—ऐसी बातें न किया करो कृष्ण, नहीं मैं सच कहती हूँ, एक दिन जहर खाकर तुम्हारे चरणों पर सो जाऊँगी। तुम्हारे इन शब्दों में न-जाने क्या जादू था कि मैं जैसे फुँक उठी। अब आप खुदा के लिए यहाँ न आया कीजिए, नहीं देख लेना, मैं एक दिन प्राण दे दूँगी। तुम क्या जानो, हत्यारा सिंगार किस बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ा हुआ है। मैं उसके शोहदों की खुशामद करते-करते हार गई। कितना कहती हूँ, दयाकृष्ण से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, उसके सामने तुम्हारी कितनी निन्दा करती हूँ, कितना कोसती हूँ ; लेकिन उस निर्दयी को मुझ पर

विश्वास नहीं आता। तुम्हारे लिए मैंने इन गुण्डों की कितनी मिन्नतें की हैं, उनके हाथों कितना अपमान सहा है, वह तुमसे न कहना ही अच्छा है। जिनका मुँह देखना भी मैं अपनी शान के खिलाफ समझती हूँ, उनके पैरों पड़ी हूँ; लेकिन ये कुत्ते हड्डियो के टुकड़े पाकर और भी शेर हो जाते है। मैं अब उनसे तङ्ग आ गई हूँ और तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ कि यहाँ से किसी ऐसी जगह चले चलो, जहाँ हमे कोई न जानता हो। वहाँ शान्ति के साथ पड़े रहें। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। आज इसका निश्चय कराये बिना मैं तुम्हे न जाने दूँगी। मैं जानती हूँ, तुम्हें मुझ पर अब भी विश्वास नहीं है। तुम्हें सन्देह है कि तुम्हारे साथ कपट करूँगी।

दयाकृष्ण ने टोंका—नहीं माधुरी, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। मेरे मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं आया। पहले ही दिन मुझे न-जाने क्यो, कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम अपनी और बहनों से पृथक् हो। मैंने तुममे वह शील और सकोच देखा, जो मैंने कुलवधुओं में देखा है।

माधुरी ने उसकी आँखों में आँखें गड़ाकर कहा—तुम झूठ बोलने की कला में इतने निपुण नहीं हो कृष्ण कि वेश्या को भुलावा दे सको। मैं न शीलवती हूँ, न सकोचवती हूँ और न अपनी दूसरी बहनो से अभिन्न हूँ। मैं वेश्या हूँ, उतनी ही कलुषित, उतनी हो विलासान्ध, उतनी ही मायाविनी, जितनी मेरी दूसरी बहने, बल्कि उनसे कुछ ज्यादा। न तुम अन्य पुरुषों को तरह मेरे पास विनोद और वासना-तृप्ति के लिए आये थे। नहीं, महीनों आते रहने पर भी तुम यों अलिप्त न रहते। तुमने कभी डींग नहीं मारी, मुझे धन का प्रलोभन नहीं दिया। मैंने भी कभी तुमसे धन की आशा नहीं की। तुमने अपनी वास्तविक स्थिति मुझसे कह दी। फिर भी मैंने तुम्हें एक नहीं, अनेक ऐसे अवसर दिये कि कोई दूसरा आदमी उन्हे न छोड़ता, लेकिन तुम्हें मैं अपने पजे में न ला सकी। तुम चाहे और जिस इरादे से आये हो, भोग की इच्छा से नहीं आये। अगर मैं तुम्हे इतना नीच, इतना हृदयहीन, इतना विलासान्ध समझती, तो इस तरह तुम्हारे नाज़ न उठाती, फिर मैं भी तुम्हारे साथ मित्र-भाव रखने लगी। समझ लिया, मेरी परीक्षा हो रही है। जब तक इस परीक्षा में सफल न हो जाऊँ, तुम्हे नहीं पा सकती। तुम जितने सज्जन हो, उतने ही कठोर हो।

यह कहते हुए माधुरी ने दयाकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और अनुराग और समर्पण-भरी चितवनों से उसे देखकर बोली—सच बताओ कृष्ण, तुम मुझमें क्या देखकर आकर्षित हुए थे। देखो, बहानेबाज़ी न करना। तुम रूप पर मुग्ध होनेवाले आदमी नहीं हो, मैं कसम खा सकती हूँ।

दयाकृष्ण ने संकट में पड़कर कहा—रूप इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है माधुरी! वह मन का आईना है।

'यहाँ मुझसे रूपवान् स्त्रियों की कमी नहीं है।'

'यह तो अपनी-अपनी निगाह है। मेरे पूर्व-संस्कार रहे होंगे।'

माधुरी ने भवें सिकोड़कर कहा—तुम फिर झूठ बोल रहे हो, चेहरा कहे देता है।

दयाकृष्ण ने परास्त होकर पूछा—पूछकर क्या करोगी माधुरी? मैं डरता हूँ, कहीं तुम मुझसे घृणा न करने लगो। सम्भव है, तुम मेरा जो रूप देख रही हो, वह मेरा असली रूप न हो।

माधुरी का मुँह लटक गया। विरक्त-सी होकर बोली—इसका खुले शब्दों में यह अर्थ है कि तुम्हे मुझ पर विश्वास नहीं। ठीक है, वेश्याओं पर विश्वास करना भी नहीं चाहिए। विद्वानों और महात्माओं का उपदेश कैसे न मानोगे।

नारी-हृदय इस समस्या पर विजय पाने के लिए अपने अस्त्रों से काम लेने लगा।

दयाकृष्ण पहले ही हमले में हिम्मत छोड़ बैठा। बोला—तुम तो नाराज़ हुई जाती हो माधुरी। मैंने तो केवल इस विचार से कहा था कि तुम मुझे धोखेबाज़ समझने लगोगी। तुम्हे शायद मालूम नहीं है, सिंगारसिंह ने मुझ पर कितने एहसान किये हैं। मैं उन्हीं के टुकड़ों पर पला हूँ। इसमें रत्ती-भर भी मुबालगा नहीं है। यहाँ आकर जब मैंने उनके रंग-ढंग देखे और उनकी साध्वी स्त्री लीला को बहुत दुखी पाया, तो सोचते-सोचते मुझे यही उपाय सूझा कि किसी तरह सिंगारसिंह को तुम्हारे पंजे से छुड़ाऊँ। मेरे इस अभिनय का यही रहस्य है; लेकिन उन्हे छुड़ा तो न सका, खुद फँस गया। मेरे इस फरेब की जो सजा चाहो दो, सिर झुकाये हुए हूँ।

माधुरी का अभिमान टूट गया। जलकर बोली—तो यह कहिए कि आप लीला देवी के आशिक हैं। मुझे पहले से मालूम होता, तो तुम्हें इस घर में घुसने न देती। तुम तो एक छिपे रुस्तम निकले।

वह तोते के पिंजरे के पास जाकर उसे पुचकारने का बहाना करने लगी। मन में जो एक दाह उठ रहा था, उसे कैसे शान्त करे।

दयाकृष्ण ने तिरस्कार-भरे स्वर में कहा—मैं लीला का आशिक नहीं हूँ माधुरी, उस देवी को कलंकित न करो। मैं आज तुमसे शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने कभी उसे इस निगाह से नहीं देखा। उसके प्रति मेरा वही भाव था, जो अपने किसी आत्मीय को दुःख में देखकर हर एक मनुष्य के मन में आता है।

'किसी से प्रेम करना तो पाप नहीं है, तुम व्यर्थ मे अपनी और लीला की सफाई दे रहे हो।'

'मैं नहीं चाहता कि लीला पर किसी तरह का आक्षेप किया जाय।'

'अच्छा साहब, लीजिए लीला का नाम न लूँगी। मैंने मान लिया, वह सती हैं, साध्वी हैं और केवल उनकी आज्ञा से · ···'

दयाकृष्ण ने बात काटी—उनकी कोई आज्ञा नहीं थी।

'ओ हो, तुम तो ज़बान पकड़ते हो कृष्ण। क्षमा करो, उनकी आज्ञा से नहीं, तुम अपनी इच्छा से आये थे। अब तो राजी हुए। अब यह बताओ, आगे तुम्हारे क्या इरादे हैं? मैं वचन तो दे दूँगी, मगर अपने संस्कारों को नहीं बदल सकती। मेरा मन दुर्बल है। मेरा सतीत्व कब का नष्ट हो चुका है। अन्य मूल्यवान् पदार्थों की ही तरह रूप और यौवन की रक्षा भी बलवान् हाथों से हो सकती है। मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम मुझे अपनी शरण में लेने पर तैयार हो? तुम्हारा आश्रय पाकर तुम्हारे प्रेम की शक्ति से, मुझे विश्वास है, मैं जीवन के सारे प्रलोभनों का सामना कर सकती हूँ। मैं इस सोने के महल को ठुकरा दूँगी, लेकिन इसके बदले मुझे किसी हरे वृक्ष की छाँह तो मिलनी चाहिए। वह छाँह तुम मुझे दोगे? अगर नहीं दे सकते, तो मुझे छोड़ दो। मैं अपने हाल मे मगन हूँ। मैं वादा करती हूँ, सिंगारसिंह से मैं कोई सम्बन्ध न रखूँगी। वह मुझे घेरेगा, रोयेगा, सम्भव है, गुण्डों से मेरा अपमान कराये, आतंक दिखाये; लेकिन मैं सब कुछ झेल लूँगी, तुम्हारी खातिर से·····।'

आगे और कुछ न कहकर वह तृष्णा भरी, लेकिन उसके साथ ही निरपेक्ष नेत्रों से दयाकृष्ण की ओर देखने लगी, जैसे दूकानदार गाहक को बुलाता तो है; पर साथ ही यह भी दिखाना चाहता है कि उसे उसकी परवाह नहीं है।

दयाकृष्ण क्या जवाब दे? संघर्षमय संसार मे उसने अभी केवल एक कदम

टिका पाया है। इधर वह अंगुल-भर जगह भी उससे छिन गई है। शायद जोर मारकर वह फिर वह स्थान पा जाय, लेकिन वहाँ बैठने की जगह नहीं और एक दूसरे प्राणी को लेकर तो वह खड़ा भी नहीं रह सकता। अगर मान लिया जाय कि अदम्य उद्योग से दोनों के लिए स्थान निकाल लेगा, तो आत्म-सम्मान कहाँ ले जाय? ससार क्या कहेगा! लीला फिर क्या उसका मुँह देखना चाहेगी, सिगार से वह फिर आँखें मिला सकेगा? यह भी छोड़ो। लीला अगर उसे पतित समझती है, समझे; सिगार अगर उससे जलता है जले, उसे इसकी परवाह नहीं है; लेकिन अपने मन को क्या करे? विश्वास उसके अन्दर आकर जाल मे फंसे पक्षी की भाँति फड़फड़ाकर निकल भागता है। कुलीना अपने साथ विश्वास का वरदान लिये आती है। उसके साहचर्य में हमें कभी सदेह नहीं होता। वहाँ सदेह के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। कुत्सिता सन्देह का सस्कार लिये आती है। वहाँ विश्वास के लिए प्रत्यक्ष—अत्यन्त प्रत्यक्ष—प्रमाण की जरूरत है। उसने नम्रता से कहा—तुम जानती हो, मेरी क्या हालत है?

'हाँ, खूब जानती हूँ।'

'और उस हालत में तुम प्रसन्न रह सकोगी?'

'तुम ऐसा प्रश्न क्यों करते हो कृष्ण, मुझे दु ख होता है। तुम्हारे मन मे जो सन्देह है, वह मैं जानती हूँ, समझती हूँ। मुझे भ्रम हुआ था कि तुमने भी मुझे जान लिया है, अब मालूम हुआ, मैं धोखे में थी।'

वह उठकर वहाँ से जाने लगी। दयाकृष्ण ने उसका हाथ पकड़ लिया और प्रार्थी-भाव से बोला—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो माधुरी! मैं सत्य कहता हूँ, ऐसी कोई बात नहीं है......

माधुरी ने खड़े-खडे विरक्त मन से कहा—तुम झूठ बोल रहे हो, बिलकुल झूठ। तुम अब भी मन से यह स्वीकार नहीं कर रहे हो कि कोई स्त्री स्वेच्छा से रूप का व्यवसाय नहीं करती। पैसे के लिए अपनी लज्जा को उघाड़ना, तुम्हारी समझ में कुछ ऐसी आनन्द की बात है, जिसे वेश्या शौक से करती है। तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से बहुत दूर समझते हो। तुम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नही होती। तुम नहीं जानते कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती है और जब वह सौभाग्य से उसे पा जाती है, तो किस तरह प्राणों की भाँति उसे संचित रखती है। खारे पानी के समुद्र में मीठे पानी का

छोटा-सा पात्र कितना प्रिय होता है, इसे वह क्या जाने, जो मीठे पानी के मटके उँड़ेलता रहता हो।

दयाकृष्ण कुछ ऐसे असमंजस में पड़ा हुआ था कि उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। उसके मन मे जो शंका चिनगारी की भाँति छिपी हुई है, वह बाहर निकलकर कितनी भयंकर ज्वाला उत्पन्न कर देगी। उसने कपट का जो अभिनय किया था, प्रेम का जो स्वाँग रचा था, उसकी ग्लानि उसे और भी व्यथित कर रही थी।

सहसा माधुरी ने निष्ठुरता से पूछा—तुम यहाँ क्यों बैठे हो?

दयाकृष्ण ने अपमान को पीकर कहा—मुझे सोचने के लिए कुछ समय दो माधुरी!

'क्या सोचने के लिए?'

'अपना कर्त्तव्य।'

'मैंने अपना कर्त्तव्य सोचने के लिए तो तुमसे समय नहीं माँगा। तुम अगर मेरे उद्धार की बात सोच रहे हो, तो उसे दिल से निकाल डालो। मैं भ्रष्टा हूँ और तुम साधुता के पुतले हो—जब तक यह भाव तुम्हारे अन्दर रहेगा, मैं तुमसे उसी तरह बात करूँगी जैसे औरों के साथ करती हूँ। अगर भ्रष्टा हूँ, तो जो लोग यहाँ अपना मुँह काला करने आते हैं, वे कुछ कम भ्रष्ट नहीं हैं। तुम जो एक मित्र की स्त्री पर दाँत लगाये हुए हो, तुम जो एक सरला अबला के साथ झूठे प्रेम का स्वाँग करते हो, तुम्हारे हाथों अगर मुझे स्वर्ग भी मिलता हो, तो ठुकरा दूँ।'

दयाकृष्ण ने लाल आँख करके कहा—तुमने फिर वही आक्षेप किया!

माधुरी तिलमिला उठी। उसकी रही-सही मृदुता भी ईर्ष्या के उमड़ते हुए प्रवाह में समा गई। लीला पर आक्षेप भी असह्य है, इसलिए कि वह कुलवधू है! मैं वेश्या हूँ, इसलिए मेरे प्रेम का उपहार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उसने अविचलित भाव से कहा—आक्षेप नहीं कर रही हूँ, सच्ची बात कह रही हूँ। तुम्हारे डर से बिल खोदने जा रही हूँ। तुम स्वीकार करो या न करो, तुम लीला पर मरते हो। तुम्हारी लीला तुम्हें मुबारक रहे। मैं अपने सिंगारसिंह ही में प्रसन्न हूँ। उद्धार की लालसा अब नहीं रही। पहले जाकर अपना उद्धार करो। अबसे खबरदार कभी भूलकर भी यहाँ न आना, नहीं पछताओगे। तुम-जैसे रँगे हुए पतितों का उद्धार

नहीं करते । उद्धार वही कर सकते हैं जो उद्धार के अभिमान को हृदय मे आने ही नहीं देते । जहाँ प्रेम है, वहाँ किसी तरह का भेद नहीं रह सकता ।

यह कहने के साथ ही वह उठकर बराबरवाले दूसरे कमरे में चली गई और अन्दर से द्वार बन्द कर लिया । दयाकृष्ण कुछ देर वहाँ मर्माहत-सा रहा, फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया, मानो देह में प्राण न हो ।

(४)

दो दिन दयाकृष्ण घर से न निकला । माधुरी ने उसके साथ जो व्यवहार किया, इसकी उसे आशा न थी । माधुरी को उससे प्रेम था, इसका उसे विश्वास था , लेकिन जो प्रेम इतना असहिष्णु हो, जो दूसरे के मनोभावों का ज़रा भी विचार न करे, जो मिथ्या कलक आरोपण करने में भी संकोच न करे, वह उन्माद हो सकता है, प्रेम नहीं । उसने बहुत अच्छा किया कि माधुरी के कपट-जाल में न फँसा, नहीं उसकी न-जाने क्या दुर्गति होती ।

पर दूसरे क्षण उसके भाव बदल जाते और माधुरी के प्रति उसका मन कोमलता से भर जाता । अब वह अपनी अनुदारता पर, अपनी सकीर्णता पर पछताता । उसे माधुरी पर सदेह करने का कोई कारण न था । ऐसी दशा मे ईर्ष्या स्वाभाविक है । वह ईर्ष्या ही क्या, जिसमें डक न हो, विष न हो । माना, समाज उसकी निन्दा करता । यह भी मान लिया कि माधुरी सती भार्या न होती । कम-से-कम सिंगारसिंह तो उसके पञ्जे से निकल जाता । दयाकृष्ण के सिर से ऋण का भार तो कुछ हलका हो जाता, लीला का जीवन तो सुखी हो जाता ।

सहसा किसी ने द्वार खटखटाया । उसने द्वार खोला तो सिगारसिह सामने खड़ा था । बाल बिखरे हुए, कुछ अस्त-व्यस्त ।

दयाकृष्ण ने हाथ मिलाते हुए पूछा—क्या पाँव-पाँव ही आ रहे हो, मुझे क्यों न बुला लिया ?

सिंगार ने उसे चुभती हुई आँखों से देखकर कहा—मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ कि माधुरी कहाँ है ! अवश्य तुम्हारे घर में होगी ।

'क्यों, अपने घर पर होगी, मुझे क्या खबर ? मेरे घर क्यों आने लगी ?'

'इन बहानों से काम न चलेगा, समझ गये ! मैं कहता हूँ, मैं तुम्हारा खून पी जाऊँगा ; वरना ठीक-ठीक बता दो, वह कहाँ गई ?'

'मैं बिलकुल कुछ नहीं जानता, तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। मैं तो दो दिन से घर से निकला ही नहीं।'

'रात को मैं उसके पास था। सबेरे मुझे उसका यह पत्र मिला। मैं उसी वक्त दौड़ा हुआ उसके घर गया। वहाँ उसका पता न था। नौकरों से इतना मालूम हुआ, ताँगे पर बैठकर कहीं गई है। कहाँ गई है, यह कोई न बता सका। मुझे शक हुआ, यहाँ आई होगी। जब तक तुम्हारे घर की तलाशी न ले लूँगा, मुझे चैन न आयेगा।'

उसने मकान का एक-एक कोना देखा, तख़त के नीचे, आलमारी के पीछे। तब निराश होकर बोला—बड़ी बेवफा और मक्कार औरत है। ज़रा इस ख़त को पढ़ो।

'सरदार साहब! मैं आज कुछ दिनों के लिए यहाँ से जा रही हूँ। कब लौटूँगी, कुछ नहीं जानती। कहाँ जा रही हूँ यह भी नहीं जानती। जा इसलिए रही हूँ कि इस बेशर्मी और बेहयाई की ज़िन्दगी से मुझे घृणा हो रही है, और घृणा हो रही है उन लपटों से, जिनके कुत्सित विलास का मैं खिलौना थी और जिनमे तुम मुख्य हो। तुम महीनों से मुझ पर सोने और रेशम की वर्षा कर रहे हो, मगर मैं तुमसे पूछती हूँ, उससे लाख गुने सोने और दस लाख गुने रेशम पर भी तुम अपनी बहन या स्त्री को इस रूप के बाज़ार में बैठने दोगे? कभी नहीं। उन देवियों में कोई ऐसी वस्तु है, जिसे तुम ससार-भर की दौलत से भी मूल्यवान् समझते हो, लेकिन जब तुम शराब के नशे मे चूर, अपने एक-एक अग मे काम का उन्माद भरे आते थे, तो तुम्हे कभी ध्यान आता था, कि तुम उसी अमूल्य वस्तु को किस निर्दयता के साथ पैरों से कुचल रहे हो? कभी ध्यान आता था कि अपनी कुल देवियों को इस अवस्था में देखकर तुम्हें कितना दुःख होता? कभी नहीं। यह उन गीदड़ों और गिद्धों की मनोवृत्ति है, जो किसी लाश को देखकर चारों ओर से जमा हो जाते हैं और उसे नोच-नोचकर खाते हैं। यह समझ रखो, नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती। यदि वह ऐसा कर रही हो, तो समझ लो, उसके और कोई आश्रय और कोई आधार नहीं है, और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलक लगाकर उसे उसी दुरवस्था में मरते देखना चाहता है। क्या वह नारी नहीं है? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं है? लेकिन तुम उसे उस मन्दिर में घुसने नहीं देते। उसके स्पर्श से मन्दिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो

जायगी। ख़ैर, पुरुष-समाज जितना अत्याचार चाहे, कर ले। हम असहाय हैं, अशक्त हैं, आत्माभिमान को भूल बैठी हैं, लेकिन...

सहसा सिगारसिंह ने उसके हाथ से वह पत्र छीन लिया और जेब मे रखता हुआ बोला—क्या बड़े ग़ौर से पढ रहे हो, कोई नयी बात नहीं है। सब कुछ वही है, जो तुमने सिखाया है। यही करने तो तुम उसके यहाँ जाते थे। मैं कहता हूँ, तुम्हें मुझसे इतनी जलन क्यो हो गई? मैंने तो तुम्हारे साथ कोई बुराई न की थी, इस साल-भर मे मैंने माधुरी पर दस हज़ार से कम न फूँके होंगे। घर में जो कुछ मूल्यवान् था, वह मैंने उसके चरणों पर चढा दिया और आज उसे साहस हो रहा है कि वह हमारी कुल-देवियों की बराबरी करे! यह सब तुम्हारा प्रसाद है। 'सत्तर चूहे खाके बिल्ली हज को चली!' कितनी बेवफ़ा ज़ात है। ऐसों को तो गोली मार दे। जिसपर सारा घर लुटा दिया, जिसके पीछे सारे शहर मे बदनाम हुआ, वह आज मुझे उपदेश करने चली है! जरूर इसमें कोई-न-कोई रहस्य है। कोई नया शिकार फँसा होगा, मगर मुझसे भागकर जायेगी कहाँ? ढूँढ न निकालूँ तो नाम नहीं। कम्बख़्त कैसी प्रेम-भरी बातें करती थी कि मुझ पर घड़ों नशा चढ जाता था। बस, कोई नया शिकार फँस गया। यह बात न हो, तो मूँछ मुड़ा लूँ।

दयाकृष्ण उसके सफाचट चेहरे की ओर देखकर मुसकिराया—तुम्हारी मूँछें तो पहले ही मुड़ चुकी हैं।

इस हलके-से विनोद ने जैसे सिगारसिंह के घाव पर मरहम रख दिया। वह बे-सरो सामान घर, वह फटा फर्श, वह टूटी-फूटी चीजें देखकर उसे दयाकृष्ण पर दया आ गई! चोट की तिलमिलाहट में वह जवाब देने के लिए ईंट-पत्थर ढूँढ रहा था, पर अब चोट ठण्ढी पड़ गई थी और दर्द घनीभूत हो रहा था और दर्द के साथ सौहार्द भी जाग रहा था। जब आग ही बुझ गई, तो धुआँ कहाँ से आता।

उसने पूछा—सच कहना, तुमसे भी कभी प्रेम की बातें करती थी?

दयाकृष्ण ने मुसकिराते हुए कहा—मुझसे! मैं तो खाली उसकी सूरत देखने जाता था।

'सूरत देखकर दिल पर काबू तो नहीं रहता।'

'यह तो अपनी-अपनी रुचि है।'

'है मोहिनी, देखते ही कलेजे पर छुरी चल जाती है।'

'मेरे कलेजे पर तो कभी छुरी नहीं चली । यही इच्छा होती थी कि इसके पैरों पर गिर पड़ूँ ।'

'इसी शायरी ने तो यह अनर्थ किया । तुम जैसे बुद्धुओं को किसी देहातिन से शादी करके रहना चाहिए । चले थे वेश्या से प्रेम करने !'

एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—मगर है बेवफा, मक्कार !

'तुमने उससे वफा की आशा की, मुझे तो यही अफसोस है ।'

'तुमने वह दिल ही नहीं पाया, तुमसे क्या कहूँ ।'

एक मिनट के बाद उसने सहृदय भाव से कहा—अपने पत्र में उसने बातें तो सच्ची लिखी है, चाहे कोई माने या न माने । सौन्दर्य को बाजारी चीज़ समझना कुछ बहुत अच्छी बात तो नहीं है ।'

दयाकृष्ण ने पुचारा दिया—जब स्त्री अपना रूप बेचती है, तो उसके खरीदार भी निकल आते हैं । फिर यहाँ तो कितनी ही जातियाँ हैं, जिनका यही पेशा है ।

'यह पेशा चला कैसे ?'

'पुरुषों की दुर्बलता से ।'

'नहीं, मैं समझता हूँ, बिस्मिल्लाह पुरुषों ने की होगी ।'

इसके बाद एकाएक जेब से घड़ी निकालकर देखता हुआ बोला—ओहो ! दो बज गये और अभी मैं यहीं बैठा हूँ । आज शाम को मेरे यहाँ खाना खाना । जरा इस विषय पर बातें होंगी । अभी तो उसे ढूँढ निकालना है । वह है कहीं इसी शहर में । घरवालों से भी कुछ नहीं कहा । बुढ़िया नायका सिर पीट रही थी । उस्तादजी अपनी तकदीर को रो रहे थे । न-जाने कहाँ जाकर छिप रही ।

उसने उठकर दयाकृष्ण से हाथ मिलाया और चला ।

दयाकृष्ण ने पूछा—मेरी तरफ से तो तुम्हारा दिल साफ हो गया ?

सिगार ने पीछे फिरकर कहा—हुआ भी और नहीं भी हुआ, और बाहर निकल गया ।

(५)

सात-आठ दिन तक सिगारसिंह ने सारा शहर छाना, पुलिस में रिपोर्ट की, समाचारपत्रों में नोटिस छपाई, अपने आदमी दौड़ाये, लेकिन माधुरी का कुछ भी सुराग न मिला । महफिल कैसे गर्म होती ! मित्रवृन्द सुबह-शाम हाज़िरी देने आते और

अपना-सा मुँह लेकर लौट जाते। सिगार के पास उनके साथ गपशप करने का समय न था।

गरमी के दिन, सजा हुआ कमरा, भट्ठी बना हुआ था। खस की टट्टियाँ भी थीं, पखा भी; लेकिन गरमी जैसे किसी के समझाने-बुझाने की परवाह नहीं करना चाहती, अपने दिल का बुखार निकालकर ही रहेगी।

सिंगारसिंह अपने भीतरवाले कमरे में बैठा हुआ पेग-पर-पेग चढ़ा रहा था, पर अन्दर की आग न शान्त होती थी। इस आग ने ऊपर की घास-फूस को जलाकर भस्म कर दिया था और अब अन्तस्तल की जड़-विरक्ति और अचल विचार को द्रवित करके बड़े वेग से ऊपर फेंक रही थी। माधुरी की बेवफाई ने उसके आमोदी हृदय को इतना आहत कर दिया था कि अब अपना जीवन ही उसे बेकार-सा मालूम होता था। माधुरी उसके जीवन में सबसे सत्य वस्तु थी, सत्य भी और सुन्दर भी। उसके जीवन की सारी रेखाएँ इसी बिन्दु पर आकर जमा हो जाती थीं। वह बिन्दु एकाएक पानी के बुलबुले की भाँति मिट गया और अब वह सारी रेखाएँ, वह सारी भावनाएँ, वह सारी मृदु स्मृतियाँ, उन झल्लाई हुई मधु-मक्खियों की तरह भनभनाती फिरती थीं, जिनका छत्ता जला दिया गया हो। जब माधुरी ने कपट-व्यवहार किया तो और किससे कोई आशा की जाय? इस जीवन ही मे क्या है? आम मे रस ही न रहा, तो गुठली किस काम की?

लीला कई दिन से महफिल में सन्नाटा देखकर चकित हो रही थी। उसने कई महीनो से घर के किसी विषय मे बोलना छोड़ दिया था। बाहर से जो आदेश मिलता था, उसे बिना कुछ कहे-सुने पूरा करना ही उसके जीवन का क्रम था। वीतराग-सी हो गई थी। न किसी शौक से वास्ता था, न सिगार से।

मगर इस कई दिन के सन्नाटे ने उसके उदास मन को भी चिन्तित कर दिया। चाहती थी कुछ पूछे, लेकिन पूछे कैसे? मान जो टूट जाता। मान ही किस बात का, मान तब करे, जब कोई उसकी बात पूछता हो। मान-अपमान से उसे प्रयोजन नहीं। नारी ही क्यों हुई।

उसने धीरे-धीरे कमरे का पर्दा हटाकर अन्दर झाँका। देखा, सिगारसिंह सोफा पर चुपचाप लेटा हुआ है, जैसे कोई पक्षी साँझ के सन्नाटे में परों में मुँह छिपाये बैठा हो।

समीप आकर बोली—मेरे मुँह पर तो ताला डाल दिया गया है, लेकिन क्या करूँ, बिना बोले रहा नहीं जाता। कई दिन से सरकार की महफिल मे सन्नाटा क्यों है ? तबीयत तो अच्छी है ?

सिगार ने उसकी ओर आँखें उठाई। उनमें व्यथा भरी हुई थी। कहा—तुम अपने मैके क्यों नहीं चली जातीं लीला ?

'आपकी जो आज्ञा, पर यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर न था।'

'वह कोई बात नहीं। मैं बिलकुल अच्छा हूँ। ऐसे बेहयाओं को मौत भी नहीं आती। अब इस जीवन से जी भर गया। कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहता हूँ, तुम अपने घर चली जाओ, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।'

'भला, आपको मेरी इतनी चिन्ता तो है।'

'अपने साथ जो कुछ ले जाना चाहती हो, ले जाओ।'

'मैंने इस घर की चीज़ों को अपनी समझना छोड़ दिया है।'

'मैं नाराज़ होकर नहीं कह रहा हूँ लीला। न-जाने कब लौटूँ, तुम यहाँ अकेली कैसे रहोगी ?

कई महीनों के बाद लीला ने पति की आँखों मे स्नेह की झलक देखी।

'मेरा विवाह तो इस घर की सम्पत्ति से नहीं हुआ है, तुमसे हुआ है। जहाँ तुम रहोगे, वहीं मैं भी रहूँगी।'

'मेरे साथ तो अबतक तुम्हें रोना ही पड़ा।'

लीला ने देखा, सिगार की आँखों मे आँसू की एक बूँद नीले आकाश में चन्द्रमा की तरह गिरने-गिरने हो रही थी। उसका मन भी पुलकित हो उठा। महीनों की क्षुधाग्नि मे जलने के बाद अन्न का एक दाना पाकर वह उसे कैसे ठुकरा दे। पेट नहीं भरेगा, कुछ भी नहीं होगा, लेकिन उस दाने को ठुकराना क्या उसके बस की बात थी ?

उसने बिलकुल पास आकर अपने अञ्चल को उसके समीप ले जाकर कहा—मैं तो तुम्हारी हो गई। हँसाओगे, हँसूँगी, रुलाओगे, रोऊँगी; रखोगे, तो रहूँगी, निकालोगे, तो भी रहूँगी, मेरा घर तुम हो, धर्म तुम हो, अच्छी हूँ, तो तुम्हारी हूँ, बुरी हूँ, तो तुम्हारी हूँ।

और दूसरे क्षण सिगार के विशाल सीने पर उसका सिर रखा हुआ था और उसके

हाथ थे लीला की कमर में। दोनों के मुख पर हर्ष की लाली थी, आँखों में हर्ष के आँसू और मन मे एक ऐसा तूफान, जो उन्हे न-जाने कहाँ उड़ा ले जायगा।

एक क्षण के बाद सिंगार ने कहा—तुमने कुछ सुना, माधुरी भाग गई और पगला दयाकृष्ण उसकी खोज में निकला है।

लीला को विश्वास न आया—दयाकृष्ण ?

'हाँ जी, जिस दिन वह भागी है, उसके दूसरे ही दिन वह भी चल दिया।'

'वह तो ऐसा आदमी नहीं है। और माधुरी क्यो भागी ?'

'दोनों मे प्रेम हो गया था। माधुरी उसके साथ रहना चाहती थी। वह राज़ी न हुआ।'

लीला ने एक लम्बी साँस ली। दयाकृष्ण के वह शब्द याद आये, जो उसने कई महीने पहले कहे थे। दयाकृष्ण की वह याचना-भरी आँखें उसके मन को मसोसने लगीं।

सहसा किसी ने बडे जोर से द्वार खोला और धड़धड़ाता हुआ भीतरवाले कमरे के द्वार पर आ गया।

सिंगार ने चकित होकर कहा—अरे! तुम्हारी यह क्या हालत है कृष्णा! किधर से आ रहे हो ?

दयाकृष्ण की आँखें लाल थीं, सिर और मुँह पर गर्द जमी हुई, चेहरे पर घबराहट, जैसे कोई दीवाना हो।

उसने चिल्लाकर कहा—तुमने सुना, माधुरी इस ससार मे नहीं रही!

और दोनों हाथो से सिर पीट-पीटकर रोने लगा, मानो हृदय को और प्राणों को आँखों से बहा देगा।

चमत्कार

बी० ए० पास करने के बाद चन्द्रप्रकाश को एक ट्यूशन करने के सिवा और कुछ न सूझा। उसकी माता पहले ही मर चुकी थीं, इसी साल पिता का भी देहान्त हो गया और प्रकाश जीवन के जो मधुर स्वप्न देखा करता था, वह सब धूल मे मिल गये। पिता ऊँचे ओहदे पर थे, उनकी कोशिश से चन्द्रप्रकाश को कोई अच्छी जगह मिलने की पूरी आशा थी, पर वह सब मसूबे धरे रह गये और अब गुज़र-बसर के लिए वही ३०) महीने की ट्यूशन रह गई। पिता ने कुछ सपत्ति भी न छोड़ी, उलटे वधू का बोझ और सिर पर लाद दिया और स्त्री भी मिली, तो पढ़ी-लिखी, शौक़ीन, ज़बान की तेज़, जिसे मोटा खाने और मोटा पहनने से मर जाना कबूल था। चन्द्रप्रकाश को ३०) की नौकरी करते शर्म तो आई, लेकिन ठाकुर साहब ने रहने का स्थान देकर उनके आँसू पोछ दिये। यह मकान ठाकुर साहब के मकान से बिलकुल मिला हुआ था—पक्का, हवादार, साफ-सुथरा और ज़रूरी सामान से लैस। ऐसा मकान २०) से कम पर न मिलता, काम केवल दो घण्टे का। लड़का था तो लगभग उन्हीं की उम्र का, पर बड़ा कुन्दजेहन, कामचोर। अभी नवें दरजे मे पढ़ता था। सबसे बड़ी बात यह कि ठाकुर और ठकुराइन दोनों प्रकाश का बहुत आदर करते थे, बल्कि लड़का ही समझते थे। वह नौकर नहीं, घर का आदमी था और घर के हरएक मामले मे उसकी सलाह ली जाती थी। ठाकुर साहब अँगरेज़ी नहीं जानते थे। उनकी समझ मे अँगरेजीदाँ लौंडा भी उनसे ज्यादा बुद्धिमान्, चतुर और तजरबेकार था।

(२)

सन्ध्या का समय था। प्रकाश ने अपने शिष्य वीरेन्द्र को पढ़ाकर छड़ी उठाई, तो ठकुराइन ने आकर कहा—अभी न जाओ बेटा, ज़रा मेरे साथ आओ, तुमसे कुछ सलाह करना है।

प्रकाश ने मन मे सोचा—आज कैसी सलाह है, वीरेन्द्र के सामने क्यो नहीं

कहा ? उसे भीतर ले जाकर रमा देवी ने कहा—तुम्हारी क्या सलाह है, बीरू का ब्याह कर दूँ ? एक बहुत अच्छे घर से सन्देसा आया है।

प्रकाश ने मुसकिराकर कहा—यह तो बीरू बाबू ही से पूछिए।

'नहीं, मैं तुमसे पूछती हूँ।'

प्रकाश ने असमजस मे पड़कर कहा—मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूँ। उनका बीसवाँ साल तो है, लेकिन यह समझ लीजिए कि पढ़ना हो चुका।

'तो अभी न करूँ, यही सलाह है ?'

'जैसा आप उचित समझें। मैंने तो दोनो बातें कह दीं।'

'तो कर डालूँ ? मुझे यही डर लगता है कि लड़का कहीं बहक न जाय।'

'मेरे रहते इसकी तो आप चिन्ता न करें। हाँ, इच्छा हो, तो कर डालिए। कोई हरज भी नहीं है।'

'सब तैयारियाँ तुम्हींको करनी पड़ेंगी, यह समझ लो।'

'तो मैं इनकार कब करता हूँ ?'

रोटी की खैर मनानेवाले शिक्षित युवको मे एक प्रकार की दुविधा होती है, जो उन्हें अप्रिय सत्य कहने से रोकती है। प्रकाश मे भी यही कमज़ोरी थी।

बात पक्की हो गई और विवाह का सामान होने लगा। ठाकुर साहब उन मनुष्यों में थे, जिन्हे अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। उनकी निगाह में प्रकाश की डिग्री, उनकी ६० साल की अनुभूति से कहीं मूल्यवान् थी। विवाह का सारा आयोजन प्रकाश के हाथों मे था। दस-बारह हज़ार रुपये खर्च करने का अधिकार कुछ कम गौरव की बात न थी। देखते-देखते एक फटेहाल युवक जिम्मेदार मैनेजर बन बैठा। कहीं कपड़े-वाला उसे सलाम करने आया है, कहीं मुहल्ले का बनिया घेरे हुए है, कहीं गैस और शामियानेवाला खुशामद कर रहा है। वह चाहता तो दो-चार सौ रुपये बड़ी आसानी से बना लेता, लेकिन इतना नीच न था। फिर उसके साथ क्या दगा करता, जिसने सब कुछ उसी पर छोड़ दिया! पर जिस दिन उसने पाँच हज़ार के जेवर खरीदे, उस दिन उसका मन चचल हो उठा।

घर आकर चम्पा से बोला—हम तो यहाँ रोटियों के मुहताज हैं और दुनिया मे ऐसे-ऐसे आदमी पड़े हुए हैं, जो हजारो-लाखों रुपये के ज़ेवर बनवा डालते हैं। ठाकुर साहब ने आज बहू के चढावे के लिए पांच हजार के ज़ेवर खरीदे। ऐसी-ऐसी

चीज़ों को देखकर आँखें ठण्ढी हो जायँ। सच कहता हूँ, बाज चीजों पर तो आँख नहीं ठहरती थीं।

चम्पा ईर्ष्याजनित विराग से बोली—उँह, हमें क्या करना है; जिन्हें ईश्वर ने दिया है, वे पहनें। यहाँ तो रो-रोकर मरने ही के लिए पैदा हुए हैं।

चन्द्रप्रकाश—इन्हीं लोगों को मौज है। न कमाना, न धमाना। बाप-दादा छोड़ गये हैं, मजे से खाते और चैन करते हैं। इसी से कहता हूँ, ईश्वर बड़ा अन्यायी है।

चम्पा—अपना अपना पुरुषार्थ है, ईश्वर का क्या दोष। तुम्हारे बाप-दादा छोड़ गये होते, तो तुम भी मौज करते। यहाँ तो रोटियाँ चलना मुश्किल है, गहने-कपड़े को कौन रोये। और न इस ज़िन्दगी मे कोई ऐसी आशा ही है। कोई गत की साड़ी भी नहीं रही कि किसी भले आदमी के घर जाऊँ तो पहन लूँ। मैं तो इसी सोच मे हूँ कि ठकुराइन के यहाँ ब्याह मे कैसे जाऊँगी। सोचती हूँ, बीमार पड़ जाती तो जान बचती।

यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं।

प्रकाश ने तसल्ली दी—साड़ी तुम्हारे लिए मैं लाऊँगा। अब क्या इतना भी न कर सकूँगा। यह मुसीबत के दिन क्या सदा बने रहेंगे? ज़िन्दा रहा तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक ज़ेवरों से लदी होगी।

चम्पा मुसकिराकर बोली—चलो, ऐसी मन की मिठाई मैं नहीं खाती। निबाह होता जाय, यही बहुत है। गहनों की साध नहीं है।

प्रकाश ने चम्पा की बातें सुनकर लज्जा और दुःख से सिर झुका लिया। चम्पा उसे इतना पुरुषार्थ-हीन समझती है!

(३)

रात को दोनों भोजन करके लेटे, तो प्रकाश ने फिर गहनों की बात छेड़ी। गहने उसकी आँखों मे बसे हुए थे—'इस शहर मे ऐसे बढ़िया गहने बनते हैं, मुझे इसकी आशा न थी।'

चम्पा ने कहा—कोई और बात करो। गहनों की बात सुनकर जी जलता है।

'वैसी चीज़ें तुम पहनो तो रानी मालूम होने लगो।'

'गहनों से क्या सुन्दरता बढ़ जाती है? मैंने तो ऐसी बहुत-सी औरतें देखी हैं, जो गहने पहनकर भद्दी दीखने लगती हैं।'

'ठाकुर साहब भी मतलब के यार हैं। यह न हुआ कि कहते, इसमें से कोई चीज चम्पा के लिए लेते जाओ।'

'तुम भी कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो।'

'इसमें बचपन की क्या बात है? कोई उदार आदमी कभी इतनी कृपणता न करता।'

'मैंने तो कोई ऐसा उदार आदमी न देखा, जो अपनी बहू के गहने किसी गैर को दे दे।'

'मैं ग़ैर नहीं हूँ। हम दोनों एक ही मकान में रहते हैं, मैं उनके लड़के को पढ़ाता हूँ और शादी का सारा इन्तज़ाम कर रहा हूँ, अगर सौ दो-सौ की कोई चीज दे देते तो वह निष्फल न जाती, मगर धनवानों का हृदय धन के भार से दबकर सिकुड़ जाता है। उसमें उदारता के लिए स्थान ही नहीं रहता।'

रात के बारह बज गये हैं, फिर भी प्रकाश को नींद नहीं आती। बार-बार वही चमकीले गहने आँखों के सामने आ जाते हैं। कुछ बादल हो आये हैं और बार-बार बिजली चमक उठती है।

सहसा प्रकाश चारपाई से उठ खड़ा हुआ। उसे चम्पा का आभूषणहीन अंग देखकर दया आई। यही तो खाने-पहनने की उम्र है और इसी उम्र में इस बेचारी को हरएक चीज़ के लिए तरसना पड़ रहा है। वह दबे-पाँव कमरे से बाहर निकलकर छत पर आया। ठाकुर साहब की छत इस छत से मिली हुई थी। बीच में एक पाँच फीट ऊँची दीवार थी। वह दीवार पर चढ़कर ठाकुर साहब की छत पर आहिस्ता से उतर गया। घर में बिलकुल सन्नाटा था।

उसने सोचा, पहले जीने से उतरकर ठाकुर साहब के कमरे में चलूँ; अगर वह जाग गये तो जोर से हँसूँगा और कहूँगा, कैसा चरका दिया, या कह दूँगा, मेरे घर की छत से कोई आदमी इधर आता दिखाई दिया; इसलिए मैं भी पीछे-पीछे आया कि देखूँ, यह क्या करता है; अगर सन्दूक की कुञ्जी मिल गई, तो फिर फतह है। किसी का मुझपर सन्देह ही न होगा। सब लोग नौकर पर सन्देह करेंगे। मैं भी कहूँगा, साहब नौकरों की हरकत है; इन्हें छोड़कर और कौन ले जा सकता है। मैं बेदाग़ बच जाऊँगा। शादी के बाद कोई दूसरा घर ले लूँगा। फिर धीरे-धीरे एक-एक चीज़ चम्पा को दूँगा, जिसमें उसे कोई सन्देह न हो।

फिर भी जीने से उतरने लगा, तो उसकी छाती धड़क रही थी।

(४)

धूप निकल आई थी। प्रकाश अभी सो रहा था कि चंपा ने उसे जगाकर कहा—बड़ा गज़ब हो गया। रात को ठाकुर साहब के घर मे चोरी हो गई। चोर गहने की सदूकची उठा ले गया!

प्रकाश ने पडे-पडे पूछा—किसीने पकड़ा नहीं चोर को?

'किसी को खबर भी हो! वही सदूकची ले गया, जिसमे ब्याह के गहने रखे थे। न-जाने कैसे कुञ्जी उड़ा ली और न जाने कैसे उसे मालूम हुआ कि इस संदूक मे सदूकची रखी है!'

'नौकरों की कार्रवाई होगी। बाहरी चोर का यह काम नही है।'

'नौकर तो उनके तीनों पुराने हैं।'

'नीयत बदलते क्या देर लगती है। आज मौका देखा, उडा ले गये।'

'तुम जाकर जरा उन लोगो को तसल्ली तो दो। ठकुराइन बेचारी रो रही थीं। तुम्हारा नाम ले-लेकर कहती थीं कि बेचारा महीनों इन गहनो के लिए दौड़ा, एक-एक चीज अपने सामने जँचवाई और चोर दाढीजारो ने उसकी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया।'

प्रकाश चटपट उठ बैठा और घबड़ाया हुआ-सा जाकर ठकुराइन से बोला—यह तो बड़ा अनर्थ हो गया माताजी, मुझसे तो अभी-अभी चम्पा ने कहा। ठाकुर साहब सिर पर हाथ रखे बैठे हुए थे। बोले—कहीं सेंध नहीं, कोई ताला नहीं टूटा, किसी दरवाजे की चूल नहीं उतरी। समझ मे नहीं आता, चोर आया किधर से!

ठकुराइन ने रोकर कहा—मै तो लुट गई भैया, ब्याह सिर पर खड़ा है, कैसे क्या होगा भगवान्! तुमने दौड़-धूप की थी, तब कहीं जाके चीजें आई थीं। न-जाने किस मनहूस सायत मे लग्न आई थी।

प्रकाश ने ठाकुर साहब के कान मे कहा—मुझे तो किसी नौकर की शरारत मालूम होती है।

ठकुराइन ने विरोध किया—अरे नहीं भैया, नौकरो मे ऐसा कोई नहीं। दस-दस हज़ार रुपये यों ही ऊपर रखे रहते थे, कभी एक पाई भी नहीं गई।

ठाकुर साहब ने नाक सिकोड़कर कहा—तुम क्या जानो, आदमी का मन कितना

जल्द बदल जाया करता है। जिसने अब तक चोरी नहीं की, वह कभी चोरी न करेगा, यह कोई नहीं कह सकता। मैं पुलिस मे रिपोर्ट करूँगा और एक-एक नौकर की तलाशी कराऊँगा। कहीं माल उड़ा दिया होगा। जब पुलिस के जूते पड़ेंगे, तो आप कबूलेंगे।

प्रकाश ने पुलिस का घर मे आना खतरनाक समझा। कहीं उन्हीं के घर मे तलाशी ले तो अनर्थ ही हो जाय। बोले—पुलिस मे रिपोर्ट करना और तहकीकात कराना व्यर्थ है। पुलिस माल तो न बरामद कर सकेगी; हाँ, नौकरो को मार-पीट भले ही लेगी। कुछ नजर भी उसे चाहिए, नहीं तो कोई दूसरा ही स्वाँग खड़ा कर देगी। मेरी तो सलाह है कि एक-एक नौकर को एकान्त मे बुलाकर पूछा जाय।

ठाकुर साहब ने मुँह बनाकर कहा—तुम भी क्या बच्चो-सी बातें करते हो प्रकाश बाबू! भला चोरी करनेवाला अपने-आप कबूलेगा! तुम मार-पीट भी तो नहीं कर सकते। हाँ, पुलिस मे रिपोर्ट करना मुझे भी फिजूल मालूम होता है। माल बरामद होने से रहा, उल्टे महीनो की परेशानी हो जायगी।

प्रकाश—लेकिन कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा।

ठाकुर—कोई लाभ नहीं। हाँ, अगर कोई खुफिया पुलिस हो जो चुपके-चुपके पता लगाये, तो अलबत्ता माल निकल आये, लेकिन यहाँ ऐसी पुलिस कहाँ। तकदीर ठोंककर बैठ रहो, और क्या।

प्रकाश—आप बैठ रहिए; लेकिन मैं यो बैठनेवाला नहीं। मैं इन्हीं नौकरो के सामने चोर का नाम निकलवाऊँगा।

ठकुराइन—नौकरों पर मुझे पूरा विश्वास है। किसी का नाम भी निकल आये, तो मुझे सन्देह ही रहेगा। किसी बाहर के आदमी का काम है। चाहे जिधर से आया हो, पर चोर आया बाहर से। तुम्हारे कोठे से भी तो आ सकता है।

ठाकुर—हाँ, ज़रा अपने कोठे पर तो देखो, शायद कुछ निशान मिले। कल दरवाज़ा तो खुला नहीं रह गया?

प्रकाश का दिल धड़कने लगा। बोला—मैं तो दस बजे द्वार बद कर लेता हूँ। हाँ, कोई पहले से ही मौक़ा पाकर कोठे पर चला गया हो और वहाँ छिपा बैठा रहा हो, तो बात दूसरी है।

तीनो आदमी छत पर गये तो बीच की मुँडेर पर किसी के पाँव की रगड़ के

निशान दिखाई दिये। जहाँ प्रकाश का पाँव पड़ा था, वहाँ का चूना लग जाने के कारण छत पर पाँव का निशान पड़ गया था। प्रकाश की छत पर जाकर मुँड़ेर की दूसरी तरफ देखा तो वैसे ही निशान वहाँ भी दिखाई दिये। ठाकुर साहब सिर झुकाये खड़े थे, सकोच के मारे कुछ कह न सकते थे। प्रकाश ने उनके मन की बात खोल दी—इससे तो स्पष्ट होता है कि चोर मेरे ही घर मे से आया। अब तो कोई सदेह ही नही रहा।

ठाकुर साहब ने कहा—हाँ, मैं भी यही समझता हूँ, लेकिन इतना पता लग जाने से ही क्या हुआ। माल तो जाना था, सो गया। अब चलो आराम से बैठें। आज रुपये की कोई फिक्र करनी होगी।

प्रकाश—मैं आज ही यह घर छोड़ दूँगा।

ठाकुर—क्यों, इसमे तुम्हारा कोई दोष नहीं।

प्रकाश—आप कहे, लेकिन मैं तो समझता हूँ, मेरे सिर बड़ा भारी अपराध लग गया। मेरा दरवाज़ा नौ-दस बजे तक खुला ही रहता है। चोर ने रास्ता देख लिया। सभव है, दो-चार दिन मे फिर आ घुसे। घर में अकेली एक औरत सारे घर का निगरानी नहीं कर सकती। उधर वह तो रसोई मे बैठी है, उधर कोई आदमी चुपके से ऊपर चढ जाय तो जरा भी आहट नही मिल सकती। मैं घूम-घामकर कभी नौ बजे आया, कभी दस बजे। और शादी के दिनों मे तो देर होती ही रहेगी। उधर का रास्ता बन्द ही हो जाना चाहिए। मैं तो समझता हूँ, इस चोरी की सारी जिम्मेदारी मेरे सिर है।

ठकुराइन डरीं—तुम चले जाओगे भैया, तब तो घर और फाड़े खायगा।

प्रकाश—कुछ भी हो माताजी, मुझे बहुत जल्द घर छोड़ना ही पड़ेगा। मेरी ग़फलत से चोरी हुई, उसका मुझे प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा।

प्रकाश चला गया, तो ठाकुर ने स्त्री से कहा—बड़ा लायक आदमी है।

ठकुराइन—क्या बात है। चोर उधर से आया, यही बात उसे लग गई।

'कहीं यह चोर को पकड़ पाये, तो कच्चा खा जाय।'

'मार ही डाले!'

'देख लेना, कभी-न-कभी माल बरामद करेगा।'

'अब इस घर मे कदापि न रहेगा, कितना ही समझाओ।'

'किराये के २०) और दे दूँगा।'

'हम किराया क्यों दें। वह आप ही घर छोड़ रहे हैं। हम तो कुछ कहते नहीं।'

'किराया तो देना ही पड़ेगा। ऐसे आदमी के साथ कुछ बल भी खाना पड़े तो बुरा नहीं लगता।'

'मैं तो समझती हूँ, वह किराया लेंगे ही नहीं।'

'तीस रुपये में गुजर भी तो न होता होगा।'

(५)

प्रकाश ने उसी दिन वह घर छोड़ दिया। उस घर मे रहने मे जोखिम था, लेकिन जब तक शादी की धूमधाम रही, प्राय सारे दिन यहीं रहते थे। चम्पा से कहा, एक सेठजी के यहाँ ५०) महीने का काम और मिल गया है; मगर यह रुपये मैं उन्हीं के पास जमा करता जाऊँगा। वह आमदनी केवल जेवरों मे खर्च होगी। उसमे से एक पाई घर के खर्च मे न आने दूँगा। चम्पा फड़क उठी। पति-प्रेम का यह परिचय पाकर उसने अपने भाग्य को सराहा, देवताओं में उसकी श्रद्धा और बढ गई।

अब तक प्रकाश और चम्पा के बीच मे कोई परदा न था। प्रकाश के पास जो कुछ था, वह चम्पा का था। चम्पा ही के पास उसके बक्स, सदूक, आलमारी की कुञ्जियाँ रहती थीं, मगर अब प्रकाश का एक सदूक हमेशा बन्द रहता। उसकी कुञ्जी कहां है, इसका चम्पा को पता नहीं। वह पूछती है, इस सन्दूक में क्या है, तो वह कह देते हैं—कुछ नहीं, पुरानी किताबें मारी-मारी फिरती थीं, उठाके सन्दूक में बन्द कर दी है। चम्पा को सदेह का कोई कारण न था।

एक दिन चम्पा पति को पान देने गई तो देखा, वह उस सन्दूक को खोले हुए देख रहे हैं। उसे देखते ही उन्होंने सन्दूक जल्दी से बन्द कर दिया। उनका चेहरा जैसे फक हो गया। सन्देह का अकुर जमा, मगर पानी न पाकर सूख गया। चम्पा किसी ऐसे कारण की कल्पना ही न कर सकी, जिससे सन्देह को आश्रय मिलता।

लेकिन पाँच हजार की सम्पत्ति को इस तरह छोड़ देना कि उसका ध्यान ही न आये, प्रकाश के लिए असम्भव था। वह कहीं बाहर से आता, तो एक बार सन्दूक अवश्य खोलता।

एक दिन पड़ोस मे चोरी हो गई। उस दिन से प्रकाश अपने कमरे ही मे सोने

लगा। असाढ के दिन थे। ऊमस के मारे दम घुटता था। ऊपर एक साफ-सुथरा बरामदा था, जो बरसात में सोने के लिए ही शायद बनाया गया था। चम्पा ने कई बार ऊपर सोने के लिए कहा, पर प्रकाश न माना। अकेला घर कैसे छोड़ दे।

चम्पा ने कहा—चोरी ऐसो के यहाँ नहीं होती। चोर घर मे कुछ देखकर ही जान खतरे मे डालता है। यहाँ क्या रखा है।

प्रकाश ने क्रुद्ध होकर कहा—कुछ नहीं है, तो बरतन-भांड़े तो हैं ही। गरीब के लिए अपनी हाँड़ी ही बहुत है।

एक दिन चम्पा ने कमर मे झाड़ू लगाई, तो सन्दूक को खिसकाकर दूसरी तरफ रख दिया। प्रकाश ने सन्दूक का स्थान बदला हुआ पाया, तो सशंक होकर बोला—सन्दूक तुमने हटाया?

यह पूछने की कोई बात न थी। झाड़ू लगाते वक्त प्राय: चीज़ें इधर-उधर खिसक जाती ही हैं। बोली—मैं क्यों हटाने लगी।

'फिर किसने हटाया?'

'मैं नहीं जानती।'

'घर मे तुम रहती हो, जानेगा कौन?'

'अच्छा, अगर मैंने ही हटा दिया तो इसमे पूछने की क्या बात है?'

'कुछ नहीं, यों ही पूछता था।'

मगर जब तक सन्दूक खोलकर सब चीज़ें देख न ले, प्रकाश को चैन कहां? चम्पा ज्योंही भोजन पकाने लगी, उसने सन्दूक खोला और आभूषणो को देखने लगा। आज चम्पा ने पकौड़ियाँ बनाई थीं। पकौड़ियाँ गरम-गरम ही मजा देती हैं। प्रकाश को पकौड़ियाँ पसन्द भी थीं। उसने थोड़ी-सी पकौड़ियाँ एक तश्तरी मे रखीं और प्रकाश को देने गई। प्रकाश ने उसको देखते ही सन्दूक धमाके से बन्द कर दिया और ताला लगाकर उसे बहलाने के इरादे से बोला—तश्तरी मे क्या लाई! अच्छा! पकौड़ियाँ हैं!

आज चम्पा को सन्देह हो गया। सन्दूक में क्या है, यह देखने की उत्सुकता हुई। प्रकाश उसकी कुञ्जी कहीं छिपाकर रखता था। चम्पा किसी तरह वह कुञ्जी उड़ा लेने की चाल सोचने लगी। एक दिन एक बिसाती कुञ्जियों का गुच्छा बेचने आ निकला। चम्पा ने उस ताले की कुञ्जी ले ली और और सन्दूक खोल डाला। अरे!

यह तो आभूषण हैं । उसने एक-एक आभूषण को निकालकर देखा । यह गहने कहाँ से आये ! मुझसे कभी इनकी चर्चा नहीं की । सहसा उसके मन में भाव उठा—कहीं यह ठाकुर साहब के गहने तो नहीं हैं । चीज़ें वही थीं, जिनका वह बखान करते रहते थे । उसे अब कोई सन्देह न रहा , लेकिन इतना घोर पतन ! लज्जा और खेद से उसका सिर झुक गया ।

उसने तुरन्त सन्दूक बन्द कर दिया और चारपाई पर लेटकर सोचने लगी । इनकी इतनी हिम्मत पडी कैसे ? यह दुर्भावना इनके मन मे आई ही क्यों ? मैंने तो कभी आभूषणों के लिए आग्रह नहीं किया । अगर आग्रह भी करती, तो क्या उसका आशय यह होता कि वह चोरी करके लायें ? चोरी—आभूषणो के लिए ! इनका मन क्यों इतना दुर्बल हो गया ?

उसके जी मे आया, इन गहनो को उठा ले और ठकुराइन के चरणों पर डाल दे, उनसे कहे—यह मत पूछिए, यह गहने मेरे पास कैसे आये । आपकी चीज आपके पास आ गई । इसी से सन्तोष कर लीजिए ।

लेकिन परिणाम कितना भयंकर होगा !

(६)

उस दिन से चम्पा कुछ उदास रहने लगी । प्रकाश से उसे वह प्रेम न रहा, न वह सम्मान-भाव । बात-बात पर तक़रार होती । अभाव में जो परस्पर सद्भाव था, वह गायब हो गया था । तब एक दूसरे से दिल की बात कहता था, भविष्य के मसूबे बाँधे जाते थे, आपस मे सहानुभूति थी । अब दोनो ही दिलगीर रहते । कई-कई दिनों तक आपस मे एक बात भी न होती ।

कई महीने गुज़र गये । शहर के एक बैंक मे असिस्टेंट मैनेजर की जगह खाली हुई । प्रकाश ने अर्थशास्त्र पढा था, लेकिन शर्त यह थी कि नक़द दस हजार की जमानत दाखिल की जाय । इतनी बड़ी रकम कहाँ से आये । प्रकाश तड़प-तड़पकर रह जाता था ।

एक दिन ठाकुर साहब से इस विषय मे बात चल पड़ी ।

ठाकुर साहब ने कहा—तुम क्यों नहीं दरख्वास्त भेजते ?

प्रकाश ने सिर झुकाकर कहा—दस हजार को नकद जमानत माँगते हैं । मेरे पास रुपये कहाँ रखे है !

'अजी, तुम दरख्वास्त तो दो ; अगर सारी बातें तय हो जायँ, तो जमानत भी दे दी जायगी। इसकी चिन्ता न करो।'

प्रकाश ने स्तम्भित होकर कहा—आप जमानत दे देंगे ?

'हाँ-हाँ, यह कौन-सी बड़ी बात है।'

प्रकाश घर चला तो बहुत रंजीदा था। उसको यह जगह अब अवश्य मिलेगी, लेकिन फिर भी वह प्रसन्न नहीं है। ठाकुर साहब की सरलता—उनका उस पर इतना अटल विश्वास—उसे आहत कर रहा है। उनकी शराफत उसके कमीनेपन को कुचले डालती है।

उसने घर आकर चम्पा को खुशखबरी सुनाई। चम्पा ने सुनकर मुँह फेर लिया। एक क्षण के बाद बोली—ठाकुर साहब से तुमने क्यों जमानत दिलवाई। प्रकाश ने चिढ़कर कहा—फिर और किससे दिलवाता ?

'यही न होता, जगह न मिलती। रोटियाँ तो मिल ही जातीं। रुपये-पैसे की बात है। कहीं भूल-चूक हो जाय, तो तुम्हारे साथ उनके रुपये भी जायँ।'

'यह तुम कैसे समझती हो कि भूल-चूक होगी ? क्या मैं ऐसा अनाड़ी हूँ ?'

चम्पा ने विरक्त मन से कहा—आदमी की नीयत भी तो हमेशा एक-सी नहीं रहती।

प्रकाश ठक्-से रह गया। उसने चम्पा को चुभती हुई आँखों से देखा, पर चम्पा ने मुँह फेर लिया था। वह उसके भावों के विषय में कुछ निश्चय न कर सका, लेकिन ऐसी खुशखबरी सुनकर भी चम्पा का उदासीन रहना उसे विकल करने लगा। उसके मन में प्रश्न उठा—इस वाक्य में कहीं आक्षेप तो नहीं छिपा हुआ है। चम्पा ने सन्दूक खोलकर देख तो नहीं लिया ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए इस समय वह अपनी एक आँख भी भेंट कर सकता था।

भोजन करते समय प्रकाश ने चम्पा से पूछा—तुमने क्या सोचकर कहा था कि आदमी की नीयत तो हमेशा एक-सी नहीं रहती ? जैसे यह उसके जीवन या मृत्यु का प्रश्न हो।

चम्पा ने संकट में पड़कर कहा—कुछ नहीं, मैंने दुनिया की बात कही थी। प्रकाश को संतोष न हुआ।

'क्या जितने आदमी बैंकों मे नौकर हैं, उनकी नीयत बदलती रहती है ?' वह बोला।

चम्पा ने गला छुड़ाना चाहा—तुम जबान पकड़ते हो। ठाकुर साहब के यहाँ इस शादी मे ही तुम अपनी नीयत ठीक नहीं रख सके। सौ-दो-सौ रुपये की चीजें घर में रख ही लीं।

प्रकाश के दिल से बोझ उतर गया। मुसकिराकर बोला—अच्छा, तुम्हारा सकेत उस तरफ था, लेकिन मैंने कमीशन के सिवा उनकी एक पाई भी नहीं छुई। और कमीशन लेना तो कोई पाप नहीं। बड़े-बड़े हुक्काम खुलेखजाने कमीशन लिया करते हैं ?

चम्पा ने तिरस्कार के भाव से कहा—जो आदमी अपने ऊपर इतना विश्वास रखे, उसकी आँख बचाकर एक पाई लेना भी मैं पाप समझती हूँ। तुम्हारी सज्जनता तो मैं जब जानती कि तुम कमीशन के रुपये ले जाकर उनके हवाले कर देते। इन छ महीनों मे उन्होंने तुम्हारे साथ क्या-क्या सलूक किये, कुछ याद है ? मकान तुमने खुद छोड़ा, लेकिन वह २०) महीना देते जाते हैं। इलाके से कोई सौगात आती, तुम्हारे यहाँ जरूर भेजते हैं। तुम्हारे पास घड़ी न थी, अपनी घड़ी तुम्हें दे दी। तुम्हारी महरी जब नागा करती है, खबर पाते ही अपना नौकर भेज देते हैं। मेरी बीमारी ही मे डाक्टर साहब की फीस उन्होंने दी, और दिन में दो बार हाल-चाल पूछने आया करते थे। यह ज़मानत ही क्या छोटी बात है ? अपने सम्बन्धियों तक की जमानत तो जल्दी कोई करता ही नहीं। तुम्हारी ज़मानत के लिए दस हजार रुपये नकद निकालकर दे दिये। इसे तुम छोटी बात समझते हो ? आज तुमसे कोई भूल-चूक हो जाय, तो उनके रुपये तो जब्त हो जायँगे। जो आदमी अपने ऊपर इतनी दया रखे, उसके लिए हमें भी प्राण देने को तैयार रहना चाहिए।

प्रकाश भोजन करके लेटा, तो उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी। दुखते हुए फोड़े में कितना मवाद भरा हुआ है, यह उस वक्त मालूम होता है, जब नश्तर लगाया जाता है। मन का विकार उस वक्त मालूम होता है, जब कोई उसे हमारे सामने खोलकर रख देता है। किसी सामाजिक या राजनीतिक अन्याय का व्यंग्यचित्र देखकर क्यों हमारे मन को चोट लगती है, इसी लिए कि वह चित्र हमारी पशुता को खोलकर हमारे सामने रख देता है। वह जो मन सागर मे बिखरा हुआ पड़ा था, जैसे

केंद्रीभूत होकर वृहदाकार हो जाता है। तब हमारे मुँह से निकल पड़ता है—उफ्फोह!
चम्पा के इन तिरस्कार-भरे शब्दों ने प्रकाश के मन मे ग्लानि उत्पन्न कर दी। वह सन्दूक कई-गुना भारी होकर शिला की भाँति उसे दबाने लगा। मन मे फैला हुआ विकार एक बिंदु पर एकत्र होकर टीसने लगा।

(७)

कई दिन बीत गये। प्रकाश को बैंक मे जगह मिल गई। इसी उत्सव में उसके यहाँ मेहमानों की दावत है। ठाकुर साहब, उनकी स्त्री, बीरू और उसकी नवेली बहू, सभी आये हुए हैं। चम्पा सेवा-सत्कार मे लगी हुई है। बाहर दो चार मित्र गा-बजा रहे है। भोजन करने के बाद ठाकुर साहब चलने को तैयार हुए।

प्रकाश ने कहा—आज आपको यहीं रहना होगा दादा! मैं इस वक्त न जाने दूँगा।

चम्पा को उसका यह आग्रह बुरा लगा। चारपाइयाँ नहीं हैं, बिछावन नहीं है और न काफी जगह ही है। रात-भर उन्हे तकलीफ देने और आप तकलीफ उठाने की कोई जरूरत उसकी समझ मे न आई, लेकिन प्रकाश आग्रह करता ही रहा, यहाँ तक कि ठाकुर साहब राजी हो गये।

बारह बज गये थे। ठाकुर साहब ऊपर सो रहे थे। बीरू और प्रकाश बाहर बरामदे में थे। तीनों स्त्रियाँ अन्दर कमरे मे थीं। प्रकाश जाग रहा था। बीरू के सिरहाने उसकी कुञ्जियों का गुच्छा पड़ा हुआ था। प्रकाश ने गुच्छा उठा लिया। फिर कमरा खोलकर उसमें से गहनों का सन्दूकचा निकाला और ठाकुर साहब के घर की तरफ चला। कई महीने पहले वह इसी भाँति कंपित हृदय के साथ ठाकुर साहब के घर मे घुसा था। उसके पाँव तब भी इसी तरह थरथरा रहे थे, लेकिन तब काँटा चुभने की वेदना थी, आज काँटा निकलने की। तब ज्वर का चढाव था, उन्माद, ताप और विकलता से भरा हुआ। अब ज्वर का उतार था, शान्त और शीतल। तब क़दम पीछे हटता था, आज आगे बढ़ रहा था।

ठाकुर साहब के घर पहुँचकर उसने धीरे से बीरू का कमरा खोला और अन्दर जाकर ठाकुर साहब की खाट के नीचे सन्दूकचा रख दिया। फिर तुरन्त बाहर आकर धीरे से द्वार बन्द किया और घर को लौट पडा। हनुमान सजीवनी बूटीवाला धवलागिर उठाये जिस गर्वीले आनन्द का अनुभव कर रहे थे, कुछ वैसा ही आनन्द प्रकाश को भी हो रहा था। गहनों को अपने घर ले जाते समय उसके प्राण सूखे हुए थे, मानो

किसी गहरी अथाह खाई में गिरा जा रहा हो। आज सन्दूकचे को लौटाकर उसे मालूम हो रहा था, जैसे वह किसी विमान पर बैठा हुआ आकाश की ओर उड़ा जा रहा है—ऊपर, ऊपर और ऊपर !

वह घर पहुँचा तो बीरू सोया हुआ था। कुन्जी उसने सिरहाने रख दी।

(८)

ठाकुर साहब प्रात काल चले गये।

प्रकाश सन्ध्या-समय पढाने जाया करता था। आज वह अधीर होकर तीसरे ही पहर जा पहुँचा। देखना चाहता था, वहाँ आज क्या गुल खिल रहे हैं।

वीरेन्द्र ने उसे देखते ही खुश होकर कहा—बाबूजो, कल आपके यहाँ की दावत बड़ी मुबारक थी। जो गहने चोरी गये थे, सब मिल गये।

ठाकुर साहब भी आ गये और बोले—बड़ी मुबारक दावत थी तुम्हारी ! पूरा सन्दूक-का-सन्दूक मिल गया। एक चीज भी नहीं छुई। जैसे केवल रखने ही के लिए ले गया हो।

प्रकाश को इन बातों पर कैसे विश्वास आये, जब तक वह अपनी आँखों से सन्दूक देख न ले। कहीं ऐसा भी हो सकता है कि चोरी गया हुआ माल छ महीने बाद मिल जाय, और ज्यो-का-त्यों !

सन्दूक को देखकर उसने गम्भीर भाव से कहा—बड़े आश्चर्य की बात है ! मेरी बुद्धि तो कुछ काम नहीं करती।

ठाकुर—किसी की बुद्धि कुछ काम नहीं करती भई, तुम्हारी ही क्यो ! वीरू की माँ कहती है, कोई दैवी घटना है। आज से मुझे भी देवताओं मे श्रद्धा हो गई।

प्रकाश—अगर आँख देखी बात न होती, तो मुझे कभी विश्वास न आता।

ठाकुर—आज इसी खुशी मे हमारे यहाँ दावत होगी।

प्रकाश—आपने कोई अनुष्ठान तो नहीं कराया था ?

ठाकुर—अनुष्ठान तो बीसों ही कराये।

प्रकाश—बस, तो यह अनुष्ठानों ही की करामात है।

घर लौटकर प्रकाश ने चम्पा को यह खबर सुनाई, तो वह दौड़कर उनके गले से चिमट गई और न-जाने क्यों रोने लगी, जैसे उसका बिछुड़ा हुआ पति बहुत दिनों के बाद घर आ गया हो।

प्रकाश ने कहा—आज उनके यहाँ हमारी दावत है।

'मैं कल एक हजार कँगलों को भोजन कराऊँगी।'

'तुम तो सैकड़ों का ख़र्च बतला रही हो!'

'मुझे इतना आनन्द हो रहा है कि लाखों खर्च करने पर भी अरमान पूरा न होगा।'

प्रकाश की आँखों से भी आँसू निकल आये।

मोटर की छींटें

क्या नाम कि कल प्रातःकाल स्नान-पूजा से निबट, तिलक लगा, पीताम्बर पहन, खड़ाऊँ पाँव में डाल, बगल में पत्रा दबा, हाथ में मोटा-सा शत्रु-मस्तक-भजन ले एक जजमान के घर चला। विवाह की साइत विचारनी थी। कम-से-कम एक कलदार का डौल था। जलपान ऊपर से। और मेरा जलपान मामूली जलपान नहीं है। बाबुओं को तो मुझे निमन्त्रित करने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। उनका महीने-भर का नाश्ता मेरा एक दिन का जलपान है। इस विषय मे तो हम अपने सेठों-साहूकारों के क़ायल हैं। ऐसा खिलाते हैं, ऐसा खिलाते हैं, और इतने खुले मन से कि चोला आनन्दित हो उठता है। जजमान का दिल देखकर ही मै उसका निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ। खिलाते समय किसीने रोनी सूरत बनाई और मेरी क्षुधा गायब हुई। रोकर किसीने खिलाया तो क्या? ऐसा भोजन कम-से-कम मुझे नहीं पचता। जजमान ऐसा चाहिए कि ललकारता जाय—लो शास्त्रीजी, एक बालूशाही और, और मैं कहता जाऊँ—नहीं जजमान, अब नहीं।

रात खूब वर्षा हुई थी, सड़क पर जगह-जगह पानी जमा था। मै अपने विचारों में मगन चला जाता था कि एक मोटर छप-छप करती हुई निकल गई। मुँह पर छींटे पड़े। जो देखता हूँ, तो धोती पर मानो किसीने कीचड़ घोलकर डाल दिया हो। कपड़े भ्रष्ट हुए वह अलग, देह भ्रष्ट हुई वह अलग, आर्थिक क्षति जो हुई वह अलग। अगर मोटरवालों को पकड़ पाता, तो ऐसी मरम्मत करता कि वह भी याद करते। मन मसोसकर रह गया। इस वेष में जजमान के घर तो जा नहीं सकता था, अपना घर भी मील-भर से कम न था। फिर आने-जानेवाले सब मेरी ओर देख-देखकर तालियाँ बजा रहे थे। ऐसी दुर्गति मेरी कभी न हुई थी। अब क्या करोगे मन? घर जाओगे तो पण्डिताइन क्या कहेंगी?

मैंने चटपट अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। इधर-उधर से दस-बारह पत्थर

के टुकड़े बटोर लिये और दूसरे मोटर की राह देखने लगा। ब्रह्मतेज सिर पर चढ़ बैठा। अभी दस मिनट भी न गुज़रे होंगे कि एक मोटर आती हुई दिखाई दी। ओहो! वही मोटर थी। शायद स्वामी को स्टेशन से लेकर लौट रही थी। ज्यों ही समीप आई, मैंने एक पत्थर चलाया, भरपूर जोर लगाकर चलाया। साहब की टोपी उड़कर सड़क के उस बाजू पर गिरी। मोटर की चाल धीमी हुई। मैंने दूसरा फैर किया। खिड़की के शीशे चूर-चूर हो गये और एक टुकड़ा साहब बहादुर के गाल में भी लगा। खून बहने लगा। मोटर रुकी और साहब उतरकर मेरी तरफ आये और घूँसा तानकर बोले—सुअर, हम तुमको पुलिस में देगा। इतना सुनना था कि मैंने पोथी-पत्रा ज़मीन पर फेंका और पकड़कर साहब की कमर अड़गी लगाई, तो कीचड़ मे भद से गिरे। मैंने चट सवारी गाँठी और गरदन पर एक पचीस रद्दे तावड़तोड़ जमाये कि चौंधिया गये। इतने मे उनकी पत्नीजी उतर आईं। ऊँची एँडी का जूता, रेशमी साड़ी, गालों पर पाउडर, ओठों पर रग, भौवों पर स्याही, मुझे छाते से गोदने लगीं। मैंने साहब को छोड़ दिया और डण्डा सँभालता हुआ बोला—देवीजी, आप मरदों के बीच मे न पड़े, कहीं चोट-चपेट आ जाय, तो मुझे दु ख होगा।

साहब ने अवसर पाया, तो सँभलकर उठे और अपने बूटदार पैरों से मुझे एक ठोकर जमाई। मेरे घुटने मे बड़ी चोट लगी। मैंने बौखलाकर डण्डा उठा लिया और साहब के पाँव में जमा दिया। कटे पेड़ की तरह गिरे। मेम साहब छतरी तानकर दौड़ीं। मैंने धीरे से उनकी छतरी छीनकर फेंक दी। ड्राइवर अभी तक बैठा था, अब वह भी उतरा और छड़ी लेकर मुझपर पिल पड़ा। मैंने एक डण्डा उसके भी जमाया, लोट गया। पचासों आदमी तमाशा देखने जमा हो गये। साहब भूमि पर पड़े-पड़े बोले—रैस्केल, हम तुमको पुलिस मे देगा।

मैंने फिर डण्डा सँभाला और चाहता था, कि खोपड़ी पर जमाऊँ कि साहब ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं-नहीं, बाबा, हम पुलिस मे नहीं जायगा। माफी दो।

मैंने कहा—हाँ, लिस का नाम न लेना, नहीं तो यहीं खोपड़ी रँग दूँगा। बहुत होगा ६ महीने की सजा हो जायगी, मगर तुम्हारी आदत छुड़ा दूँगा। मोटर चलाते हो, तो छींटे उड़ाते हो, मारे घमण्ड के अन्धे हो जाते हो। सामने या बगल में कौन जा रहा है, इसका ध्यान ही नहीं रखते।

एक दर्शक ने आलोचना की—अरे महाराज, मोटरवाले जान-बूझकर छींटे

उड़ाते हैं और जब आदमी लथ-पथ हो जाता है, तो सब उसका तमाशा देखते हैं और खूब हँसते हैं। आपने बड़ा अच्छा किया कि एक को ठीक कर दिया।

मैंने साहब को ललकारकर कहा—सुनता है कुछ, जनता क्या कहती है? साहब ने उस आदमी की ओर लाल-लाल आँखो से देखकर कहा—तुम झूठ बोलता है, बिलकुल झूठ बोलता है।

मैंने डाँटा—अभी तुम्हारी हेकड़ी कम नहीं हुई, आऊँ फिर और दूँ एक सोटा कसके?

साहब ने घिघियाकर कहा—अरे नहीं बाबा, सच बोलता है, सच बोलता है। अब तो खुश हुआ?

दूसरा दर्शक बोला—अभी जो चाहे कह दें, लेकिन ज्योंही गाड़ी पर बैठे, फिर वही हरकत शुरू कर देंगे। गाड़ी पर बैठते ही सब अपने को नवाब का नाती समझने लगते हैं?

दूसरे महाशय बोले—इससे कहिए थूककर चाटे।

तीसरे सज्जन ने कहा—नहीं, कान पकड़कर उठाइए-बैठाइए।

चौथा बोला—और ड्राइवर को भी। यह सब और बदमाश होते हैं। मालदार आदमी घमण्ड करे, तो एक बात है, तुम किस बात पर अकड़ते हो? चक्कर हाथ में लिया और आँखों पर परदा पड़ा।

मैंने यह प्रस्ताव स्वीकार किया। ड्राइवर और मालिक दोनों ही को कान पकड़कर उठाना-बैठाना चाहिए और मेम साहब गिनें। सुनो मेम साहब, तुमको गिनना होगा। पूरी सौ बैठकें। एक भी कम नहीं, ज़्यादा जितनी चाहे हो जायँ।

दो आदमियों ने साहब का हाथ पकड़कर उठाया, दो ने ड्राइवर महोदय का। ड्राइवर बेचारे की टाँग मे चोट थी, फिर भी वह बैठकें लगाने लगा। साहब की अकड़ अभी काफी थी। आप लेट गये और ऊल-जलूल बकने लगे। मैं उस समय रुद्र बना हुआ था। दिल मे ठान लिया कि इससे बिना सौ बैठकें लगवाये न छोड़ूँगा। चार आदमियों को हुक्म दिया कि गाड़ी को ढकेलकर सड़क के नीचे गिरा दो।

हुक्म की देर थी। चार की जगह पचास आदमी लिपट गये और गाड़ी को ढकेलने लगे। वह सड़क बहुत ऊँची थी। दोनो तरफ की जमीन नीची। गाड़ी नीचे गिरी और टूट-टाटकर ढेर हो जायगी। गाड़ी सड़क के किनारे तक पहुँच चुकी थी कि साहब काँखकर उठ खड़े हुए और बोले—बाबा, गाड़ी को मत तोड़ो, हम उठे-बैठेगा।

' मैंने आदमियों को अलग हट जाने का हुक्म दिया , मगर सभों को एक दिल्लगी मिल गई थी । किसी ने मेरी ओर ध्यान न दिया , लेकिन जब मैं डण्डा लेकर उनकी ओर दौड़ा, तब सब गाड़ी छोड़कर भागे और साहब ने आँखें बन्द करके बैठकें लगानी शुरू कीं ।

मैंने दस बैठकों के बाद मेम साहब से पूछा—कितनी बैठकें हुईं ?

मेम साहब ने रोष से जवाब दिया—हम नहीं गिनता ।

'तो इस तरह साहब दिन-भर कांखते रहेंगे और मैं न छोड़ूँगा । अगर उनको कुशल से घर ले जाना चाहती हो, तो बैठकें गिन दो । मैं उनको रिहा कर दूँगा ।'

साहब ने देखा कि बिना दण्ड भोगे जान न बचेगी, तो बैठकें लगाने लगे । 'एक, दो, तीन, चार, पाँच ... ।'

सहसा एक दूसरी मोटर आती दिखाई दी । साहब ने देखा और नाक रगड़कर बोले—पण्डितजी, आप मेरा बाप है । मुझ पर दया करो, अब हम कभी मोटर पर न बैठेंगे । मुझे भी दया आ गई । बोला—नहीं, मोटर पर बैठने से मैं नहीं रोकता, इतना ही कहता हूँ कि मोटर पर बैठकर भी आदमियों को आदमी समझो ।

दूसरी गाड़ी तेज चली आती थी । मैंने इशारा किया । सब आदमियों ने दो-दो पत्थर उठा लिये । उस गाड़ी का मालिक स्वयं ड्राइव कर रहा था । गाड़ी धीमी करके , धीरे से सरक जाना चाहता था कि मैंने बढ़कर उसके दोनों कान पकड़े और खूब जोर से हिलाकर और दोनों गालों पर एक-एक पड़ाका देकर बोला—गाड़ी से छींटा न उड़ाया करो, समझे ? चुपके से चले जाओ ।

यह महोदय बक-झक तो करते रहे , मगर एक सौ आदमियों को पत्थर लिये खड़ा देखा, तो बिना कान-पूँछ डुलाये चलते हुए ।

उनके जाने के एक ही मिनट बाद दूसरी गाड़ी आई । मैंने ५० आदमियों को राह रोक लेने का हुक्म दिया । गाड़ी रुक गई , मैंने उन्हें भी चार पड़ाके देकर विदा किया , मगर यह बेचारे भले आदमी थे । मज़े से चोटें खाकर चलते हुए ।

सहसा एक आदमी ने कहा—पुलिस आ रही है ।

और सब-के-सब हुर हो गये । मैं भी सड़क के नीचे उतर गया और एक गली में घुसकर गायब हो गया ।

क़ैदी

चौदह साल तक निरन्तर मानसिक वेदना, शारीरिक यातना भोगने के बाद आइवन ओखोटस्क जेल से निकला , पर उस पक्षी की भाँति नहीं, जो शिकारी के पिंजरे से पंख-हीन होकर निकला हो, बल्कि उस सिंह की भाँति, जिसे कठघरे की दीवारों ने और भी भयंकर और भी रक्त-लोलुप बना दिया हो। उसके अन्तस्तल मे एक द्रव ज्वाला उमड़ रही थी, जिसने अपने ताप से उसके बलिष्ठ शरीर और सुडौल अंग-प्रत्यग और लहराती हुई 'अभिलाषाओं को झुलस डाला था और आज उसके अस्तित्व का एक-एक अणु एक-एक चिनगारी बना हुआ था, क्षुधित, चचल और विद्रोहमय।

जेलर ने उसे तौला। प्रवेश के समय दो मन तीन सेर था, आज केवल एक मन पाँच सेर।

जेलर ने सहानुभूति दिखाकर कहा—तुम बहुत दुर्बल हो गये हो आइवन! अगर जरा भी कुपथ्य हुआ, तो बुरा होगा।

आइवन ने अपने हड्डियों के ढाँचे को विजय-भाव से देखा और अपने अन्दर एक अग्निमय प्रवाह का अनुभव करता हुआ बोला—कौन कहता है, मैं दुर्बल हो गया हूँ ?

'तुम ख़ुद देख रहे होगे।'

'दिल की आग जब तक नहीं बुझेगी, आइवन नहीं मरेगा मि० जेलर, सौ वर्ष तक नहीं, विश्वास रखिए!'

आइवन इसी प्रकार बहकी-बहकी बाते किया करता था। इसलिए जेलर ने ज्यादा परवाह न की। सब उसे अर्द्ध-विक्षिप्त समझते थे। कुछ लिखा-पढ़ी हो जाने के बाद कपड़ा और पुस्तकें मँगवाई गई , पर वह सारे सूट अब उसे उतारे हुए-से लगते थे, कोटो की जेबों मे कई नोट निकले, कई नगद रूबेल! उसने सब कुछ वहीं जेल के वार्डरो और निम्न कर्मचारियो को दे दिया, मानो उसे कोई राज्य मिल गया है।

जेलर ने कहा—यह नहीं हो सकता आइवन! तुम सरकारी आदमियों को रिश्वत नहीं दे सकते।

आइवन साधु-भाव से हँसा—यह रिश्वत नहीं है मि० जेलर! इन्हें रिश्वत देकर अब मुझे इनसे क्या लेना-देना है? अब ये अप्रसन्न होकर मेरा क्या बिगाड़ लेंगे और प्रसन्न होकर मुझे क्या दे देंगे। यह उन कृपाओं का धन्यवाद है, जिनके बिना चौदह साल तो क्या, मेरा यहाँ चौदह घंटे रहना असह्य हो जाता।

जब वह जेल के फाटक से निकला, तो जेलर और सारे अन्य कर्मचारी उसके पीछे उसे मोटर तक पहुँचाने चले।

(२)

पन्द्रह साल पहले आइवन मास्को के सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुल का दीपक था। उसने विद्यालय में ऊँची शिक्षा पाई थी, खेल में अभ्यास था, निर्भीक था, उदार और सहृदय था। दिल आईने की भाँति निर्मल, शील का पुतला, दुर्बलों की रक्षा के लिए जान पर खेलनेवाला, जिसकी हिम्मत संकट के सामने नंगी तलवार हो जाती थी। उसके साथ हेलेन नाम की एक युवती पढ़ती थी, जिसपर विद्यालय के सारे युवक प्राण देते थे। वह जितनी ही रूपवती थी, उतनी ही तेज़ थी, बड़ी कल्पनाशील पर अपने मनोभावों को ताले में बन्द रखनेवाली। आइवन में क्या देखकर वह उसकी ओर आकर्पित हो गई, यह कहना कठिन है। दोनों में लेश-मात्र भी सामंजस्य न था। आइवन सैर और शराब का प्रेमी था, हेलेन कविता और संगीत और नृत्य पर जान देती थी। आइवन की निगाह में रुपये केवल इसलिए थे कि दोनों हाथों से उड़ाये जायँ, हेलेन अत्यन्त कृपण। आइवन को लेक्चरहाल कारागार-सा लगता था। हेलेन इस सागर की मछली थी, पर कदाचित् यह विभिन्नता ही उनमें स्वाभाविक आकर्षण बन गई, जिसने अन्त में विकल प्रेम का रूप लिया। आइवन ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया और उसने स्वीकार कर लिया। और दोनों किसी शुभ-मुहूर्त में पाणिग्रहण करके सोहागरात बिताने के लिए किसी पहाड़ी जगह में जाने के मंसूबे बाँध रहे थे कि सहसा राजनैतिक संग्राम ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। हेलेन पहले से ही राष्ट्रवादियों की ओर झुकी हुई थी। आइवन भी उसी रंग में रंग उठा। खानदान का रईस था, उसके लिए प्रजा-पक्ष लेना एक महान् तपस्या थी, इसलिए जब कभी-कभी वह इस संग्राम में हताश हो जाता, तो हेलेन उसकी हिम्मत बँधाती

और आइवन उसके साहस और अनुराग से प्रभावित होकर अपनी दुर्बलता पर लज्जित हो जाता।

इन्हीं दिनों उक्रायेन प्रान्त की सूबेदारी पर रोमनाफ नाम का एक गवर्नर नियुक्त होकर आया, बड़ा ही कट्टर, राष्ट्वादियों का जानी दुश्मन, दिन मे दो-चार विद्रोहियों को जब तक जेल न भेज लेता, उसे चैन न आता। आते-ही-आते उसने कई सम्पादकों पर राजद्रोह का अभियोग चलाकर, उन्हे साइबेरिया भेजवा दिया, कृपकों की सभाएँ तोड दीं, नगर की म्युनिसिपैलिटी तोड़ दी, और जब जनता ने अपना रोप प्रकट करने के लिए जलसे किये, तो पुलिस से भीड़ पर गोलियाँ चलवाई, जिससे कई बेगुनाहों की जान गई। मार्शल ला जारी कर दिया। सारे नगर मे हाहाकार मच गया। लोग मारे डर के घरो से न निकलते थे, क्योंकि पुलिस हरएक की तलाशी लेती थी और उसे पीटती थी।

हेलेन ने कठोर मुद्रा से कहा—यह अन्धेर तो अब नही देखा जाता आइवन! इसका कुछ उपाय होना चाहिए।

आइवन ने प्रश्न की आँखो से देखा—उपाय! हम क्या कर सकते हैं?

हेलेन ने उसकी जड़ता पर खिन्न होकर कहा—तुम कहते हो, हम क्या कर सकते हैं? मैं कहती हूँ, हम सब कुछ कर सकते हैं। मैं इन्हीं हाथों से उसका अन्त कर दूँगी।

आइवन ने विस्मय से उसकी ओर देखा—तुम समझती हो, उसे कत्ल करना आसान है? वह कभी खुली गाड़ी मे नहीं निकलता। उसके आगे-पीछे सशस्त्र सवारो का एक दल हमेशा रहता है। रेलगाडी मे भी वह रिजर्व डब्बों में सफर करता है। मुझे तो असम्भव-सा लगता है हेलेन, बिलकुल असम्भव।

हेलेन कई मिनट तक चाय बनाती रही। फिर दो प्याले मेज पर रखकर उसने प्याला मुँह से लगाया और धीरे-धीरे पीने लगी। किसी विचार में तन्मय हो रही थी। सहसा उसने प्याला मेज़ पर रख दिया और बड़ी-बड़ी आँखों मे तेज भरकर बोली—यह सब कुछ होते हुए भी मैं उसे कत्ल कर सकती हूँ आइवन! आदमी एक बार अपनी जान पर खेलकर सब कुछ कर सकता है। जानते हो मैं क्या करूँगी? मैं उससे राहो-रस्म पैदा करूँगी, उसका विश्वास प्राप्त करूँगी, उसे इस भ्रान्ति मे डालूँगी कि मुझे उससे प्रेम है। मनुष्य कितना ही हृदय-हीन हो, उसके हृदय के किसी-न-किसी

कोने मे पराग की भांति रस छिपा रहता है । मैं तो समझती हूँ कि रोमिनिफ की यह दमन-नीति उसकी अवरुद्ध अभिलाषा की गाँठ है, और कुछ नहीं । किसी मायाविनी के प्रेम मे असफल होकर उसके हृदय का रस-स्रोत सूख गया है । वहाँ रस का सचार करना होगा और किसी युवती का एक मधुर शब्द, एक सरस मुस्कान भी जादू का काम करेगी । ऐसो को तो वह चुटकियो मे अपने पैरो पर गिरा सकती है । तुम जैसे सैलानियो का रिझाना इससे कहीं कठिन है, अगर तुम यह स्वीकार करते हो कि मैं रूपहीना नहीं हूँ, तो मैं तुम्हे विश्वास दिलाती हूँ कि मेरा कार्य सफल होगा । बतलाओ, मैं रूपवती हूँ या नहीं ?

उसने तिर्छी आँखों से आइवन को देखा । आइवन इस भाव-विलास पर मुग्ध होकर बोला—तुम यह मुझसे पूछती हो हेलेन ? मैं तो तुम्हे ससार की ·

हेलेन ने उसकी बात काटकर कहा—अगर तुम ऐसा समझते हो, तो तुम मूर्ख हो आइवन । इसी नगर मे, नहीं, हमारे विद्यालय मे ही, मुझसे कहीं रूपवती बालिकाएँ मौजूद है । हाँ, तुम इतना ही कह सकते हो कि तुम कुरूपा नहीं हो । क्या तुम समझते हो, मैं तुम्हे ससार का सबसे रूपवान् युवक समझती हूँ ? कभी नहीं । मैं ऐसे एक नहीं सौ नाम गिना सकती हूँ, जो चेहरे-मोहरे मे तुमसे कहीं बढकर है, मगर तुममें कोई ऐसी वस्तु है, जो तुम्ही मे है और वह मुझे और कहीं नजर नहीं आती—तो मेरा कार्यक्रम सुनो । एक महीना तो मुझे उससे मेल करते लगेगा । फिर वह मेरे साथ सैर करने निकलेगा । और तब एक दिन हम और वह दोनो रात को पार्क मे जायेंगे और तालाब के किनारे बेंच पर बैठेंगे । तुम उसी वक्त रिवाल्वर लिये आ जाओगे और वहीं पृथ्वी उसके बोझ से हलकी हो जायगी ।

जैसा हम पहले कह चुके है, आइवन एक रईसो का लड़का था और क्रातिमय राजनीति से उसका हार्दिक प्रेम न था । हेलेन के प्रभाव से कुछ मानसिक सहानुभूति अवश्य पैदा हो गई थी और मानसिक सहानुभूति प्राणो को सकट मे नहीं डालती । उसने प्रकट रूप से तो कोई आपत्ति नहीं की, लेकिन कुछ सदिग्ध भाव से बोला—यह तो सोचो हेलेन, इस तरह की हत्या कोई मानुषीय कृति है ?

हेलेन ने तीखेपन से कहा—जो दूसरो के साथ मानुषीय व्यवहार नहीं करता, उसके साथ हम क्यों मानुषीय व्यवहार करें । क्या वह सूर्य की भांति प्रकट नहीं है, कि आज सैकड़ो परिवार इस राक्षस के हाथो तबाह हो रहे हैं ? कौन जानता है,

इसके हाथ कितने बेगुनाहों के खून से रँगे हुए हैं ? ऐसे व्यक्ति के साथ किसी तरह की रियायत करना असगत है। तुम न-जाने क्यों इतने ठण्ढे हो। मैं तो उसके दुष्टाचरण देखती हूँ, तो मेरा रक्त खौलने लगता है। मैं सच कहती हूँ, जिस वक्त उसकी सवारी निकलती है, मेरी बोटी-बोटी हिंसा के आवेग से काँपने लगती है, अगर मेरे सामने कोई उसकी खाल भी खींच ले, तो मुझे दया न आये, अगर तुममें इतना साहस नहीं है, तो कोई हरज नहीं। मैं खुद सब कुछ कर लूँगी। हाँ, देख लेना, मैं कैसे उस कुत्ते को जहन्नुम पहुँचाती हूँ।

हेलेन का मुख-मण्डल हिंसा के आवेग से लाल हो गया। आइवन ने लज्जित होकर कहा—नहीं-नहीं, यह बात नहीं है हेलेन, मेरा यह आशय न था कि मैं इस काम में तुम्हे सहयोग न दूँगा। मुझे आज मालूम हुआ कि तुम्हारी आत्मा देश की दुर्दशा से कितनी विकल है, लेकिन मैं फिर यही कहूँगा कि यह काम इतना आसान नहीं है और हमें बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ेगा।

हेलेन ने उसके कधे पर हाथ रखकर कहा—तुम इसकी कुछ चिन्ता न करो आइवन, ससार मे मेरे लिए जो वस्तु सबसे प्यारी है, उसे दाँव पर रखते हुए क्या मैं सावधानी से काम न लूँगी ? लेकिन तुमसे एक याचना करती हूँ, अगर इस बीच मे मैं कोई ऐसा काम करूँ, जो तुम्हे बुरा मालूम हो तो तुम मुझे क्षमा करोगे न ?

आइवन ने विस्मय-भरी आँखों से हेलेन के मुख की ओर देखा। उसका आशय उसकी समझ मे न आया।

हेलेन डरी, आइवन कोई नयी आपत्ति तो नहीं खड़ी करना चाहता ! आश्वासन के लिए अपने मुख को उसके आतुर अधरो के समीप ले जाकर बोली—प्रेम का अभिनय करने मे मुझे वह सब कुछ कहना पड़ेगा, जिस पर एकमात्र तुम्हारा ही अधिकार है। मैं डरती हूँ, कहीं तुम मुझ पर सदेह न करने लगो।

आइवन ने उसे कर-पाश मे लेकर कहा—यह असम्भव है हेलेन, विश्वास प्रेम की पहली सीढ़ी है।

अन्तिम शब्द कहते उसकी आँखें झुक गईं। इन शब्दों में उदारता का जो आदर्श था, वह उस पर पूरा उतरेगा या नहीं, वह यही सोचने लगा।

इसके तीन दिन पीछे नाटक का सूत्रपात हुआ। हेलेन अपने ऊपर पुलिस के निराधार सन्देह की फरियाद लेकर रोमनाफ से मिली और उसे विश्वास दिलाया कि

पुलिस के अधिकारी उससे केवल इसलिए असतुष्ट हैं कि वह उनके कलुषित प्रस्तावों को ठुकरा रही है, यह सत्य है कि विद्यालय मे उसकी सगति कुछ उग्र युवकों से हो गई थी, पर विद्यालय से निकलने के बाद उसका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। रोमनाफ जितना चतुर था, उससे कहीं चतुर अपने को समझता था। अपने दस साल के अधिकारी-जीवन में उसे किसी ऐसी रमणी से साबका न पड़ा था, जिसने उसके ऊपर इतना विश्वास करके अपने को उसकी दया पर छोड़ दिया हो। किसी धन-लोलुप की भाँति सहसा यह धन-राशि देखकर उसकी आँखों पर परदा पड़ गया। अपनी समझ में तो वह हेलेन से उग्र युवकों के विषय में ऐसी बहुत-सी बातों का पता लगाकर फूला न समाया, जो खुफिया पुलिसवालों को बहुत सिर मारने पर भी ज्ञात न हो सकी थीं, पर इन बातों मे मिथ्या का कितना मिश्रण है, यह वह न भाँप सका। इस आध घण्टे में एक युवती ने एक अनुभवी अफसर को अपने रूप की मदिरा से उन्मत्त कर दिया था।

जब हेलेन चलने लगी, तो रोमनाफ ने कुरसी से खड़े होकर कहा—मुझे आशा है, यह हमारी आखिरी मुलाकात न होगी।

हेलेन ने हाथ बढ़ाकर कहा—हुजूर ने जिस सौजन्य से मेरी विपत्ति-कथा सुनी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ!

'कल आप तीसरे पहर यहीं चाय पियें।'

रब्त-जब्त बढ़ने लगा। हेलेन आकर रोज की बातें आइवन से कह सुनाती। रोमनाफ वास्तव मे जितना बदनाम है, उतना बुरा नहीं। नहीं, वह बड़ा रसिक, सगीत और कला का प्रेमी और शील और विनय की मूर्ति है। इन थोड़े ही दिनों मे हेलेन से उसकी घनिष्ठता हो गई है और किसी अज्ञात रीति से नगर मे पुलिस का अत्याचार कम होने लगा है।

अन्त मे वह निश्चित तिथि आई। आइवन और हेलेन दिन-भर बैठे इसी प्रश्न पर विचार करते रहे। आइवन का मन आज बहुत चचल हो रहा था। कभी अकारण ही हँसने लगता, कभी अनायास रो पड़ता। शका, प्रतीक्षा और किसी अज्ञात चिन्ता ने उसके मनःसागर को इतना अशान्त कर दिया था कि उसमे भावों की नौकाएँ डगमगा रही थीं—न मार्ग का पता था, न दिशा का। हेलेन भी आज बहुत चिन्तित और गम्भीर थी। आज के लिए उसने पहले ही से सजीले वस्त्र बनवा रखे थे। रूप

को अलंकृत करने के न-जाने किन-किन विधानों का प्रयोग कर रही थी, पर इसमें किसी योद्धा का उत्साह नहीं, कायर का कम्पन था।

सहसा आइवन ने आँखों में आँसू भरकर कहा—तुम आज इतनी मायाविनी हो गई हो हेलेन, कि मुझे न-जाने क्यों तुमसे भय हो रहा है।

हेलेन मुसकिराई। उस मुस्कान में करुणा भरी हुई थी—मनुष्य को कभी-कभी कितने ही अप्रिय कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है आइवन! आज मैं सुधा से विष का काम लेने जा रही हूँ, अलंकार का ऐसा दुरुपयोग तुमने कहीं और देखा है?

आइवन उड़े हुए मन से बोला—इसी को तो राष्ट्र-जीवन कहते हैं।

'यह राष्ट्र-जीवन नहीं है—यह नरक है।'

'मगर संसार में अभी कुछ दिन और इसकी ज़रूरत रहेगी।'

'यह अवस्था जितनी जल्द बदल जाय, उतना ही अच्छा।'

पाँसा पलट चुका था, आइवन ने गर्म होकर कहा—'अत्याचारियों को संसार में फलने-फूलने दिया जाय, जिसमें एक दिन इनके काँटों के मारे पृथ्वी पर कहीं पाँव रखने की जगह न रहे?

हेलेन ने कोई जवाब न दिया, पर उसके मन में जो अवसाद उत्पन्न हो गया था, वह उसके मुख पर झलक रहा था। राष्ट्र उसकी दृष्टि में सर्वोपरि था, उसके सामने व्यक्ति का कोई मूल्य न था। अगर इस समय उसका मन किसी कारण से दुर्बल भी हो रहा था, तो उसे खोल देने का उसमें साहस न था।

दोनों गले मिलकर विदा हुए। कौन जाने यह अन्तिम दर्शन हो! दोनों के दिल भारी थे, और आँखें सजल।

आइवन ने उत्साह के साथ कहा—मैं ठीक समय पर आ जाऊँगा।

हेलेन ने कोई जवाब न दिया।

आइवन ने फिर सानुरोध कहा—खुदा से मेरे लिए दुआ करना हेलेन!

हेलेन ने जैसे रोते हुए गले से कहा—मुझे खुदा पर भरोसा नहीं है।

'मुझे तो है!'

'कबसे?'

'जबसे मौत मेरी आँखों के सामने खड़ी हो गई।'

वह वेग के साथ चला गया। सन्ध्या हो गई थी और दो घंटे के बाद ही उस

कठिन परीक्षा का समय आ जायगा, जिससे उसके प्राण काँप रहे थे। वह कहीं एकान्त मे बैठकर सोचना चाहता था। आज उसे ज्ञात हो रहा था कि वह स्वाधीन नहीं है। बड़ी मोटी जजीरें उसके एक-एक अग को जकडे हुए थीं। इन्हे कैसे तोडे?

दस बज गये थे। हेलेन और रोमनाफ पार्क के एक कुञ्ज में बेंचो पर बैठे हुए थे। तेज़ बर्फीली हवा चल रही थी। चांद किसी क्षीण आशा की भांति बादलो मे छिपा हुआ था।

हेलेन ने इधर-उधर सशक नेत्रों से देखकर कहा—अब तो देर हो गई। यहाँ से चलना चाहिए।

रोमनाफ ने बेच पर पाँव फैलाते हुए कहा—अभी तो ऐसी देर नहीं हुई है हेलेन! कह नहीं सकता, जीवन के यह क्षण स्वप्न हैं या सत्य, लेकिन सत्य भी हैं, तो स्वप्न से अधिक मधुर, और स्वप्न भी हैं, तो सत्य से अधिक उज्ज्वल।

हेलेन बेचैन होकर उठी और रोमनाफ का हाथ पकड़कर बोली—मेरा जी आज कुछ चचल हो रहा है। सिर में चक्कर-सा आ रहा है। चलो, मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

रोमनाफ ने उसका हाथ पकड़कर अपनी बगल में बैठाते हुए कहा—लेकिन मैंने मोटर तो ग्यारह बजे बुलाई है!

हेलेन के मुँह से एक चीख निकल गई—ग्यारह बजे!

हाँ, अब ग्यारह बजे ही चाहते हैं। आओ, तब तक और कुछ बातें हों! रात तो काली बला-सी मालूम होती है। जितनी देर उसे दूर रख सकूँ, उतना ही अच्छा। मैं तो समझता हूँ, उस दिन तुम मेरे सौभाग्य की देवी बनकर आई थीं हेलेन, नही अब तक मैंने न-जाने क्या-क्या अत्याचार किये होते। इस उदार नीति ने वातावरण में जो शुभ परिवर्तन कर दिया, उस पर मुझे स्वय आश्चर्य हो रहा है। महीनो के दमन ने जो कुछ न कर पाया था, वह दिनो के आश्वासन ने पूरा कर दिखाया। और इसके लिए मैं तुम्हारा ऋणी हूँ हेलेन, केवल तुम्हारा, पर खेद यही है कि हमारी सरकार दवा करना नहीं जानती, केवल मारना जानती है। जार के मन्त्रियो मे अभी से मेरे विषय मे सन्देह होने लगा है और मुझे यहाँ से हटाने का प्रस्ताव हो रहा है।

सहसा टार्च का चकाचौंध पैदा करनेवाला प्रकाश बिजली की भांति चमक उठा और रिवाल्वर छूटने की आवाज़ आई। उसी वक्त रोमनाफ ने उछलकर आइवन को पकड़ लिया और चिल्लाया—पकड़ो, पकड़ो, खून! हेलेन, तुम यहाँ से भागो?

पार्क में कई संतरी थे। चारों ओर से दौड़ पड़े। आइवन घिर गया। एक क्षण में न-जाने कहाँ से टाउन-पुलीस, और सशस्त्र-पुलीस, और गुप्त-पुलीस, और सवार-पुलीस के जत्थे-के-जत्थे आ पहुँचे। आइवन गिरफ्तार हो गया।

रोमनाफ ने हेलेन से हाथ मिलाकर सन्देह के स्वर में कहा—यह आइवन तो वही युवक है, जो तुम्हारे साथ विद्यालय मे था ?

हेलेन ने क्षुब्ध होकर कहा—हाँ है ; लेकिन मुझे इसका जरा भी अनुमान न था कि वह क्रान्तिवादी हो गया है।

'गोली मेरे सिर पर से सन्-सन् करती हुई निकल गई।'

'या ईश्वर !'

'मैंने दूसरा फायर करने का अवसर ही न दिया। मुझे इस युवक की दशा पर दुःख हो रहा है हेलेन ! ये अभागे समझते हैं कि इन हत्याओं से वे देश का उद्धार कर लेंगे। अगर मैं मर ही जाता, तो क्या मेरी जगह कोई मुझसे भी ज्यादा कठोर मनुष्य न आ जाता ? लेकिन मुझे जरा भी क्रोध या दुःख या भय नहीं है हेलेन, तुम बिलकुल चिन्ता न करना। चलो, मैं तुम्हें पहुँचा दूँ।'

रास्ते-भर रोमनाफ इस आघात से बच जाने पर अपने को बधाई और ईश्वर को धन्यवाद देता रहा और हेलेन विचारों मे मग्न बैठी रही।

दूसरे दिन मजिस्ट्रेट के इजलास मे अभियोग चला, और हेलेन सरकारी गवाह थी। आइवन को मालूम हुआ कि दुनिया अँधेरी हो गई है और वह उसकी अथाह गहराई मे धँसता चला जा रहा है।

(३)

चौदह साल के बाद !

आइवन रेलगाड़ी से उतरकर हेलेन के पास जा रहा है। उसे घरवालों की सुधि नहीं है। माता और पिता उसके वियोग में मरणासन्न हो रहे हैं, इसकी उसे परवाह नहीं है। वह अपने चौदह साल के पाले हुए हिंसा-भाव से उन्मत्त, हेलेन के पास जा रहा है, पर उसकी हिंसा मे रक्त की प्यास नहीं है, केवल गहरी दाहक दुर्भावना है। इन चौदह सालों मे उसने जो यातनाएँ झेली हैं, उनका दो-चार वाक्यों मे, मानो सत्त निकालकर, विष के समान हेलेन की धमनियों मे भरकर, उसे तड़पते हुए देखकर, वह अपनी आँखों को तृप्त करना चाहता है। और वह वाक्य क्या है ? हेलेन, तुमने मेरे

साथ जो दगा की है, वह शायद त्रिया-चरित्र के इतिहास मे भी अद्वितीय है। मैंने अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणों पर अर्पण कर दिया। केवल तुम्हारे इशारों का गुलाम था। तुमने ही मुझे रोमनाफ की हत्या के लिए प्रेरित किया। और तुमने ही मेरे विरुद्ध साक्षी दी, केवल अपनी कुटिल काम-लिप्सा को पूरा करने के लिए। मेरे विरुद्ध कोई दूसरा प्रमाण न था। रोमनाफ और उसकी सारी पुलिस भी झूठी शहादतों से मुझे परास्त न कर सकती थी, मगर तुमने केवल अपनी वासना को तृप्त करने के लिए, केवल रोमनाफ के विषाक्त आलिंगन का आनन्द उठाने के लिए मेरे साथ यह विश्वासघात किया, पर आँखें खोलकर देखो कि वही आइवन,' जिसे तुमने पैर के नीचे कुचला था, आज तुम्हारी उन सारी मक्कारियों का पर्दा खोलने के लिए तुम्हारे सामने खड़ा है। तुमने राष्ट्र की सेवा का बीड़ा उठाया था। तुम अपने का राष्ट्र की वेदी पर होम कर देना चाहती थीं, किन्तु कुत्सित कामनाओं के पहले ही प्रलोभन में तुम अपने सारे बहु रूप को तिलांजलि देकर भोग-लालसा की गुलामी करने पर उतर गईं। अधिकार और समृद्धि के पहले ही टुकड़े पर तुम दुम हिलाती हुई टूट पड़ीं। धिक्कार है तुम्हारी इस भोग-लिप्सा को, तुम्हारे इस कुत्सित जीवन को।

(४)

सन्ध्या-काल था। पश्चिम के क्षितिज पर दिन की चिता जलकर ठंढी हो रही थी और रोमनाफ के विशाल भवन में हेलेन की अर्थी को ले चलने की तैयारियाँ हो रही थीं। नगर के नेता जमा थे और रोमनाफ अपने शोक कम्पित हाथों से अर्थी को पुष्पहारों से सजा रहा था और उन्हें अपने आत्म-जल से शीतल कर रहा था। उसी वक्त आइवन उन्मत्त वेष मे, दुर्बल, झुका हुआ, सिर के बाल बढ़ाये दुष्काल-सा आकर खड़ा हो गया। किसीने उसकी ओर ध्यान न दिया। समझे, कोई भिक्षुक होगा, जो ऐसे अवसरों पर दान के लोभ से आ जाया करते हैं।

जब नगर के बिशप ने अन्तिम संस्कार समाप्त किया और मरियम की बेटियाँ नये जीवन के स्वागत का गीत गा चुकीं, तो आइवन ने अर्थी के पास जाकर आवेश से काँपते हुए स्वर में कहा—यह वह दुष्टा है, जिसे सारी दुनिया की पवित्र आत्माओं की शुभ-कामनाएँ भी नरक की यातना से नहीं बचा सकतीं। वह इस योग्य थी कि उसकी लाश ...

कई आदमियों ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और उसे धक्के देते हुए फाटक की

ओर ले चले। उसी वक्त रोमनाफ ने आकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया और उसे अलग ले जाकर पूछा—दोस्त, क्या तुम्हारा नाम क्लोडियस आइवनाफ है? हाँ, तुम वही हो, मुझे तुम्हारी सूरत याद आ गई। मुझे सब कुछ मालूम है, रत्ती-रत्ती मालूम है। हेलेन ने मुझसे कोई बात नहीं छिपाई। अब वह इस संसार में नहीं है, मैं झूठ बोलकर उसकी कोई सेवा नहीं कर सकता, तुम उस पर कठोर शब्दों का प्रहार करो या कठोर आघातों का, वह समान रूप से शान्त रहेगी, लेकिन अन्त समय तक वह तुम्हारी याद करती रही। उस प्रसंग की स्मृति उसे सदैव रुलाती रहती थी। उसके जीवन की यह सबसे बड़ी कामना थी कि तुम्हारे सामने घुटने टेककर क्षमा की याचना करे, मरते-मरते उसने यह वसीयत की कि जिस तरह भी हो सके उसकी यह विनय तुम तक पहुँचाऊँ कि वह तुम्हारी अपराधिनी है और तुमसे क्षमा चाहती है। क्या तुम समझते हो, अब वह तुम्हारे सामने आँखों में आंसू भरे आती, तो तुम्हारा हृदय पत्थर होने पर भी न पिघल जाता? क्या इस समय भी वह तुम्हें दीन याचना की प्रतिमा-सी खड़ी नहीं दीखती? जरा चलकर उसका मुसकिराता हुआ चेहरा देखो, मोशियो आइवन, तुम्हारा मन अब भी उसका चुम्बन लेने के लिए विकल हो जायगा। मुझे ज़रा भी ईर्ष्या न होगी। उन फूलों की सेज पर लेटी हुई वह ऐसी लग रही है, मानो फूलों की रानी हो। जीवन में उसकी एक अभिलाषा अपूर्ण रह गई आइवन, वह तुम्हारी क्षमा है। प्रेमी-हृदय बड़ा उदार होता है आइवन, वह क्षमा और दया का सागर होता है। ईर्ष्या और दम्भ के गन्दे नाले उसमें मिलकर उतने ही विशाल और पवित्र हो जाते हैं। जिसे एक बार तुमने प्यार किया, उसकी अन्तिम अभिलाषा की तुम उपेक्षा नहीं कर सकते।

उसने आइवन का हाथ पकड़ा और सैकड़ों कुतूहल-पूर्ण नेत्रों के सामने उसे लिये हुए अर्थी के पास आया और ताबूत का ऊपरी तख्ता हटाकर हेलेन का शान्त मुखमण्डल उसे दिखा दिया। उस निःस्पन्द, निश्चेष्ट, निर्विकार छवि को मृत्यु ने एक दैवी गरिमा-सी प्रदान कर दी थी, मानो स्वर्ग की सारी विभूतियाँ उसका स्वागत कर रही हैं। आइवन की कुटिल आँखों में एक दिव्य ज्योति-सी चमक उठी और वह दृश्य सामने खिंच गया, जब उसने हेलेन को प्रेम से आलिंगित किया था और अपने हृदय के सारे अनुराग और उल्लास को पुष्पों में गूँथकर उसके गले में डाला था। उसे जान पड़ा, यह सब कुछ जो उसके सामने हो रहा है, स्वप्न

है और एकाएक उसकी आँखें खुल गई हैं और वह उसी भाँति हेलेन को अपनी छाती से लगाये हुए है। उस आत्मानन्द के एक क्षण के लिए क्या वह फिर चौदह साल का कारावास झेलने के लिए न तैयार हो जायगा ? क्या अब भी उसके जीवन की सबसे सुखद घड़ियाँ वही न थीं, जो हेलेन के साथ गुज़री थीं और क्या उन घड़ियों के अनुपम आनन्द को वह इन चौदह सालों में भी भूल सका था ? उसने ताबूत के पास बैठकर श्रद्धा से काँपते हुए कंठ से प्रार्थना की—ईश्वर, तू मेरे प्राणों से प्रिय हेलेन को अपनी क्षमा के दामन में ले। और जब वह ताबूत को कन्धे पर लिये चला, तो उसकी आत्मा लज्जित थी, अपनी संकीर्णता पर, अपनी उद्विग्नता पर, अपनी नीचता पर, और जब ताबूत क़ब्र में रख दिया गया, तो वह वहाँ बैठकर न-जाने कब तक रोता रहा। दूसरे दिन रोमनाफ जब फातिहा पढ़ने आया तो देखा, आइवन सिजदे में सिर झुकाये हुए है, और उसकी आत्मा स्वर्ग को प्रयाण कर चुकी है।

मिस पद्मा

कानून में अच्छी सफलता प्राप्त कर लेने के बाद मिस पद्मा को एक नया अनुभव हुआ, वह जीवन का सूनापन। विवाह को उसने एक अप्राकृतिक बंधन समझा था और निश्चय कर लिया था कि स्वतन्त्र रहकर जीवन का उपभोग करूँगी। एम० ए० की डिग्री ली, फिर क़ानून पास किया और प्रैक्टिस शुरू कर दी। रूपवती थी, युवती थी, मृदुभाषिणी थी और प्रतिभाशालिनी थी। मार्ग मे कोई बाधा न थी। देखते-देखते वह अपने साथी नौजवान-मर्द वकीलों को पीछे छोड़कर आगे निकल गई, और अब उसकी आमदनी कभी-कभी एक हजार से भी बढ जाती। अब उतने परिश्रम और सिर मग़ज़न की आवश्यकता न रही। मुक़दमे अधिकतर वही होते थे, जिनका उसे पूरा अनुभव हो चुका था, उनके विषय की किसी तरह की तैयारी की उसे ज़रूरत न मालूम होती। अपनी शक्तियों पर कुछ विश्वास भी हो गया था, कानून मे कैसे विजय मिल सकती है, इसके कुछ लटके भी मालूम हो गये थे, इसलिए उसे अब बहुत अवकाश मिलता था और इसे वह किस्से-कहानियाँ पढने, सैर करने, सिनेमा देखने, मिलने-मिलाने में खर्च करती थी। जीवन को सुखी बनाने के लिए किसी व्यसन की ज़रूरत को वह खूब समझती थी। उसने फूल-पौदे लगाने का व्यसन पाल लिया था। तरह-तरह के बीज और पौदे मॅंगाती और उन्हें उगते-बढते, फूलते-फलते देखकर खुश होती; मगर फिर भी जीवन मे सूनेपन का अनुभव होता रहता था। यह बात न थी कि उसे पुरुषो से विरक्ति हो। नहीं, उसके प्रेमियों की कमी न थी, अगर उसके पास केवल रूप और यौवन होता, तो भी उपासकों का अभाव न रहता; मगर यहाँ तो रूप और यौवन के साथ धन भी था। फिर रसिकवृन्द क्यों चूक जाते। पद्मा को विलास से तो घृणा थी नहीं, घृणा थी पराधीनता से, विवाह को जीवन का व्यवसाय बनाने से। जब स्वतन्त्र रहकर भोग-विलास का आनंद उडाया जा सकता है, तो फिर क्यों न उड़ाया जाय? भोग मे उसे कोई नैतिक

बाधा न थी। इसे वह केवल देह की एक भूख समझती थी। इस भूख को किसी साफ-सुथरी दुकान से भी शांत किया जा सकता है। और पद्मा को साफ-सुथरी दुकान की हमेशा तलाश रहती थी। ग्राहक दुकान में वही चीज़ लेता है, जो उसे पसंद आती है। पद्मा भी वही चीज चाहती थी। यों उसके दर्जनों आशिक थे, कई वकील, कई प्रोफेसर कई डाक्टर, कई रईस, मगर ये सब-के-सब ऐयाश थे, बेफिक्र, केवल भौंरे की तरह रस लेकर उड़ जानेवाले। ऐसा एक भी न था, जिस पर वह विश्वास कर सकती। अब उसे मालूम हुआ कि उसका मन केवल भोग नहीं चाहता, कुछ और भी चाहता है। वह चीज़ क्या थी? पूरा आत्म-समर्पण, और यह उसे न मिलती थी।

उसके प्रेमियों मे एक मि० प्रसाद था, बड़ा ही रूपवान् और धुरन्धर विद्वान्। एक कालेज में प्रोफेसर था। वह भी मुक्त भोग के आदर्श का उपासक था और पद्मा उस पर फिदा थी। चाहती थी, उसे बाँधकर रखे, सम्पूर्णतः अपना बना ले; लेकिन प्रसाद चगुल मे न आता था।

सध्या हो गई थी। पद्मा सैर करने जा रही थी कि प्रसाद आ गये। सैर करना मुल्तवी हो गया। बातचीत मे सैर से कहीं ज्यादा आनंद था और पद्मा आज प्रसाद से कुछ दिल की बात कहनेवाली थी। कई दिन के सोच-विचार के बाद आज उसने कह डालने ही का निश्चय किया था।

उसने प्रसाद की नशीली आँखों मे आँखें मिलाकर कहा—तुम यहीं मेरे बॅगले में आकर क्यों नहीं रहते?

प्रसाद ने कुटिल-विनोद के साथ कहा—नतीजा यह होगा कि दो-चार महीने मे यह मुलाक़ात भी बन्द हो जायगी।

'मेरी समझ मे नहीं आया, तुम्हारा क्या आशय है?'

'आशय वही है, जो मैं कह रहा हूँ।'

'आखिर क्यों?'

'मैं अपनी स्वतन्त्रता न खोना चाहूँगा, तुम अपनी स्वतन्त्रता न खोना चाहोगी। तुम्हारे पास तुम्हारे आशिक आयेंगे, मुझे जलन होगी। मेरे पास मेरी प्रेमिकाएँ आयेंगी, तुम्हे जलन होगी। मन-मुटाव होगा, फिर वैमनस्य होगा और तुम मुझे घर

से निकाल दोगी। घर तुम्हारा है ही। मुझे बुरा लगेगा ही, फिर यह मैत्री कैसे निभेगी?'

दोनों कई मिनट तक मौन रहे। प्रसाद ने परिस्थिति को इतने स्पष्ट, बेलाग, लट्ठमार शब्दों में खोलकर रख दिया था कि कुछ कहने की जगह न मिलती थी।

आखिर प्रसाद ही को नुकता सूझा। बोला—जब तक हम दोनों यह प्रतिज्ञा न कर लें कि आज से मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरी हो, तब तक एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता।

'तुम यह प्रतिज्ञा करोगे?'

'पहले तुम बतलाओ।'

'मैं करूँगी।'

'तो मैं भी करूँगा।'

'मगर इस एक बात के सिवा मैं और सभी बातों में स्वतन्त्र रहूँगी।'

'और मैं भी इस एक बात के सिवा हर बात में स्वतंत्र रहूँगा।'

'मंजूर!'

'मंजूर!'

'तो कबसे?'

'जबसे तुम कहो।'

'मैं तो कहती हूँ, कल ही से।'

'तय है; लेकिन अगर तुमने इसके विरुद्ध आचरण किया तो?'

'और तुमने किया तो?'

'तुम मुझे घर से निकाल सकती हो; लेकिन मैं तुम्हें क्या सज़ा दूँगा?'

'तुम मुझे त्याग देना, और क्या करोगे?'

'जी नहीं, तब इतने से चित्त को शान्ति न मिलेगी। तब मैं चाहूँगा तुम्हें जलील करना; बल्कि तुम्हारी हत्या करना।'

'तुम बड़े निर्दयी हो प्रसाद?'

'जब तक हम दोनों स्वाधीन हैं, हमें किसीको कुछ कहने का हक नहीं, लेकिन एक बार प्रतिज्ञा में बँध जाने के बाद फिर न मैं उसकी अवज्ञा सह सकूँगा, न तुम सह सकोगी। तुम्हारे पास दण्ड का साधन है, मेरे पास नहीं है। क़ानून मुझे कोई

भी अधिकार नहीं देता। मैं तो केवल अपने पशुबल से प्रतिज्ञा का पालन कराऊँगा और तुम्हारे इतने नौकरों के सामने मैं अकेला क्या कर सकूँगा।'

'तुम तो चित्र का श्याम पक्ष ही देखते हो। जब मैं तुम्हारी हो रही हूँ, तो यह मकान और नौकर-चाकर और जायदाद सब कुछ तुम्हारी है। हम-तुम दोनों जानते है कि ईर्ष्या से ज़्यादा घृणित कोई सामाजिक पाप नहीं है। तुम्हे मुझसे प्रेम है या नहीं, मैं नहीं कह सकती, लेकिन तुम्हारे लिए मैं सब कुछ सहने, सब कुछ करने को तैयार हूँ।'

'दिल से कहती हो पद्मा?'

'सच्चे दिल से।'

'मगर न-जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं आ रहा है?'

'मैं तो तुम्हारे ऊपर विश्वास कर रही हूँ।'

'यह समझ लो, मैं मेहमान बनकर तुम्हारे घर मे न रहूँगा। स्वामी बनकर रहूँगा।'

'तुम घर के स्वामी ही नहीं, मेरे स्वामी बनकर रहो। मैं तुम्हारी स्वामिनी बनकर रहूँगी।'

(२)

प्रो० प्रसाद और मिस पद्मा दोनों साथ रहते है और प्रसन्न हैं। दोनों ही ने जीवन का जो आदर्श मन में स्थिर कर लिया था, वह सत्य बन गया है। प्रसाद को केवल दो सौ रुपये वेतन मिलता है, मगर अब वह अपनी आमदनी का दुगुना भी खर्च कर दे, परवाह नहीं। पहले वह कभी-कभी शराब पीता था, अब रात-दिन शराब में मस्त रहता है। अब उसके लिए अलग अपनी कार है, अलग अपने नौकर है, तरह-तरह की बहुमूल्य चीज़ें मँगवाता रहता है और पद्मा बड़े हर्ष से उसकी सारी फजूल-खर्चियाँ बर्दाश्त करती है। नहीं, बर्दाश्त करने का क्या प्रश्न है। वह खुद उसे अच्छे-अच्छे सूट पहनाकर, अच्छे-से-अच्छे ठाट में रखकर, प्रसन्न होती है। जैसी घडी इस वक्त प्रो० प्रसाद के पास है, शहर के बड़े-से-बड़े रईस के पास न होगी और पद्मा जितनी ही उससे दबती है, प्रसाद उतना ही उसे दबाता है। कभी-कभी उसे नागवार भी लगता है, पर वह किसी अज्ञात कारण से अपने को उसके वश में पाती है। प्रसाद को ज़रा भी उदास या चिन्तित देखकर उसका मन चचल हो जाता है। उस

पर आवाजें कसे जाते हैं, फबतियाँ चुस्त की जाती हैं। जो उसके पुराने प्रेमी थे, वे उसे जलाने और कुढ़ाने का प्रयास भी करते हैं, पर वह प्रसाद के पास आते ही सब कुछ भूल जाती है। प्रसाद ने उस पर पूरा आधिपत्य पा लिया है, और उसे इसका ज्ञान है। पद्मा को उसने बारीक आँखों से पढ़ा है और उसका आसन अच्छी तरह पा गया है।

मगर जैसे राजनीति के क्षेत्र में अधिकार दुरुपयोगी की ओर जाता है, उसी तरह प्रेम के क्षेत्र मे भी वह दुरुपयोग की ओर ही जाता है, और जो कमजोर है, उसे तावान देना पड़ता है! आत्माभिमानिनी पद्मा अब प्रसाद की लौंडी थी। और प्रसाद उसकी दुर्बलता का फायदा उठाने से क्यों चूकता! उसने कील की पतली नोक चुभा ली थी और बड़ी कुशलता से उत्तरोत्तर उसे अन्दर ठोकता जाता था। यहाँ तक कि उसने रात को देर मे घर आना शुरू किया। पद्मा को अपने साथ न ले जाता, उससे बहाना करता, मेरे सिर मे दर्द है, और जब पद्मा घूमने चली जाती, तो अपनी कार निकाल लेता और उड़ जाता। दो साल गुजर गये थे, और पद्मा को गर्भ था। वह स्थूल भी हो चली थी। उसके रूप मे पहले की-सी नवीनता और मादकता न रह गई थी। वह घर की मुर्गी थी, साग बरोबर।

एक दिन इसी तरह पद्मा लौटकर आई, तो प्रसाद गायब थे। वह झुँझला उठी। इधर कई दिन से वह प्रसाद का रग बदला हुआ देख रही थी। आज उसने कुछ स्पष्ट बातें कहने का साहस बटोरा। दस बज गये, ग्यारह बज गये, बारह बज गये, पद्मा उसके इन्तजार मे बैठी थी। भोजन ठण्डा हो गया, नौकर-चाकर सो गये। वह बार-बार उठती, फाटक पर जाकर नजर दौड़ाती। बारह-एक बजे के करीब प्रसाद घर आये।

पद्मा ने साहस तो बहुत बटोरा था, पर प्रसाद के सामने जाते ही उसे अपनी कमज़ोरी मालूम हुई। फिर भी उसने ज़रा कड़े स्वर में पूछा—आज आप इतनी रात तक कहाँ थे? कुछ खबर है कितनी रात गई?

प्रसाद को वह इस वक्त असुन्दरता की मूर्ति-सी लगी। वह एक विद्यालय की छात्रा के साथ सिनेमा देखने गया था। बोला—तुमको आराम से सो जाना चाहिए था। तुम जिस दशा मे हो, उसमे तुम्हे जहाँ तक हो सके, आराम से रहना चाहिए।

पद्मा का साहस कुछ प्रबल हुआ—तुमसे मैं जो पूछती हूँ, उसका जवाब दो। मुझे जहन्नुम मे भेजो।

'तो तुम भी मुझे जहन्नुम में जाने दो।'

'मैं इधर कई दिन से तुम्हारा मिज़ाज बदला हुआ देख रही हूँ।'

'तुम्हारी आँखों की ज्योति कुछ बढ गई होगी।'

'तुम मेरे साथ दगा कर रहे हो, यह मै साफ देख रही हूँ।'

'मैंने तुम्हारे हाथ अपने को बेचा नहीं है, अगर तुम्हारा जी मुझसे भर गया है, तो मैं आज जाने को तैयार हूँ।'

'तुम जाने की धमकी क्या देते हो! यहाँ तुमने आकर कोई बड़ा त्याग नहीं किया है।'

'मैंने त्याग नहीं किया है! तुम यह कहने का साहस कर रही हो। मैं देखता हूँ, तुम्हारा मिज़ाज बिगड़ रहा है। तुम समझती हो, मैंने इसे अपग कर दिया, मगर मैं इसी वक्त तुम्हे ठोकर मारने को तैयार हूँ। इसी वक्त, इसी वक्त!'

पद्मा का साहस जैसे बुझ गया था। प्रसाद अपना ट्रक सँभाल रहा था। पद्मा ने दीन भाव से कहा—मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही, जो तुम इतना बिगड़ उठे। मैं तो केवल तुमसे पूछ रही थी, कहाँ थे। क्या तुम मुझे इतना अधिकार भी नहीं देना चाहते? मैं कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती और तुम मुझे बात-बात पर डाँटते रहते हो। तुम्हे मुझ पर ज़रा भी दया नहीं आती! मुझे तुमसे कुछ भी सहानुभूति मिलनी चाहिए। मैं तुम्हारे लिए क्या कुछ करने को तैयार नहीं हूँ। और आज जो मेरी यह दशा हो गई है, तो तुम मुझसे आँखें फेर लेते हो...।

उसका कण्ठ रुँध गया और वह मेज पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी। प्रसाद ने पूरी विजय पाई।

(३)

पद्मा के लिए मातृत्व अब बड़ा ही अप्रिय प्रसग था। उस पर एक चिन्ता मँड़राती रहती। कभी-कभी वह भय से काँप उठती और पछताती। प्रसाद की निरकुशता दिन-दिन बढती जाती थी। क्या करे, क्या न करे। गर्भ पूरा हो गया था, वह कोर्ट न जाती थी। दिनभर अकेली बैठी रहती। प्रसाद स या समय आते, चाय-वाय पीकर फिर उड़ जाते, तो ग्यारह-बारह बजे के पहले न लौटते। वह कहाँ जाते हैं, यह भी उससे

छिपा न था। प्रसाद को जैसे उसकी सूरत से नफरत थी। पूर्ण गर्भ, पीला मुख, चिन्तित, सशंक, उदास; फिर भी वह प्रसाद को श्रृङ्गार और आभूषणों से बाँधने की चेष्टा से बाज न आती थी; मगर वह जितना ही प्रयास करती, उतना ही प्रसाद का मन उसकी ओर से फिरता था। इस अवस्था मे श्रृङ्गार उसे और भी भद्दा लगता।

प्रसव-वेदना हो रही थी। प्रसाद का पता नहीं। नर्स मौजूद थी, लेडी डाक्टर मौजूद थी; मगर प्रसाद का न रहना पद्मा की प्रसव-वेदना को और भी दारुण बना रहा था।

बालक को गोद में देखकर उसका कलेजा फूल उठा, मगर फिर प्रसाद को सामने न पाकर उसने बालक की ओर से मुँह फेर लिया। मीठे फल मे जैसे कीड़े पड़ गये हों।

पाँच दिन सौर-गृह मे काटने के बाद जैसे पद्मा जेलखाने से निकली। नंगी तलवार बनी हुई। माता बनकर वह अपने मे एक अद्‌भुत शक्ति का अनुभव कर रही थी।

उसने चपरासी को चेक देकर बैंक भेजा। प्रसव-सम्बन्धी कई बिल अदा करने थे। चपरासी खाली हाथ लौट आया।

पद्मा ने पूछा—रुपये?

'बैंक के बाबू ने कहा, रुपये सब प्रसाद बाबू निकाल ले गये।'

पद्मा को गोली लग गई। बीस हज़ार रुपये प्राणों की तरह संचित कर रखे थे, इसी शिशु के लिए। हाय! सौर से निकलने पर मालूम हुआ, प्रसाद विद्यालय की एक बालिका को लेकर इङ्गलैण्ड की सैर करने चले गये। झल्लाई हुई घर आई। प्रसाद की तस्वीर उठाकर जमीन पर पटक दी और उसे पैरों से कुचला, उसका जितना सामान था, उसे जमा करके दियासलाई लगा दी और उसके नाम पर थूक दिया।

एक महीना बीत गया था। पद्मा अपने बँगले के फाटक पर शिशु को गोद में लिये खड़ी थी। उसका क्रोध अब शोकमय निराशा बन चुका था। बालक पर कभी दया आती, कभी प्यार आता, कभी घृणा आती। उसने देखा, सड़क पर एक यूरोपियन लेडी अपने पति के साथ अपने बालक को बच्चों की गाड़ी मे बिठाये लिये चली जा रही थी। उसने हसरत भरी आँखों से खुशनसीब जोड़े को देखा और उसकी आँखें सजल हो गईं।

विद्रोही

आज दस साल से जब्त कर रहा हूँ। अपने इस नन्हें-से हृदय में अग्नि का दहकता हुआ कुण्ड छिपाये बैठा हूँ। ससार मे कहीं शाति होगी, कहीं सैर-तमाशे होंगे, कहीं मनोरजन की वस्तुएँ होंगी, मेरे लिए तो अब यही अग्निराशि है, और कुछ नहीं। जीवन की सारी अभिलाषाएँ इसी में जलकर राख हो गईं। किससे अपनी मनोव्यथा कहूँ? फायदा ही क्या। जिसके भाग्य मे रुदन—अनन्त रुदन हो, उसका मर जाना ही अच्छा।

मैंने पहली बार तारा को उस वक्त देखा, जब मेरी उम्र दस साल की थी। मेरे पिता आगरे के एक अच्छे डाक्टर थे। लखनऊ में मेरे एक चचा रहते थे। उन्होंने वकालत में काफी धन कमाया था। मैं उन दिनों चचा ही के साथ रहता था। चचा के कोई सन्तान न थी; इसलिए मैं ही उनका वारिस था। चचा और चची दोनों मुझे अपना पुत्र समझते थे। मेरी माता बचपन ही मे सिधार चुकी थीं। मातृ-स्नेह का जो कुछ प्रसाद मुझे मिला, वह चचीजी ही की भिक्षा थी। वही भिक्षा मेरे उस मातृ-प्रेम से वंचित बालपन की सारी विभूति थी।

चचा साहब के पड़ोस में हमारी बिरादरी के एक बाबू साहब और रहते थे। वह रेलवे-विभाग में किसी अच्छे ओहदे पर थे। दो-ढाई सौ रुपये पाते थे। नाम था विमलचन्द्र। तारा उन्हींकी पुत्री थी। उस वक्त उनकी उम्र पाँच साल की होगी। बचपन का वह दिन आज भी आँखों के सामने है, जब तारा एक फ्राक पहने, बालों मे एक गुलाब का फूल गूँथे हुए मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। कह नहीं सकता, क्यों मैं उसे देखकर कुछ झेंप-सा गया। मुझे वह देव-कन्या-सी मालूम हुई, जो उषाकाल के सौरभ और विकास से रजित आकाश से उतर आई हो।

उस दिन से तारा अक्सर मेरे घर आती। उसके घर में खेलने की जगह न थी। चचा साहब के घर के सामने लम्बा-चौड़ा मैदान था। वहाँ वह खेला करती।

धीरे-धीरे मैं भी उससे मायूस हो गया। मैं जब स्कूल से लौटता, तो तारा दौड़कर मेरे हाथों से किताबों का बस्ता ले लेती। जब मैं स्कूल जाने के लिए गाड़ी पर बैठता, तो वह भी आकर मेरे साथ बैठ जाती। एक दिन उसके सामने चची ने चचाजी से कहा—तारा को मैं अपनी बहू बनाऊँगी। क्यों कृष्णा, तू तारा से ब्याह करेगा? मैं मारे शर्म के बाहर भाग गया; लेकिन तारा वहीं खड़ी रही, मानो चची ने उसे मिठाई लेने को बुलाया हो। उस दिन से चचा और चची में अक्सर यह चर्चा होती—कभी सलाह के ढङ्ग से, कभी मजाक के ढङ्ग से। उस अवसर पर मैं तो शरमाकर बाहर भाग जाता था; पर तारा खुश होती थी। दोनों परिवारों में इतना घराँव था कि इस सम्बन्ध का हो जाना कोई असाधारण बात न थी। तारा के माता-पिता को तो इसका पूरा विश्वास था कि तारा से मेरा विवाह होगा। मैं जब उनके घर जाता, तो मेरी बड़ी आवभगत होती। तारा की माँ उसे मेरे साथ छोड़कर किसी बहाने से टल जाती थीं। किसीको अब इसमें शक न था कि तारा ही मेरी हृदयेश्वरी होगी।

एक दिन उस सरला ने मिट्टी का एक घरौंदा बनाया। मेरे मकान के सामने नीम का पेड़ था। उसी की छाँह में वह घरौंदा तैयार हुआ। उसमें कई ज़रा-ज़रा-से कमरे थे, कई मिट्टी के बरतन, एक नन्हीं-सी चारपाई थी। मैंने जाकर देखा, तो तारा घरौंदा बनाने में तन्मय हो रही थी। मुझे देखते ही दौड़कर मेरे पास आई और बोली—कृष्णा, चलो, हमारा घर देखो, मैंने अभी बनाया है। घरौंदा देखा तो हँसकर बोला—इसमें कौन रहेगा तारा?

तारा ने ऐसा मुँह बनाया, मानो यह व्यर्थ का प्रश्न था। बोली—क्यों, हम और तुम कहाँ रहेंगे? जब हमारा-तुम्हारा विवाह हो जायगा, तो हम लोग इसी घर में आकर रहेंगे। यह देखो, तुम्हारी बैठक है, तुम यहीं बैठकर पढ़ोगे। दूसरा कमरा मेरा है, इसमें बैठकर मैं गुड़िया खेलूँगी।

मैंने हँसी करके कहा—क्यों, क्या मैं सारी उम्र पढ़ता ही रहूँगा और तुम हमेशा गुड़िया खेलती रहोगी?

तारा ने मेरी तरफ इस ढङ्ग से देखा, जैसे मेरी बात नहीं समझी। पगली जानती थी कि जिन्दगी खेलने और हँसने ही के लिए है। यह न जानती थी कि एक दिन हवा का एक झोंका आयेगा और इस घरौंदे को उड़ा ले जायगा। इसी के साथ हम दोनों भी कहीं-से-कहीं जा उड़ेंगे।

(२)

इसके बाद मैं पिताजी के पास चला आया और कई साल पढता रहा। लखनऊ का जलवायु मेरे अनुकूल न था, या पिताजी ने मुझे अपने पास रखने के लिए यह बहाना किया था, मै निश्चय नहीं कह सकता। इण्टरमीडिएट तक मैंने आगरे ही मे पढा, लेकिन चचा साहब के दर्शनों के लिए बराबर जाता रहता था। हरएक तातील मे लखनऊ अवश्य जाता और गरमियों की छुट्टी तो पूरी लखनऊ ही मे कटती थी। एक छुट्टी गुजरते ही दूसरी छुट्टी आने के दिन गिनने लगते थे। अगर मुझे एक दिन की भी देर हो जाती, तो तारा का पत्र आ पहुँचता। बचपन के उस सरल प्रेम मे अब जवानी का उत्साह और उन्माद था। वे प्यारे दिन क्या कभी भूल सकते हैं! वही मधुर स्मृतियाँ अब इस जीवन का सर्वस्व हैं। हम दोनों रात को सबकी नजरें बचाकर मिलते और हवाई किले बनाते। इससे कोई यह न समझे कि हमारे मन मे पाप था, कदापि नहीं। हमारे बीच मे एक भी ऐसा शब्द, एक भी ऐसा सकेत न आने पाता, जो हम दूसरों के सामने न कर सकते, जो उचित सीमा के बाहर होते। यह केवल वह सकोच था, जो इस अवस्था मे हुआ करता है। शादी हो जाने के बाद भी तो कुछ दिनों तक स्त्री और पुरुष बड़ो के सामने बातें करते लजाते है। हाँ, जो अँगरेजी सभ्यता के उपासक हैं, उनकी बात मैं नहीं चलाता, वे तो बडों के सामने आलिगन और चुम्बन तक कर सकते हैं। हमारी मुलाकातें दोस्तों की मुलाकातें होती थीं—कभी ताश की बाजी होती, कभी साहित्य की चर्चा, कभी स्वदेश-सेवा के मनसूबे बँधते, कभी ससार-यात्रा के। क्या कहूँ, तारा का हृदय कितना पवित्र था! अब मुझे ज्ञात हुआ कि स्त्री कैसे पुरुष पर नियन्त्रण कर सकती है, कुत्सित को भी कैसे पवित्र बना सकती है। एक दूसरे से बातें करने में, एक दूसरे के सामने बैठे रहने मे हमे असीम आनन्द होता था। फिर, प्रेम की बातो की ज़रूरत वहाँ होती है, जहाँ अपने अखण्ड अनुराग, अपनी अतुल निष्ठा, अपने पूर्ण आत्म-समर्पण का विश्वास दिलाना होता है। हमारा सबध तो स्थिर हो चुका था। केवल रस्मे बाक़ी थीं। वह मुझे अपना पति समझती थी, मैं उसे अपनी पत्नी समझता था। ठाकुरजी के भोग लगने के पहले थाल के पदार्थों मे कौन हाथ लगा सकता है। हम दोनों मे कभी-कभी लड़ाई भी होती थी, और कई-कई दिनो तक बातचीत की नौबत न आती, लेकिन ज्यादती कोई करे, मनाना उसी को पड़ता था। मैं ज़रा सी बात पर तिनक जाता था। वह

हँसमुख थी, बहुत ही सहनशील, लेकिन उसके साथ ही मानिनी भी परले सिरे की। मुझे खिलाकर भी ख़ुद न खाती, मुझे हँसाकर भी ख़ुद न हँसती।

इण्टरमीडिएट पास होते ही मुझे फौज मे एक जगह मिल गई। उस विभाग के अफसरों में पिताजी का बड़ा मान था। मैं सार्जन्ट हो गया और सौभाग्य से लखनऊ ही मे मेरी नियुक्ति हुई। मुँह-माँगी मुराद पूरी हुई।

मगर विधि-वाम कुछ और ही षड्यन्त्र रच रहा था। मैं तो इस खयाल मे मगन था कि कुछ दिनों में तारा मेरी होगी। उधर एक दूसरा ही गुल खिल गया। शहर के एक नामी रईस ने चचाजी से मेरे विवाह की बात छेड़ दी और आठ हजार रुपये दहेज का वचन दिया। चचाजी के मुँह से लार टपक पड़ी। सोचा, यह आशातीत रकम मिलती है, इसे क्यों छोड़ूँ। विमल बाबू की कन्या का विवाह कहीं-न-कहीं हो ही जायगा। उन्हे सोचकर जवाब देने का वादा करके विदा किया और विमल बाबू को बुलाकर बोले – आज चौधरी साहब कृष्णा को शादी की बातचीत करने आये थे। आप तो उन्हे जानते होंगे। अच्छे रईस हैं। आठ हजार रुपये दे रहे हैं। मैंने कह दिया है, सोचकर जवाब दूँगा। आपकी क्या राय है? यह शादी मजूर कर लूँ?

विमल बाबू ने चकित होकर कहा – यह आप क्या फरमाते हैं? कृष्णा की शादी तो तारा से ठीक हो चुकी है न?

चचा साहब ने अनजान बनकर कहा—यह तो मुझे आज मालूम हो रहा है। किसने ठीक की है यह शादी? आपसे तो मुझसे इस विषय मे कोई बातचीत नहीं हुई।

विमल बाबू ज़रा गर्म होकर बोले – जो बात आज दस-बारह साल से सुनता आता हूँ, क्या उसकी तसदीक़ भी करनी चाहिए थी? मैं तो इसे तय समझे बैठा हूँ। मैं ही क्या, सारा मुहल्ला तय समझ रहा है।

चचा साहब ने बदनामी के भय से ज़रा दबकर कहा— भाई साहब, हक तो यह है कि मैं जब कभी इस सम्बन्ध की चर्चा करता था, दिल्लगी के तौर पर था, लेकिन खैर, मैं आप को निराश नहीं करना चाहता। आप मेरे पुराने मित्र हैं। मैं आपके साथ सब तरह की रियायत करने को तैयार हूँ। मुझे आठ हजार मिल रहे है। आप मुझे सात हज़ार ही दीजिए—छ हजार ही दीजिए।

विमल बाबू ने उदासीन भाव से कहा—आप मुझसे मज़ाक कर रहे हैं, या सच-मुच दहेज माँग रहे हैं? मुझे यकीन नहीं आता।

चचा साहब ने माथा सिकोडकर कहा—इसमे मजाक की तो कोई बात नहीं। मैं आपके सामने चौधरी से बातें कर सकता हूँ।

विमल—बावूजी, आपने तो यह नया प्रश्न छेड़ दिया। मुझे तो स्वप्न मे भी गुमान न था कि हमारे और आपके बीच मे यह प्रश्न खड़ा होगा। ईश्वर ने आपको बहुत कुछ कर दिया है। दस-पाँच हज़ार मे आपका कुछ न बनेगा। हाँ, यह रक़म मेरी सामर्थ्य से बाहर है। मैं तो आपसे दया ही की भिक्षा माँग सकता हूँ। आज दस-बारह साल से हम कृष्णा को अपना दामाद समझते आ रहे है। आपकी बातो से भी कई बार इसकी तसदीक हो चुकी है। कृष्णा और तारा मे जो प्रेम है, वह आपसे छिपा नहीं। ईश्वर के लिए थोड़े से रुपयो के वास्ते कई जनों का खून न कीजिए।

चाचा साहब ने दृढता से कहा—विमल बाबू, मुझे खेद है कि मैं इस विषय मे और नहीं दब सकता।

विमल बाबू ज़रा तेज होकर बोले—आप मेरा गला घोंट रहे हैं!

चचा—आपको मेरा एहसान मानना चाहिए कि कितनी रियायत कर रहा हूँ।

विमल—क्यो न हो, आप मेरा गला घोटें और मैं आपका एहसान मानूँ! मैं इतना उदार नहीं हूँ, अगर मुझे मालूम होता कि आप इतने लोभी हैं, तो आपसे दूर ही रहता। मैं आपको सज्जन समझता था। अब मालूम हुआ कि आप भी कौडियों के गुलाम है। जिसकी निगाह मे मुरौवत नही, जिसकी बातो का कोई विश्वास नहीं, उसे मैं शरीफ नहीं कह सकता। आपको अख़्तियार है, कृष्णा बाबू की शादी जहाँ चाहे करें, लेकिन आपको हाथ न मलना पडे, तो कहिएगा। तारा का विवाह तो कहीं-न कहीं हो ही जायगा, और ईश्वर ने चाहा, तो किसी अच्छे ही घर होगा। ससार मे सज्जनों का अभाव नहीं है, मगर आपके हाथ अपयश के सिवा और कुछ न लगेगा।

चचा साहब ने त्यौरियाँ चढाकर कहा—अगर आप मेरे घर मे न होते तो इस अपमान का कुछ जवाब देता।

विमल बाबू ने छड़ी उठा ली और कमरे से बाहर जाते हुए कहा—आप मुझे क्या जवाब देंगे? आप जवाब देने के योग्य ही नहीं है।

उसी दिन शाम को जब मैं बैरक से आया और जलपान करके विमल बाबू के

घर जाने लगा, तो चची ने कहा—कहाँ जाते हो? विमल बाबू से और तुम्हारे चचाजी से आज एक झड़प हो गई।

मैंने ठिठककर ताज्जुब के साथ कहा—झड़प हो गई? किस बात पर!

चची ने सारा-का-सारा वृत्तान्त कह सुनाया और विमल को जितने काले रंगों में रँग सकीं, रँगा—तुमसे क्या कहूँ बेटा, ऐसा मुँहफट तो आदमी ही नहीं देखा। हजारों ही गालियाँ दीं! लड़ने पर आमादा हो गया।

मैंने एक मिनट तक सन्नाटे में खड़े रहकर कहा—अच्छी बात है; वहाँ न जाऊँगा। बैरक जा रहा हूँ। चची बहुत रोईं-चिल्लाईं, पर मैं एक क्षणभर भी न ठहरा। ऐसा जान पड़ता था, जैसे कोई मेरे हृदय मे भाले भोंक रहा है। घर से बैरक तक पैदल जाने मे शायद मुझे दस मिनट से ज्यादा न लगे होंगे। बार-बार जी झुँझलाता था, चचा साहब पर नहीं, विमल बाबू पर भी नहीं, केवल अपने ऊपर। क्यों मुझमे इतनी हिम्मत नहीं है कि जाकर चचा साहब से कह दूँ—कोई मुझे लाख रुपये भी दे, तो मैं शादी न करूँगा, मैं क्यों इतना डरपोक, इतना तेजहीन, इतना दब्बू हो गया।

इसी क्रोध मे मैंने पिताजी को एक पत्र लिखा और वह सारा वृत्तान्त सुनाने के बाद अन्त मे लिखा—मैंने निश्चय कर लिया है कि और कहीं शादी न करूँगा, चाहे मुझे आपकी अवज्ञा ही क्यों न करनी पड़े। उस आवेश में न-जाने क्या-क्या लिख गया, अब याद भी नहीं। इतना ही याद है कि दस-बारह पन्ने दस मिनट मे लिख डाले थे। सम्भव होता तो मैं यही सारी बाते तार से भेजता।

तीन दिन मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ काटे। उसका केवल अनुमान किया जा सकता है। सोचता, तारा हमे अपने मन मे कितना नीच समझ रही होगी। कई बार जी मे आया, चलकर उसके पैरो पर गिर पड़ूँ और कहूँ—देवी, मेरा अपराध क्षमा करो। चचा साहब के कठोर व्यवहार की परवा न करो। मैं तुम्हारा था, और तुम्हारा हूँ। चचा साहब मुझसे बिगड़ जायँ, पिताजो घर से निकाल दें, मुझे किसी की परवा नहीं है, लेकिन तुम्हे खोकर तो मेरा जीवन ही खो जायगा।

तीसरे दिन पत्र का जवाब आया। रही-सही आशा भी टूट गई। वही जवाब था, जिसकी मुझे शका थी। लिखा था—भाई साहब मेरे पूज्य हैं। उन्होंने जो निश्चय किया है, उसके विरुद्ध मैं एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल सकता, और तुम्हारे लिए भी यही उचित है कि उन्हें नाराज़ न करो।

मैंने उस पत्र को फाड़कर पैरों से कुचल दिया, और उसी वक्त विमल बाबू के घर की तरफ चला। आह! उस वक्त अगर कोई मेरा रास्ता रोक लेता, मुझे धमकाता कि उधर मत जाओ, तो मैं विमल बाबू के पास जाकर ही दम लेता और आज मेरा जीवन कुछ और ही होता, पर वहाँ मना करनेवाला कौन बैठा था। कुछ दूर चलकर हिम्मत हार बैठा। लौट पड़ा। कह नहीं सकता, क्या सोचकर लौटा। चचा साहब की अप्रसन्नता का मुझे रत्ती-भर भी भय न था। उनकी अब मेरे दिल मे ज़रा भी इज्जत न थी। मैं उनकी सारी सम्पत्ति को ठुकरा देने को तैयार था। पिताजी के नाराज़ हो जाने का भी डर न था। सकोच केवल यह था—कौन मुँह लेकर जाऊँ! आखिर, मैं उन्हीं चचा का भतीजा तो हूँ। विमल बाबू मुझसे मुखातिब न हुए या जाते ही जाते दुत्कार दिया, तो मेरे लिए डूब मरने के सिवा और क्या रह जायगा। सबसे बड़ी शका यह थी कि कहीं तारा ही मेरा तिरस्कार कर बैठे, तो मेरी क्या गति होगी। हाय! अहृदय तारा! निष्ठुर तारा! अबोध तारा! अगर तूने उस वक्त दो शब्द लिखकर मुझे तसल्ली दे दी होती, तो आज मेरा जीवन कितना सुखमय होता! तेरे मौन ने मुझे मटियामेट कर दिया - सदा के लिए! आह! सदा के लिए!

(३)

तीन दिन फिर मैंने अगारों पर लोट-लोटकर काटे। ठान लिया था कि अब किसी से न मिलूँगा। सारा ससार मुझे अपना शत्रु-सा दीखता था। तारा पर भी क्रोध आता था। चचा साहब की तो सूरत से मुझे घृणा हो गई थी, मगर तीसरे दिन शाम को चचाजी का रुक्का पहुँचा। मुझसे आकर मिल जाओ। जी में तो आया, लिख दूँ, मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं, आप समझ लीजिए, मैं मर गया, मगर फिर उनके स्नेह और उपकारों की याद आ गई। खरी-खरी सुनाने का भी अच्छा अवसर मिल रहा था। हृदय मे युद्ध का नशा और जोश भरे हुए मैं चचाजी की सेवा मे पहुँच गया।

चचाजी ने मुझे सिर से पैर तक देखकर कहा—क्या आजकल तुम्हारी तबीअत अच्छी नहीं है? आज रायसाहब सीताराम तशरीफ लाये थे। तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं। कल सबेरे मौका मिले, तो चले आना या तुम्हे लौटने की जल्दी न हो तो मैं इसी वक्त बुला भेजूँ।

मैं समझ गया कि यह रायसाहब कौन हैं, लेकिन अनजान बनकर बोला—यह रायसाहब कौन हैं? मेरा तो उनसे परिचय नहीं है।

चचाजी ने लापरवाही से कहा—अजी, यह वही महाशय हैं, जो तुम्हारे ब्याह के लिए घेरे हुए हैं। शहर के रईस और कुलीन आदमी हैं। लड़की भी बहुत अच्छी है। कम-से-कम तारा से कई गुनी अच्छी। मैंने हाँ कर लिया है। तुम्हें भी जो बातें पूछनी हों, उनसे पूछ लो।

मैंने आवेश के उमड़ते हुए तूफान को रोककर कहा—आपने नाहक हाँ की। मैं अपना विवाह नहीं करना चाहता।

चचाजी ने मेरी तरफ आँखें फाड़कर कहा—क्यों?

मैंने उसी निर्भीकता से जवाब दिया—इसलिए कि मैं इस विषय में स्वाधीन रहना चाहता हूँ।

चचा साहब ने जरा नर्म होकर कहा—मैं अपनी बात दे चुका हूँ, क्या तुम्हें इसका कुछ ख्याल नहीं है?

मैंने उद्दण्डता से जवाब दिया—जो बात परसों पर बिकती है, उसके लिए मैं अपनी जिन्दगी नहीं खराब कर सकता।

चचा साहब ने गम्भीर भाव से कहा—यह तुम्हारा आखिरी फैसला है?

'जी हाँ, आखिरी।'

'पछताना पड़ेगा।'

'आप इसकी चिन्ता न करें। आपको कष्ट देने न आऊँगा।'

'अच्छी बात है।'

यह कहकर वह उठे और अन्दर चले गये। मैं कमरे से निकला, और बैरक की तरफ चला। सारी पृथ्वी चक्कर खा रही थी, आसमान नाच रहा था और मेरी देह हवा में उड़ी जाती थी। मालूम होता था, पैरों के नीचे ज़मीन है ही नहीं।

बैरक में पहुँचकर मैं पलँग पर लेट गया और फूट-फूटकर रोने लगा। माँ बाप, चचा-चाची, धन-दौलत, सब कुछ होते हुए भी मैं अनाथ था। उफ्! कितना निर्दय आघात था!

(४)

सबेरे हमारे रेजिमेंट को देहरादून जाने का हुक्म हुआ। मुझे आँखें-सी मिल गईं। अब लखनऊ काटे खाता था। उसके गली-कूचों तक से घृणा हो गई थी। एक

बार जी में आया, चलकर तारा से मिल लूँ, मगर फिर वही शङ्का हुई कहीं वह मुखातीव न हुई तो ? विमल बाबू इस दशा मे भी मुझसे उतना ही स्नेह दिखायेंगे, जितना अब तक दिखाते आये हैं, इसका मैं निश्चय न कर सका। पहले मैं एक धनी परिवार का दीपक था, अब एक अनाथ युवक, जिसे मजूरी के सिवा और कोई अवलम्ब नहीं था।

देहरादून मे अगर कुछ दिन मैं शाति से रहता, तो सम्भव था, मेरा आहत-हृदय सभल जाता और मैं विमल बाबू को मना लेता, लेकिन वहाँ पहुँचे एक सप्ताह भी न हुआ था कि मुझे तारा का पत्र मिल गया। पते की लिपि देखकर मेरे हाथ काँपने लगे। समस्त देह में कपन सा होने लगा। शायद शेर को सामने देखकर भी मैं इतना भयभीत न होता। हिम्मत ही न पड़ती थी कि उसे खोलूँ। वही लिखावट थी, वही मोतियों की लड़ी, जिसे देखकर मेरे लोचन तृप्त-से हो जाते थे, जिसे चूमता था और हृदय से लगाता था, वही काले अक्षर आज नागिनो से भी ज़्यादा डरावने मालूम होते थे। अनुमान कर रहा था कि उसने क्या लिखा होगा, पर अनुमान की दूरतम दौड़ भी पत्र के विषय तक न पहुँच सकी। आखिर एक बार कलेजा मजबूत करके मैंने पत्र खोल डाला। देखते ही आँखों मे अँधेरा छा गया। मालूम हुआ, किसी ने सीसा पिघलाकर पिला दिया। तारा का विवाह तय हो गया था। शादी होने में कुल चौबीस घटे बाकी थे। उसने मुझसे अपनी भूलो के लिए क्षमा माँगी और विनती की थी कि मुझे भुला मत देना। पत्र का अंतिम वाक्य पढकर मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। लिखा था—यह अतिम प्यार लो। अब आज से मेरे और तुम्हारे बीच मे केवल मैत्री का नाता है। अगर कुछ और समझूँ तो वह अपने पति के साथ अन्याय होगा, जिसे शायद तुम सबसे ज्यादा नापसद करोगे। बस, इससे अधिक और न लिखूँगी। बहुत अच्छा हुआ कि तुम यहाँ से चले गये। तुम यहाँ रहते, तो तुम्हे भी दुःख होता और मुझे भी, मगर प्यारे! अपनी इस अभागिनी तारा को भूल न जाना। तुमसे यही अतिम निवेदन है।

मैं पत्र को हाथ में लिये-लिये लेट गया। मालूम होता था, छाती फट जायगी। भगवन्! अब क्या करूँ। जब तक मैं लखनऊ पहुँचूँगा, बारात द्वार पर आ चुकी होगी। यह निश्चय था, लेकिन तारा के अन्तिम दर्शन करने की प्रबल इच्छा को मैं किसी तरह न रोक सकता था। यही अब जीवन की अतिम लालसा थी।

मैंने जाकर कमांडिंग आफिसर से कहा—मुझे एक बड़े ज़रूरी काम से लखनऊ जाना है। तीन दिन की छुट्टी चाहता हूँ।

साहब ने कहा—अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।

'मेरा जाना जरूरी है।'

'तुम नहीं जा सकते।'

'मैं किसी तरह नहीं रुक सकता।'

'तुम किसी तरह नहीं जा सकते।'

मैंने और अधिक आग्रह न किया। वहाँ से चला आया। रात की गाड़ी से लखनऊ जाने का निश्चय कर लिया। कोर्ट मार्शल का अब मुझे ज़रा भी डर न था।

(५)

जब मैं लखनऊ पहुँचा, तो शाम हो गई थी। कुछ देर तक मैं प्लेटफार्म से दूर खड़ा खूब अँधेरा हो जाने का इन्तजार करता रहा। तब अपनी क़िस्मत के नाटक का सबसे भीषण काड देखने चला। बरात द्वार पर आ गई थी। गैस की रोशनी हो रही थी। बराती लोग जमा थे। हमारे मकान की छत तारा की छत से मिली हुई थी। रास्ता मरदाना कमरे की बग़ल से था। चचा साहब शायद कहीं सैर करने गये हुए थे। नौकर-चाकर सब बरात की बहार देख रहे थे। मैं चुपके से जीने पर चढ़ा और छत पर जा पहुँचा। वहाँ इस वक्त बिलकुल सन्नाटा था। उसे देखकर मेरा दिल भर आया। हाय! यही वह स्थान है, जहाँ हमने प्रेम के आनन्द उठाये थे। यहीं मैं तारा के साथ बैठकर ज़िंदगी के मनसूबे बाँधता था। यही स्थान मेरी आशाओं का स्वर्ग और मेरे जीवन का तीर्थ था। इस जमीन का एक-एक अणु मेरे लिए मधुर स्मृतियों से पवित्र था, पर हाय! मेरे हृदय की भाँति आज वह भी ऊजड़, सुनसान अँधेरा था। मैं उस जमीन से लिपटकर खूब रोया, यहाँ तक कि हिचकियाँ बँध गई। काश उस वक्त तारा वहाँ आ जाती, तो मैं उसके चरणों पर सिर रखकर हमेशा के लिए सो जाता। मुझे ऐसा भासित होता था कि तारा की पवित्र आत्मा मेरी दशा पर रो रही है। आज भी तारा यहाँ ज़रूर आई होगी। शायद इसी ज़मीन पर लिपटकर वह भी रोई होगी। उस भूमि से उसके सुगन्धित केशों की महक आ रही थी। मैंने जेब से रूमाल निकाला और वहाँ की धूल जमा करने लगा। एक क्षण में मैंने सारी छत साफ कर डाली और अपनी अभिलाषाओं की इस राख को

हाथ में लिये घण्टों रोया । यही मेरे प्रेम का पुरस्कार है, यही मेरी उपासना का वरदान है, यही मेरी जीवन की विभूति है । हाय री दुराशा !

नीचे विवाह के संस्कार हो रहे थे । ठीक आधी रात के समय वधू मण्डप के नीचे आई । अब भाँवरें होंगी । मैं छत के किनारे चला आया और वह मर्मान्तक दृश्य देखने लगा । बस, यही मालूम हो रहा था कि कोई हृदय के टुकड़े किये डालता है । आश्चर्य है, मेरी छाती क्यों न फट गई ! मेरी आखें क्यों न निकल पड़ीं ! वह मण्डप मेरे लिए चिता थी, जिसमे वह सब कुछ, जिस पर मेरे जीवन का आधार था, जला जा रहा था ।

भाँवरें समाप्त हो गई , तो मैं कोठे से उतरा । अब क्या बाकी था । चिता की राख भी जलमग्न हो चुकी थी । दिल को थामे, वेदना से तड़पता हुआ जीने के द्वार तक आया , मगर द्वार बाहर से बन्द था । अब क्या हो ! उलटे पाँव लौटा । अब तारा के आँगन से होकर जाने के सिवा दूसरा रास्ता न था । मैंने सोचा, इस जमघट मे मुझे कौन पहचानता है, निकल जाऊँगा , लेकिन ज्यों ही आँगन मे पहुँचा, तारा की माताजी की निगाह पड़ गई । चौंककर बोलीं—कौन, कृष्णा बाबू ? तुम कब आये ? आओ, मेरे कमरे में आओ । तुम्हारे चचा साहब के भय से हमने तुम्हें न्यौता नहीं भेजा । तारा प्रात काल विदा हो जायगी । आओ, उससे मिल लो । दिन-भर से तुम्हारी रट लगा रही है ।

यह कहते हुए उन्होंने मेरा बाजू पकड़ लिया और मुझे खींचते हुए अपने कमरे मे ले गई । फिर पूछा—अपने घर से होते हुए आये हो न ?

मैंने कहा—मेरा घर यहाँ कहाँ है ?

'क्यो, तुम्हारे चचा साहब नहीं हैं ?'

'हाँ, चचा साहब का घर है, मेरा घर अब कहीं नहीं है । बनने की कभी आशा थी , पर आप लोगों ने वह भी तोड़ दी ।'

'हमारा इसमें क्या दोष था भैया ? लड़की का ब्याह तो कहीं-न-कहीं करना था। तुम्हारे चचाजी ने तो हमें मँझधार मे छोड़ दिया था । भगवान् ही ने उबारा । क्या अभी सीधे स्टेशन से चले आ रहे हो ? तब तो अभी कुछ खाया भी न होगा ।'

'हाँ, थोड़ा-सा ज़हर लाकर दे दीजिए, यही मेरे लिए सबसे अच्छी दवा है ।'

वृद्धा विस्मित होकर मेरा मुँह ताकने लगी। मुझे तारा से कितना प्रेम था, वह बेचारी क्या जानती थी।

मैंने उसी विरक्ति के साथ फिर कहा—जब आप लोगों ने मुझे मार डालने ही का निश्चय कर लिया, तो अब देर क्यों कीजिए। आप मेरे साथ यह दगा करेंगी, यह मैं न समझता था। खैर, जो हुआ, अच्छा ही हुआ। चचा और बाप की आँखों से गिरकर मैं शायद आपकी आँखों में भी न जँचता।

बुढ़िया ने मेरी तरफ शिकायत की नजरों से देखकर कहा—तुम हम लोगों को इतना स्वार्थी समझते हो बेटा!

मैंने जले हुए हृदय से कहा—अब तक तो न समझता था; लेकिन परिस्थिति ने ऐसा समझने को मजबूर किया। मेरे खून का प्यासा दुश्मन भी मेरे ऊपर इससे घातक वार न कर सकता था। मेरा ख़ून आप ही की गरदन पर होगा।

'तुम्हारे चचाजी ने ही तो इन्कार कर दिया।'

'आप लोगों ने मुझसे भी कुछ पूछा, मुझसे भी कुछ कहा, मुझे भी कुछ कहने का अवसर दिया? आपने तो ऐसी निगाहें फेरीं, जैसे आप दिल से यही चाहती थीं; मगर अब आपसे शिकायत क्यों करूँ। तारा ख़ुश रहे, मेरे लिए यही बहुत है।'

'तो बेटा, तुमने भी तो कुछ नहीं लिखा, अगर तुम एक पुरजा भी लिख देते, तो हमें तस्कीन हो जाती। हमें क्या मालूम था कि तुम तारा को इतना प्यार करते हो। हमसे ज़रूर भूल हुई; मगर उससे बड़ी भूल तुमसे हुई। अब मुझे मालूम हुआ कि तारा क्यों बराबर डाकिये को पूछती रहती थी। अभी कल वह दिन-भर डाकिये की राह देखती रही। जब तुम्हारा कोई खत नहीं आया, तब वह निराश हो गई। बुला दूँ उसे? मिलना चाहते हो?'

मैंने चारपाई से उठकर कहा—नहीं-नहीं, उसे मत बुलाइए। मैं अब उसे नहीं देख सकता। उसे देखकर मैं न जाने क्या कर बैठूँ।

यह कहता हुआ मैं चल पड़ा। तारा की माँ ने कई बार पुकारा, पर मैंने पीछे फिरकर भी न देखा।

यह है मुझ निराश की कहानी। इसे आज दस साल गुज़र गये। इन दस सालों मे मेरे ऊपर जो कुछ बीती, उसे मैं ही जानता हूँ। कई-कई दिन मुझे निराहार रहना पड़ा है। फ़ौज से तो उसके तीसरे ही दिन निकाल दिया गया था। अब मारे-मारे

फिरने के सिवा मुझे कोई काम नहीं। पहले तो काम मिलता ही नहीं, और अगर मिल भी गया, तो मैं टिकता नहीं। जिन्दगी पहाड़ हो गई है। किसी बात की रुचि नहीं रही। आदमी की सूरत से दूर भागता हूं।

तारा प्रसन्न है। तीन-चार साल हुए, एक बार मैं उसके घर गया था। उसके स्वामी ने बहुत आग्रह करके बुलाया था। बहुत कसमे दिलाई। मजबूर होकर गया। वह कली अब खिलकर फूल हो गई है। तारा मेरे सामने आई। उसका पति भी बैठा हुआ था। मैं उसकी तरफ ताक न सका। उसने मेरे पैर खींच लिये। मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। अगर तारा दुखी होती, कष्ट में होती, फटे-हालों होती, तो मैं उस पर बलि हो जाता, पर सम्पन्न, सरस, विकसित तारा मेरी समवेदना के योग्य न थी। मैं इस कुटिल विचार को न रोक सका—कितनी निष्ठुरता! कितनी बेवफाई!

शाम को मैं उदास बैठा वहाँ जाने पर पछता रहा था कि तारा का पति आकर मेरे पास बैठ गया और मुसकिराकर बोला—बाबूजी, मुझे यह सुनकर खेद हुआ कि तारा से मेरे विवाह हो जाने का आपको बड़ा सदमा हुआ। तारा-जैसी रमणी शायद देवताओं को भी स्वार्थी बना देती, लेकिन मैं आपसे सच कहता हूँ, अगर मैं जानता कि आपको उससे इतना प्रेम है, ता मैं हरगिज़ आपकी राह का काँटा न बनता। शोक यही है कि मुझे बहुत पीछे मालूम हुआ। तारा मुझसे आपकी प्रेम-कथा कह चुकी है।

मैंने मुसकिराकर कहा—तब तो आपको मेरी सूरत से भी घृणा होगी।

उसने जोश से कहा—इसके प्रतिकूल मैं आपका आभारी हूँ। प्रेम का ऐसा पवित्र, ऐसा उज्ज्वल आदर्श उसके सामने रखा। वह आपको अब भी उसी मुहब्बत से याद करती है। शायद कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि आपका जिक्र न करती हो। आपके प्रेम को वह अपनी ज़िन्दगी की सबसे प्यारी चीज़ समझती है। आप शायद समझते हो कि उन दिनों को याद करके उसे दुख होता होगा। बिलकुल नहीं, वही उसके जीवन की सबसे मधुर स्मृतियाँ हैं। वह कहती है, मैंने अपने कृष्णा को तुममें पाया है।

मेरे लिए इतना ही काफी है।

९

उन्माद

मनहर ने अनुरक्त होकर कहा—यह सब तुम्हारी कुर्बानियों का फल है वागी, नहीं आज मैं भी किसी अँधेरी गली में, किसी अँधेरे मकान के अन्दर अपनी अँधेरी ज़िन्दगी के दिन काटता होता। तुम्हारी सेवा और उपकार हमेशा याद रहेंगे। तुमने मेरा जीवन सुधार दिया—मुझे आदमी बना दिया।

वागीश्वरी ने सिर झुकाये हुए नम्रता से उत्तर दिया—यह तुम्हारी सज्जनता है मानू, मैं बेचारी भला तुम्हारी ज़िन्दगी क्या सुधारूँगी, हाँ, तुम्हारे साथ मैं भी एक दिन आदमी बन जाऊँगी। तुमने परिश्रम किया, उसका पुरस्कार पाया। जो अपनी मदद आप करते हैं, उनकी मदद परमात्मा भी करते हैं; अगर मुझ-जैसी गँवारिन किसी और के पाले पड़ती, तो अब तक न जाने क्या गत बनी होती।

मनहर मानो इस बहस में अपना पक्ष समर्थन करने के लिए कमर बाँधता हुआ बोला—तुम-जैसी गँवारिन पर मैं एक लाख सजी हुई गुड़ियों और रंगीन तितलियों को न्योछावर कर सकता हूँ। तुमने मेहनत करने का वह अवसर और अवकाश दिया, जिसके बिना कोई सफल हो ही नहीं सकता, अगर तुमने अपनी अन्य विलास-प्रिय, रंगीन-मिजाज बहनों की तरह मुझे अपने तक़ाज़ों से दबा रखा होता, तो मुझे उन्नति करने का अवसर कहाँ मिलता। तुमने मुझे वह निश्चिन्तता प्रदान की, जो स्कूल के दिनों में भी न मिली थी। अपने और सहकारियों को देखता हूँ, तो मुझे उन पर दया आती है। किसी का खर्च पूरा नहीं पड़ता। आधा महीना भी नहीं जाने पाता और हाथ खाली हो जाता है। कोई दोस्तों से उधार माँगता है, कोई घरवालों को खत लिखता है। कोई गहनों की फिक्र में मरा जाता है, कोई कपड़ों को। कभी नौकर की टोह में हैरान, कभी वैद्य की टोह में परेशान। किसी को शांति नहीं। आये-दिन स्त्री-पुरुष में जूते चलते रहते हैं। अपना-जैसा भाग्यवान तो मुझे कोई देख नहीं पड़ता। मुझे घर के सारे आनन्द प्राप्त हैं और जिम्मेदारी एक भी नहीं। तुमने

ही मेरे हौसलों को उभारा, मुझे उत्तेजना दी। जब कभी मेरा उत्साह टूटने लगता था, तुम मुझे तसल्ली देती थीं। मुझे मालूम ही नहीं हुआ कि तुम घर का प्रबन्ध कैसे करती हो। तुमने मोटे-से-मोटा काम अपने हाथों से किया, जिसमें मुझे पुस्तकों के लिए रुपये की कमी न हो। तुम्हीं मेरी देवी हो और तुम्हारी बदौलत ही आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं तुम्हारी इन सेवाओं की स्मृति को हृदय में सुरक्षित रखूँगा वागी, और एक दिन वह आयेगा, जब तुम अपने त्याग और तप का आनन्द उठाओगी।

वागीश्वरी ने गद्‌गद होकर कहा—तुम्हारे यह शब्द मेरे लिए सबसे बड़े पुरस्कार हैं मानू! मैं और किसी पुरस्कार की भूखी नहीं। मैंने जो कुछ तुम्हारी थोड़ी-बहुत सेवा की, उसका इतना यश मुझे मिलेगा, मुझे तो आशा भी न थी।

मनहरनाथ का हृदय इस समय उदार भावों से उमड़ा हुआ था। वह यों बहुत ही अल्पभाषी कुछ रूखा आदमी था और शायद वागीश्वरी को मन मे उसकी शुष्कता पर दुःख भी हुआ हो, पर इस समय सफलता के नशे ने उसको वाणी मे पर-से लगा दिये थे। बोला— जिस समय मेरे विवाह की बातचीत हो रही थी, मैं बहुत शंकित था। समझ गया कि मुझे जो कुछ होना था, हो चुका। अब सारी उम्र देवीजी की नाजबरदारी में गुजरेगी। बड़े-बड़े अँगरेज विद्वानों की पुस्तकें पढने से मुझे भी विवाह से घृणा हो गई थी। मैं इसे उम्र-कैद समझने लगा था, जो आत्मा और बुद्धि की उन्नति का द्वार बन्द कर देती है, जो मनुष्य को स्वार्थ का भक्त बना देती है, जो जीवन के क्षेत्र को संकीर्ण कर देती है, मगर दो ही चार मास के बाद मुझे अपनी भूल मालूम हुई। मुझे मालूम हुआ कि सुभार्या स्वर्ग की सबसे बड़ी विभूति है, जो मनुष्य के चरित्र को उज्ज्वल और पूर्ण बना देती है, जो आत्मोन्नति का मूल मन्त्र है। मुझे मालूम हुआ कि विवाह का उद्देश्य भोग नहीं, आत्मा का विकास है।

वागीश्वरी को नम्रता और सहन न कर सकी। वह किसी बात के बहाने से उठकर चली गई।

मनहर और वागेश्वरी का विवाह हुए तीन साल गुज़रे थे। मनहर उस समय एक दफ्तर में क्लर्क था। सामान्य युवकों की भांति उसे भी जासूसी उपन्यासों से बहुत प्रेम था। धीरे-धीरे उसे जासूसी का शौक हुआ। इस विषय पर उसने बहुत-सा साहित्य जमा किया और बड़े मनोयोग से उनका अध्ययन किया। इसके बाद उसने

इस विषय पर स्वयं एक किताब लिखी। इस रचना मे उसने ऐसी विलक्षण विवेचना-शक्ति का परिचय दिया, उसकी शैली भी इतनी रोचक थी कि जनता ने उसे हाथों-हाथ लिया। इस विषय पर वह सर्वोत्तम ग्रंथ था।

देश में धूम मच गई। यहाँ तक कि इटली और जर्मनी-जैसे देशों से उसके पास प्रशसा-पत्र आये, और इस विषय की पत्रिकाओं मे अच्छी-अच्छी आलोचनाएँ निकलीं। अन्त में सरकार ने भी अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया—उसे इँगलैंड जाकर इस कला का अभ्यास करने के लिए वृत्ति प्रदान की। और यह सब कुछ वागीश्वरी की सत्प्रेरणा का शुभ फल था।

मनहर की इच्छा थी कि वागीश्वरी भी साथ चले; पर वागीश्वरी उनके पाँव की बेड़ी न बनना चाहती थी। उसने घर रहकर सास-ससुर की सेवा करना ही उचित समझा।

मनहर के लिए इँगलैंड एक दूसरी ही दुनिया थी, जहाँ उन्नति के मुख्य साधनों मे एक रूपवती पत्नी का होना भी था, अगर पत्नी रूपवती है, चपल है, चतुर है, वाणी-कुशल है, प्रगल्भ है तो समझ लो कि उसके पति को सोने की खान मिल गई, अब वह उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। मनोयोग और तपस्या के बूते पर नहीं, पत्नी के प्रभाव और आकर्षण के बूते पर। उस ससार में रूप और लावण्य व्रत के बधनों से मुक्त, एक अबाध सम्पत्ति थी। जिसने किसी रमणी को प्राप्त कर लिया, उसकी मानो तकदीर खुल गई। यदि कोई सुन्दरी तुम्हारी सहधर्मिणी नहीं है, तो तुम्हारा सारा उद्योग, सारी कार्यपटुता निष्फल है। कोई तुम्हारा पुरसाँहाल न होगा, अतएव वहाँ लोग रूप को व्यापारिक दृष्टि से देखते थे।

साल ही भर के अंग्रेज़ी समाज के ससर्ग ने मनहर की मनोवृत्तियों में क्रान्ति पैदा कर दी। उसके मिज़ाज में सासारिकता का इतना प्राधान्य हो गया कि कोमल भावों के लिए वहाँ कोई स्थान ही न रहा। वागीश्वरी उसके विद्याभ्यास में सहायक हो सकती थी, पर उसे अधिकार और पद की ऊँचाइयों पर न पहुँचा सकती थी। उसके त्याग और सेवा का महत्त्व भी अब मनहर की निगाहों मे कम होता जाता था। वागीश्वरी अब उसे एक व्यर्थ-सी वस्तु मालूम होती थी, क्योंकि उसकी भौतिक दृष्टि में हरएक वस्तु का मूल्य उससे होनेवाले लाभ पर ही अवलबित था। अपना पूर्व जीवन अब उसे हास्यप्रद जान पड़ता था। चचल, हँसमुख, विनोदिनी अंग्रेज़-युवतियों के सामने

वागीश्वरी एक हलकी, तुच्छ-सी वस्तु जान पड़ती—इस विद्युत्-प्रकाश मे वह दीपक अब मलिन पड़ गया था। यहाँ तक कि शनै-शनै उसका वह मलिन प्रकाश भी लुप्त हो गया।

मनहर ने अपने भविष्य का निश्चय कर लिया। वह भी एक रमणी की रूपनौका द्वारा ही अपने लक्ष्य पर पहुँचेगा। इसके सिवा और कोई उपाय न था।

(२)

रात के नौ बजे थे। मनहर लदन के एक फैसनेबुल रेस्ट्राँ मे बना-ठना बैठा था। उसका रग-रूप और ठाट-बाट देखकर सहसा यह कोई नहीं कह सकता था कि अग्रेज़ नहीं है। लदन मे भी उसके सौभाग्य ने उसका साथ दिया था। उसने चोरी के कई गहरे मुआमलों का पता लगा दिया था, इसलिए उसे धन और यश दोनों ही मिल रहा था। वह अब वहाँ के भारतीय समाज का एक प्रमुख अङ्ग बन गया था, जिसके आतिथ्य और सौजन्य की सभी सराहना करते थे। उसका लबोलहज़ा भी अग्रेजो से मिलता जुलता था। उसके सामने मेज की दूसरी ओर एक रमणी बैठी हुई उनकी बाते बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसके अग-अग से यौवन टपका पड़ता था। भारत के अद्भुत वृत्तात सुन-सुनकर उसकी आँखें खुशी से चमक रही थीं। मनहर चिड़िया के सामने दाने बिखेर रहा था।

मनहर—विचित्र देश है जेनी, अत्यन्त विचित्र। पांच-पांच साल के दूल्हे तुम्हे भारत के सिवा और कहीं देखने को न मिलेंगे। लाल रग के कामदार कपड़े, सिर पर चमकता हुआ लम्बा टोप, चेहरे पर फूलो का झालरदार बुर्का, घोड़े पर सवार चले जा रहे हैं। दो आदमी दोनों तरफ से छतरियां लगाये हुए हैं। हाथों में मेहदी लगी हुई।

जेनी—मेंहदी क्यो लगाते है?

मनहर—जिसमें हाथ लाल हो जायँ। पैरो में भी रग भरा जाता है। उँगलियों के नाखून लाल रँग दिये जाते हैं। वह दृश्य देखते ही बनता है।

जेनी—यह तो दिल मे सनसनी पैदा करनेवाला दृश्य होगा। दुलहिन भी इसी तरह सजाई जाती होगी?

मनहर—इससे कई गुना अधिक। सिर से पाँव तक सोने-चाँदी के ज़ेवरो से लदी हुई। ऐसा कोई अग नहीं, जिसमें दो-दो, चार-चार गहने न हों।

जेनी—तुम्हारी शादी भी उसी तरह हुई होगी। तुम्हे तो बड़ा आनन्द आया होगा ?

मनहर—हाँ, वही आनन्द आया था, जो तुम्हें मेरी गोराउण्ड पर चढने में आता है। अच्छी-अच्छी चीज़ें खाने को मिलती हैं, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं। खूब नाच-तमाशे देखता था और शहनाइयों का गाना सुनता था। मजा तो तब आता है, जब दुलहिन अपने घर से विदा होती है। सारे घर में कुहराम मच जाता है। दुलहिन हरएक से लिपट-लिपटकर रोती है; जैसे मातम कर रही हो।

जेनी—दुलहिन रोती क्यों है ?

मनहर—रोने का रिवाज चला आता है। हाँलाकि सभी जानते हैं कि वह हमेशा के लिए नहीं चली जा रही है, फिर भी सारा घर इस तरह फूट-फूटकर रोता है, मानो वह काले पानी भेजी जा रही हो।

जेनी—मैं तो इस तमाशे पर खूब हँसूँ।

मनहर—हँसने की बात ही है।

जेनी—तुम्हारी बीबी भी रोई होगी ?

मनहर—अजी, कुछ न पूछो, पछाड़े खा रही थी, मानो मैं उसका गला घोंट दूँगा। मेरी पालकी से निकलकर भागी जाती थी; पर मैंने जोर से पकड़कर अपनी बगल में बैठा लिया। तब मुझे दाँत काटने दौड़ी।

मिस जेनी ने ज़ोर से क़हक़हा मारा और मारे हँसी के लोट गई। बोली—हारिबिल! हारिबिल! क्या अब भी दाँत काटती है ?

मनहर—वह अब इस ससार में नहीं है जेनी। मैं उससे खूब काम लेता था। मैं सोता था, तो वह मेरे बदन मे चप्पी लगाती थी, मेरे सिर में तेल डालती थी, पखा झलती थी।

जेनी—मुझे तो विश्वास नहीं आता। बिलकुल मुर्ख थी।

मनहर—कुछ न पूछो। दिन को किसी के सामने मुझसे बोलती भी न थी; मगर मै उसका पीछा करता रहता था।

जेनी—ओ! नाटी बाय! तुम बड़े शरीर हो। थी तो रूपवती ?

मनहर—हाँ, उसका मुँह तुम्हारे तलवों-जैसा था।

जेनी—नानसेंस! तुम ऐसी औरत के पीछे कभी न दौड़ते।

मनहर—उस वक्त मैं भी मूर्ख था जेनी !

जेनी—ऐसी मूर्ख लड़की से तुमने विवाह क्यों किया ?

मनहर—विवाह न करता तो माँ-बाप ज़हर खा लेते ।

जेनी—वह तुम्हे प्यार कैसे करने लगी ?

मनहर—और करती क्या । मेरे सिवा दूसरा था ही कौन । घर से बाहर निकलने पाती थी , मगर प्यार हममें से किसी को न था । वह मेरी आत्मा और हृदय को सन्तुष्ट न कर सकती थी । जेनी, मुझे उन दिनों की याद आती है, तो ऐसा मालूम होता है कि कोई भयकर स्वप्न था । उफ ! अगर वह स्त्री आज जिवित होती, तो आज मैं किसी अँधेरे दफ्तर में बैठा क़लम घिसता होता । इस देश में आकर मुझे यथार्थ ज्ञान हुआ कि ससार में स्त्री का क्या स्थान है, उसका क्या दायित्व है, और जीवन उसके कारण कितना आनन्दप्रद हो जाता है । और जिस दिन तुम्हारे दर्शन हुए, वह तो मेरी ज़िन्दगी का सबसे मुबारक दिन था । याद है तुम्हें वह दिन ? तुम्हारी वह सूरत मेरी आँखों में अब भी फिर रही है ।

जेनी—अब मैं चली जाऊँगी । तुम मेरी खुशामद करने लगे ।

(२)

भारत के मजदूरदल-सचिव थे लार्ड बारबर, और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी थे मि० कावर्ड । लार्ड बारबर भारत के सच्चे मित्र समझे जाते थे । जब कैंसरवेटिव और लिबरल दलों का अधिकार था, तो लार्ड बारबर भारत की बड़े जोरों से वकालत करते थे । वह उन मन्त्रियों पर ऐसे-ऐसे कटाक्ष करते कि उन बेचारो को कोई जवाब न सूझता। एक बार वह हिदुस्तान आये थे और यहाँ काग्रेस मे शरीक भी हुए थे । उस समय उनकी उदार वक्तृताओं ने समस्त देश में आशा और उत्साह की एक लहर दौड़ा दी थी । काग्रेस के जलसे के बाद वह जिस शहर मे गये, जनता ने उनके रास्ते मे आँखें बिछाई , उनकी गाड़ियाँ खींचीं, उनपर फूल बरसाये । चारों ओर से यही आवाज़ आता थी – यह है भारत का उद्धार करनेवाला । लोगों को विश्वास हो गया कि भारत के सौभाग्य से अगर कभी लार्ड बारबर को अधिकार प्राप्त हुआ, तो वह दिन भारत के इतिहास में मुबारक होगा ।

लेकिन अधिकार पाते ही लार्ड बारबर में एक विचित्र परिवर्तन हो गया । उनके सारे सद्भाव, उनकी उदारता, न्यायपरायणता, सहानुभूति अधिकार के भँवर मे पड़-

गये। और अब लार्ड बारबर और उनके पूर्वाधिकारी के व्यवहार में लेशमात्र भी अन्तर न था। वह भी वही कर रहे थे, जो उनके पहले लोग कर चुके। वही दमन था, वही जातिगत अभिमान, वही कट्टरता, वही सकीर्णता। देवता अधिकार के सिंहासन पर पाँव रखते ही अपना देवत्व खो बैठा था। अपने दो साल के अधिकार-काल में उन्होंने सैकड़ों ही अफसर नियुक्त किये थे, पर उनमे एक भी हिन्दुस्तानी न था, भारतवासी निराश हो-होकर उन्हें 'डाइहार्ट और 'धन का उपासक' और 'साम्राज्यवाद का पुजारी' कहने लगे थे। यह खुला हुआ रहस्य था कि जो कुछ करते थे, मि० कावर्ड करते थे। हक यह था कि लार्ड बारबर नीयत के इतने शेर थे, जितने दिल के कमज़ोर। हालाँकि परिणाम दोनों दशाओं मे एक-सा था।

यह मि० कावर्ड एक ही महापुरुष थे। उनकी उम्र चालीस से गुजर चुकी थी, पर अभी तक उन्होंने विवाह न किया था। शायद उनका खयाल था कि राजनीति के क्षेत्र में रहकर वैवाहिक जीवन का आनन्द नहीं उठा सकते। वास्तव में वह नवीनता के मधुप थे। उन्हें नित्य नये विनोद और आकर्षण, नित्य नये विलास और उल्लास की टोह रहती थी। दूसरों के लगाये हुए बाग़ की सैर करके चित्त को प्रसन्न कर लेना इससे कहीं सरल था कि अपना बाग़ आप लगायें और उसकी रक्षा और सजावट में अपना सिर खपायें। उनकी व्यावहारिक और व्यापारिक दृष्टि मे यह लटका उससे कहीं आसान था।

दोपहर का समय था। मि० कावर्ड नाश्ता करके सिगार पी रहे थे कि मिस जेनी रोज के आने की खबर हुई। उन्होंने तुरन्त आईने के सामने खड़े होकर अपनी सूरत देखी, बिखरे हुए बालों को सँवारा, बहुमूल्य इत्र मला और मुख से स्वागत की सहास छवि दरसाते हुए कमरे से निकलकर मिस रोज़ से हाथ मिलाया!

जेनी ने कमरे मे कदम रखते ही कहा – अब मैं समझ गई कि क्यों कोई सुन्दरी तुम्हारी बात नहीं पूछती। आप अपने वादों को पूरा करना नहीं जानते।

मि० कावर्ड ने जेनी के लिए एक कुरसी खींचते हुए कहा—मुझे बहुत खेद है मिस रोज, कि मैं कल अपना वादा पूरा न कर सका। प्राइवेट सेक्रेटरियों का जीवन कुत्तों के जीवन से भी हेय है। बार-बार चाहता था कि दफ़्तर से उठूँ, पर एक-न-एक काम ऐसा आ जाता था कि फिर रुक जाना पड़ता था। मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ। बाल मे तुम्हें ख़ूब आनन्द आया होगा।

जेनी— मैं तुम्हें तलाश करती रही। जब तुम न मिले, तो मेरा जी खट्टा हो गया। मैं और किसी के साथ नहीं नाची, अगर तुम्हें न जाना था, तो मुझे निमन्त्रण-पत्र क्यों दिलाया था ?

कावर्ड ने जेनी को सिगार भेंट करते हुए कहा—तुम मुझे लज्जित कर रही हो जेनी ! मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती थी कि तुम्हारे साथ नाचता। एक पुराना बेचेलर होने पर भी मैं उस आनन्द की कल्पना कर सकता हूँ। बस, यही समझ लो, तड़प-तड़पकर रह जाता था।

जेनी ने कठोर मुस्कान के साथ कहा— तुम इसी योग्य हो कि बेचेलर बने रहो, यही तुम्हारी सज़ा है।

कावर्ड ने अनुरक्त होकर उत्तर दिया—तुम बड़ी कठोर हो जेनी ! तुम्हीं क्या, रमणियाँ सभी कठोर होती हैं। मैं कितनी ही परवशता दिखाऊँ, तुम्हें विश्वास न आयेगा। मुझे यह अरमान ही रह गया कि कोई सुन्दरी मेरे अनुराग और लगन का आदर करती।

जेनी—तुममें अनुराग हो भी ? रमणियाँ ऐसे बहानेबाजों को मुँह नहीं लगातीं।

कावर्ड— फिर बहानेबाज़ कहा। मजबूर क्यों नहीं कहतीं ?

जेनी—मैं किसी की मजबूरी को नहीं मानती। मेरे लिए यह हर्ष और गौरव की बात नहीं हो सकती कि आपको जब अपने सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और गैर-सरकारी कामों से अवकाश मिले, तो आप मेरा मन रखने को एक क्षण के लिए अपने कोमल चरणों को कष्ट दें। मैं दफ्तर और काम के हीले नहीं सुनना चाहती। इसी कारण तुम अब तक झीख रहे हो।

कावर्ड ने गम्भीर भाव से कहा—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो जेनी ! मेरे अविवाहित रहने का क्या कारण है, यह कल तक मुझे खुद न मालूम था। कल आप ही-आप मालूम हो गया।

जेनी ने उसका परिहास करते हुए कहा — अच्छा ! तो यह रहस्य आपको मालूम हो गया ? तब तो आप सचमुच आत्मदर्शी हैं। ज़रा मैं भी सुनूँ, क्या कारण था ?

कावर्ड ने उत्साह के साथ कहा—अब तक कोई ऐसी सुन्दरी न मिली थी, जो मुझे उन्मत्त कर सकती।

जेनी ने कठोर परिहास के साथ कहा—मेरा खयाल था कि दुनिया में ऐसी औरत पैदा ही नहीं हुई, जो तुम्हें उन्मत्त कर सकती। तुम उन्मत्त बनाना चाहते हो, उन्मत्त बनना नहीं चाहते।

कावर्ड—तुम बड़ा अत्याचार करती हो जेनी!

जेनी—अपने उन्माद का प्रमाण देना चाहते हो?

कावर्ड—हृदय से, जेनी! मैं उस अवसर की ताक में बैठा हूँ।

उसी दिन शाम को जेनी ने मनहर से कहा—तुम्हारे सौभाग्य पर बधाई। तुम्हें वह जगह मिल गई।

मनहर उछलकर बोला—सच! सेक्रेटरी से कोई बातचीत हुई थी?

जेनी—सेक्रेटरी से कुछ कहने की ज़रूरत ही न पड़ी। सब कुछ कावर्ड के हाथ में है। मैंने उसी को चंग पर चढ़ाया। लगा मुझसे इश्क़ जताने। पचास साल की तो उम्र है, चाँद के बाल झड़ गये हैं, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, पर अभी तक आपको इश्क़ का खब्त है। आप अपने को एक ही रसिया समझते हैं। उसके बूढ़े चोंचले बहुत बुरे मालूम होते थे, मगर तुम्हारे लिए सब कुछ सहना पड़ा। खैर मेहनत सुफल हो गई। कल तुम्हें परवाना मिल जायगा। अब सफर की तैयारी करनी चाहिए।

मनहर ने गद्‌गद होकर कहा—तुमने मुझ पर बड़ा एहसान किया है जेनी।

(३)

मनहर को गुप्तचर-विभाग में ऊँचा पद मिला। देश के राष्ट्रीय पत्रों ने उसकी तारीफों के पुल बाँधे, उसकी तस्वीर छापी और राष्ट्र की ओर से उसे बधाई दी। वह पहला भारतीय था, जिसे यह ऊँचा पद प्रदान किया गया था। ब्रिटिश सरकार ने सिद्ध कर दिया था कि उसकी न्यायबुद्धि जातीय अभिमान और द्वेष से उच्चतर है।

मनहर और जेनी का विवाह इङ्गलैण्ड में ही हो गया। हनीमून का महीना फ्रांस में गुजरा। वहाँ से दोनों हिन्दुस्तान आये। मनहर का दफ्तर बम्बई में था। वहीं दोनों एक होटल में रहने लगे। मनहर को गुप्त अभियोगों की खोज के लिए अक्सर दौरे करने पड़ते थे। कभी काश्मीर, कभी मदरास, कभी रंगून। जेनी इन यात्राओं में बराबर उसके साथ रहती। नित्य नये दृश्य थे, नये विनोद, नये उल्लास। उसकी नवीनता-प्रिय प्रकृति के लिए आनन्द का इससे अच्छा और क्या सामान हो सकता था।

मनहर का रहन-सहन तो अँगरेजी था ही, घरवालों से भी सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। वागीश्वरी के पत्रों का उत्तर देना तो दूर रहा, उन्हें खोलकर पढ़ता भी न था। भारत मे उसे हमेशा यह शका बनी रहती थी कि कहीं घरवालों को उसका पता न चल जाय। जेनी से वह अपनी यथार्थ स्थिति को छिपाये रखना चाहता था। उसने घरवालों को अपने आने की सूचना तक न दी। यहाँ तक कि वह हिन्दुस्तानियों से बहुत कम मिलता था। उसके मित्र अधिकाश पुलीस और फौज के अफसर थे। वही उसके मेहमान होते। वाक्चतुर जेनी सम्मोहन-कला मे सिद्धहस्त थी। पुरुषों के प्रेम से खेलना उसकी सबसे आमोदमय क्रीड़ा थी। जलाती भी थी, रिझाती भी थी, और मनहर भी उसकी कपट-लीला का शिकार बनता रहता था। उसे वह हमेशा भूल-भुलैया मे रखती, कभी इतना निकट कि छाती पर सवार, कभी इतनी दूर की योजनों का अन्तर -- कभी निष्ठुर और कठोर, कभी प्रेम-विह्वल और व्यग्र। एक रहस्य था, जिसे वह कभी समझता था, कभी हैरान रह जाता था।

इस तरह दो वर्ष बीत गये और मनहर और जेनी कोण की दो भुजाओं की भाँति एक दूसरे से दूर होते गये। मनहर इस भावना को हृदय से न निकाल सकता था कि जेनी का मेरे प्रति एक विशेष कर्तव्य है। यह चाहे उसकी सकीर्णता हो, या कुल-मर्यादा का असर कि वह जेनी को पाबन्द देखना चाहता था। उसकी स्वच्छन्द वृत्ति उसे लज्जास्पद मालूम होती थी। वह भूल जाता था कि जेनी से उसके सपर्क का आरम्भ ही स्वार्थ पर अवलबित था। शायद उसने समझा था कि समय के साथ जेनी को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो जायगा, हालांकि उसे मालूम होना चाहिए था कि टेढ़ी बुनियाद पर बना हुआ भवन जल्द या देर मे अवश्य भूमिस्थ होकर रहेगा। और ऊँचाई के साथ इसकी शका और भी बढ़ती जाती थी। इसके विपरीत जेनी का व्यवहार बिलकुल परिस्थिति के अनुकूल था। उसने मनहर को विनोद-मय, विलासमय जीवन का एक साधन समझा था और उसी विचार पर अन्त तक स्थिर थी। इस मन्त्र को वह मन मे पति का स्थान न दे सकती थी, पाषाण-प्रतिमा को अपना देवता न बना सकती थी। पत्नी बनना उसके जीवन का स्वप्न न था, इसलिए वह मनहर के प्रति अपने किसी कर्तव्य को स्वीकार न करती थी, अगर मनहर अपनी गाढ़ी कमाई उसके चरणों पर अर्पित करता था, तो उस पर कोई एहसान न करता था।

मनहर उसी का बनाया हुआ पुतला, उसी का लगाया हुआ वृक्ष था। उसकी छाया और फल को भोग करना वह अपना अधिकार समझती थी।

(४)

मनोमालिन्य बढ़ता गया। आखिर मनहर ने उसके साथ दावतों और जलसों में जाना छोड़ दिया; पर जेनी पूर्ववत् सैर करने जाती, मित्रों से मिलती, दावतें करती और दावतों में शरीक होती। मनहर के साथ न जाने से उसे लेशमात्र भी दुःख या निराशा न होती थी; बल्कि वह शायद उसकी उदासीनता पर और भी प्रसन्न होती थी। मनहर इस मानसिक व्यथा को शराब के नशे मे डुबाने का उद्योग करता। पीना तो उसने इङ्गलैण्ड ही में शुरू कर दिया था; पर अब उसकी मात्रा बहुत बढ़ गई थी। वहाँ स्फूर्ति और आनन्द के लिए पीता था, यहाँ स्फूर्ति और आनन्द को मिटाने के लिए। वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता था। वह जानता था, शराब मुझे पिये जा रही है, पर उसके जीवन का यही एक अवलम्ब रह गया था।

गर्मियों के दिन थे। मनहर एक मुआमले की जाँच करने के लिए लखनऊ में डेरा डाले हुए था। मुआमला बहुत संगीन था। उसे सिर उठाने की फ़ुरसत न मिलती थी। स्वास्थ्य भी कुछ खराब हो चला था, मगर जेनी अपने सैर-सपाटे मे मग्न थी। आखिर एक दिन उसने कहा—मैं नैनीताल जा रही हूँ। यहाँ की गर्मी मुझसे सही नहीं जाती।

मनहर ने लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—नैनीताल मे क्या काम है?

वह आज अपना अधिकार दिखाने पर तुल गया। जेनी भी उसके अधिकार की उपेक्षा करने पर तुली हुई थी। बोली—यहाँ कोई सोसाइटी नहीं। सारा लखनऊ पहाड़ों पर चला गया है।

मनहर ने जैसे म्यान से तलवार निकालकर कहा—जब तक मैं यहाँ हूँ, तुम्हे कहीं जाने का अधिकार नहीं है। तुम्हारी शादी मेरे साथ हुई है, सोसाइटी के साथ नहीं हुई। फिर तुम साफ देख रही हो कि मैं बीमार हूँ, तिस पर भी तुम अपनी विलास-प्रवृत्ति को रोक नहीं सकतीं। मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी जेनी! मैं तुमको शरीफ समझता था। मुझे स्वप्न में भी यह गुमान न था कि तुम मेरे साथ ऐसी बेवफाई करोगी।

जेनी ने अविचलित भाव से कहा—तो क्या तुम समझते थे, मैं भी तुम्हारी

हिन्दुस्तानी स्त्री की तरह तुम्हारी लौंडी बनकर रहूँगी और तुम्हारे तलवे सहलाऊँगी ? मैं तुम्हे इतना नादान नहीं समझती , अगर तुम्हे हमारी अंग्रेज़ी सभ्यता की इतनी मोटी-सी बात मालूम नहीं, तो अब मालूम कर लो कि अंग्रेज़ स्त्री अपनी रुचि के सिवा और किसी की पाबन्द नहीं। तुमने मुझसे इसलिए विवाह किया था कि मेरी सहायता से तुम्हें सम्मान और पद प्राप्त हो। सभी पुरुष ऐसा करते हैं और तुमने भी वही किया। मैं इसके लिए तुम्हे बुरा नहीं कहती, लेकिन जब तुम्हारा वह उद्देश्य पूरा हो गया, जिसके लिए तुमने मुझसे विवाह किया था, तो तुम मुझसे अधिक आशा क्यों रखते हो ? तुम हिन्दुस्तानी हो, ॲगरेज़ नहीं हो सकते। मैं ॲगरेज़ हूँ और हिन्दुस्तानी नहीं हो सकती , इसलिए हममें से किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे को अपनी मर्जी का गुलाम बनाने की चेष्टा करे।

मनहर हतबुद्धि-सा बैठा सुनता रहा। एक-एक शब्द विष की घूँट की भाँति उसके कण्ठ के नीचे उतर रहा था। कितना कठोर सत्य था। पद-लालसा के उस प्रचण्ड आवेग में, विलास-तृष्णा के उस अदम्य प्रवाह में वह भूल गया था कि जीवन मे कोई ऐसा तत्त्व भी है, जिसके सामने पद और विलास कांच के खिलौनो से अधिक मूल्य नहीं रखते। वह विस्मृत सत्य इस समय अपने करुण विलाप से उसकी मदमग्न चेतना को तड़पाने लगा।

शाम को जेनी नैनोताल चली गई। मनहर ने उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखा।

(५)

तीन दिन तक मनहर घर से न निकला। जीवन के पाँच-छ वर्षों मे उसने जितने रत्न सचित किये थे, जिन पर वह गर्व करता था, जिन्हें पाकर वह अपने को धन्य मानता था, अब परीक्षा की कसौटी पर आकर नक़ली पत्थर सिद्ध हो रहे थे। उसकी अपमानित, ग्लानित, पराजित आत्मा एकात रोदन के सिवा और कोई त्राण न पाती थी। अपनी टूटी झोपड़ी को छोड़कर वह जिस सुनहले कलशवाले भवन की ओर लपका था, वह मरीचिका मात्र थी, और अब उसे फिर उसी टूटी झोपड़ी की याद आई, जहां उसने शाति, प्रेम और आशीर्वाद की सुधा पी थी। यह सारा आडम्बर उसे काटे खाने लगा। उस सरल शीतल स्नेह के सामने ये सारी विभूतियाँ तुच्छ-सी जँचने लगीं। तीसरे दिन वह भीषण सकल्प करके उठा और दो पत्र लिखे। एक तो अपने

पद से इस्तीफा था, दूसरा जेनी से अंतिम विदा की सूचना। इस्तीफे मे उसने लिखा—मेरा स्वास्थ्य नष्ट हो गया है, और मैं इस भार को नहीं सँभाल सकता। जेनी के पत्र में उसने लिखा—मैं और तुम दोनों ने भूल की और हमे जल्द-से-जल्द उस भूल को सुधार लेना चहिए। मैं तुम्हे सारे बंधनों से मुक्त करता हूँ। तुम भी मुझे मुक्त कर दो। मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। अपराध न तुम्हारा है, न मेरा। समझ का फेर तुम्हें भी था और मुझे भी। मैंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है, और अब तुम्हारा मुझ पर कोई एहसान नही रहा। मेरे पास जो कुछ है, वह तुम्हारा है, वह सब मैं छोड़े जाता हूँ। मैं तो निमित्त मात्र था, स्वामिनी तुम थीं। उस सभ्यता को दूर से ही सलाम है, जो विनोद और विलास के सामने किसी बंधन को स्वीकार नहीं करती।

उसने खुद जाकर दोनों पत्रों की रजिस्टरी कराई और बिना उत्तर का इंतजार किये वहाँ से चलने को तैयार हो गया।

(६)

जेनी ने जब मनहर का पत्र पाकर पढा तो मुस्किराई। उसे मनहर की इच्छा पर शासन करने का ऐसा अभ्यास पड़ गया था कि इस पत्र से उसे जरा भी घबराहट न हुई। उसे विश्वास था कि दो-चार दिन चिकनी-चुपड़ी बातें करके वह उसे फिर वशीभूत कर लेगी, अगर मनहर की इच्छा केवल धमकी देना न होती, उसके दिल पर चोट लगी होती, तो वह अब तक यहाँ न होता। कबका वह स्थान छोड़ चुका होता। उसका यहाँ रहना ही बता रहा था कि वह केवल बँदरघुड़की दे रहा है।

जेनी ने स्थिरचित्त होकर कपड़े बदले और तब इस तरह मनहर के कमरे में आई, मानो कोई अभिनय करके स्टेज पर आई हो।

मनहर उसे देखते ही ज़ोर से ठट्ठा मारकर हँसा। जेनी सहमकर पीछे हट गई। इस हँसी में क्रोध या प्रतिकार न था। इसमें उन्माद भरा हुआ था। मनहर के सामने मेज़ पर बोतल और गिलास रखा हुआ था। एक दिन मे उसने न-जाने कितनी शराब पी ली थी। उसकी आँखों में जैसे रक्त उबला पड़ता था।

जेनी ने समीप जाकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और बोली—क्या रात-भर पीते ही रहोगे? चलो, आराम से लेटो, रात ज्यादा आ गई है। घण्टों से बैठी तुम्हारा इन्तज़ार कर रही हूँ। तुम इतने निठुर तो कभी न थे।

मनहर खोया हुआ-सा बोला—तुम कब आ गई वागी? देखो, मैं कबसे तुम्हें पुकार रहा हूँ। चलो, आज सैर कर आयें। वहाँ नदी के किनारे तुम अपना वही प्यारा गीत सुनाना, जिसे सुनकर मै पागल हो जाता हूँ। क्या कहती हो, मैं बेमुरौवत हूँ? यह तुम्हारा अन्याय है वागी! मै कसम खाकर कहता हूँ, ऐसा एक दिन भी नहीं गुज़रा, जब तुम्हारी याद ने मुझे रुलाया न हो।

जेनी ने उसका कन्धा हिलाकर कहा—तुम यह क्या ऊल-जलूल बक रहे हो? वागी यहाँ कहाँ है?

मनहर ने उसकी ओर अपरिचित-भाव से देखकर कुछ कहा, फिर जोर से हँसकर बोला – मै यह न मानूँगा वागी! तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। वहाँ मैं तुम्हारे लिए फूलों की एक माला बनाऊँगा ••।

जेनी ने समझा, यह शराब बहुत पी गये हैं। बक-झक कर रहे हैं। इनसे इस वक्त कुछ बातें करना व्यर्थ है। चुपके से कमरे के बाहर चली गई। उसे ज़रा-सी शका हुई थी। यहाँ उसका मूलोच्छेद हो गया। जिस आदमी का अपनी वाणी पर अधिकार नहीं, वह इच्छा पर क्या अधिकार रख सकता है।

उसी घड़ी से मनहर को घरवालो की रट-सी लग गई। कभी वागीश्वरी को पुकारता, कभी अम्माँ को, कभी दादा को। उसकी आत्मा अतीत में विचरती रहती, उस अतीत मे जब जेनी ने काली छाया की भाँति प्रवेश न किया था और वागीश्वरी अपने सरल व्रत से उसके जीवन मे प्रकाश फैलाती रहती थी।

दूसरे दिन जेनी ने जाकर उससे कहा—तुम इतनी शराब क्यों पीते हो? देखते नहीं, तुम्हारी क्या दशा हो रही है?

मनहर ने उसकी ओर आश्चर्य से देखकर कहा—तुम कौन हो?

जेनी—क्या मुझे नहीं पहचानते? इतनी जल्द भूल गये?

मनहर—मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा। मैं तुम्हे नहीं पहचानता।

जेनी ने और अधिक बातचीत न की। उसने मनहर के कमरे के शराब की बोतलें उठवा लीं और नौकरों को ताकीद कर दी कि उसे एक घूँट भी शराब न दी जाय। उसे अब कुछ-कुछ सन्देह होने लगा, क्योंकि मनहर की दशा उससे कहीं शकाजनक थी, जितनी वह समझती थी। मनहर का जीवित और स्वस्थ रहना

उसके लिए आवश्यक था। इसी घोड़े पर बैठकर वह शिकार खेलती थी। घोड़े के बग़ैर शिकार का आनन्द कहाँ!

मगर एक सप्ताह हो जाने पर भी मनहर की मानसिक दशा में कोई अंतर न हुआ। न मित्रों को पहचानता, न नौकरों को। पिछले तीन बरसों का उसका जीवन एक स्वप्न की भाँति मिट गया था।

सातवें दिन जेनी सिविल सर्जन को लेकर आई, तो मनहर का कहीं पता न था।

(७)

पाँच साल के बाद वागीश्वरी का लुटा हुआ सोहाग फिर चेता। माँ-बाप पुत्र के वियोग में रो-रोकर अंधे हो चुके थे। वागीश्वरी निराशा में भी आस बाँधे बैठी हुई थी। उसका मायका सपन्न था। बार-बार बुलावे आते, बाप आया, भाई आया, पर वह धैर्य और व्रत की देवी घर से न टली।

जब मनहर भारत आया, तो वागीश्वरी ने सुना, वह विलायत से एक मेम लाया है। फिर भी उसे आशा थी कि वह आयेगा, लेकिन उसकी आशा पूरी न हुई। फिर उसने सुना, वह ईसाई हो गया है और आचार-विचार त्याग दिया है, तब उसने माथा ठोंक लिया।

घर की अवस्था दिन-दिन बिगड़ने लगी। वर्षा बन्द हो गई और सागर सूखने लगा। घर बिका, कुछ ज़मीन थी वह बिकी, फिर गहनों की बारी आई, यहाँ तक कि अब केवल आकाशी-वृत्ति थी। कभी चूल्हा जल गया, कभी ठंढा पड़ रहा।

एक दिन सन्ध्या समय वह कुएँ पर पानी भरने गई थी कि एक थका हुआ, जीर्ण, विपत्ति का मारा-जैसा आदमी आकर कुएँ की जगत पर बैठ गया। वागीश्वरी ने देखा तो मनहर! उसने तुरन्त घूँघट बढा लिया। आँखों पर विश्वास न हुआ, फिर भी आनन्द और विस्मय से हृदय मे फुरेरियाँ उड़ने लगीं। रस्सी और कलसा कुएँ पर छोड़कर लपकी हुई घर आई और सास से बोली—अम्माँजी, जरा कुएँ पर जाकर देखो, कोई आया है। सास ने कहा—तू पानी लाने गई थी, या तमाशा देखने? घर में एक बूँद पानी नहीं है। कौन आया है कुएँ पर?

'चलकर देख लो न!'

'कोई सिपाही-प्यादा होगा। अब उनके सिवा और कौन आनेवाला है। कोई महाजन तो नहीं है?'

'नहीं अम्माँ, तुम चलो क्यों नहीं चलतीं।'

बूढी माता भाँति-भाँति की शंकाएँ करती हुई कुएँ पर पहुँचीं, तो मनहर दौड़कर उनके पैरो से चिमट गया। माता ने उसे छाती से लगाकर कहा—तुम्हारी यह क्या दशा है मानू ? क्या बीमार हो ? असबाब कहाँ है ?

मनहर ने कहा—पहले कुछ खाने को दो अम्माँ! बहुत भूखा हूँ। मैं बड़ी दूर से पैदल चला आ रहा हूँ।

गाँव मे खबर फैल गई, मनहर आया है। लोग उसे देखने दौडे। किस ठाट से आया है। बड़े ऊँचे पद पर है, हज़ारो रुपये पाता है। अब उसके ठाट का क्या पूछना। मेम भी साथ आई है या नहीं ?

मगर जब आकर देखा, तो आफत का मारा आदमी, फटे हालों, कपड़े तार तार, बाल बढे हुए, जैसे जेल से आया हो।

प्रश्नो की बौछार होने लगी—हमने तो सुना था, तुम किसी बड़े ऊँचे पद पर हो ?

मनहर ने जैसे किसी भूली बात को याद करने का विफल-प्रयास करके कहा—मैं! मैं तो किसी ओहदे पर नहीं हूँ।

'वाह! तुम विलायत से मेम नहीं लाये थे ?'

मनहर ने चकित होकर कहा—विलायत! विलायत कौन गया था ?

'अरे! भंग तो नहीं खा गये हो! तुम विलायत नहीं गये थे ?'

मनहर मूढों की भाँति हँसा—मैं विलायत क्या करने जाता ?

अजी, तुमको वज़ीफा नहीं मिला था ? यहाँ से तुम विलायत गये। तुम्हारे पत्र बराबर आते थे। अब तुम कहते हो, मैं विलायत गया ही नहीं। होश मे हो, या हम लोगों को उल्लू बना रहे हो ?'

मनहर ने उन लोगों की ओर आँखें फाड़कर देखा और बोला—मैं तो कहीं नहीं गया। आप लोग जाने क्या कह रहे हैं।

अब इसमें सन्देह की गुंजाइश न रही कि वह अपने होश-हवास में नहीं है। उसे विलायत जाने के पहले की सारी बातें याद थीं। गाँव और घर के हरेक आदमी को पहचानता था, सबसे नम्रता और प्रेम से बातें करता था, लेकिन जब इंगलैण्ड, अंगरेज़ बीबी और ऊँचे पद का ज़िक्र आता तो भौचक्का होकर ताकने लगता। वागी-

श्वरी को अब उसके प्रेम मे एक अस्वाभाविक अनुराग दीखता था, जो बनावटी मालूम होता था। वह चाहती थी कि उसके व्यवहार और आचरण मे पहले की-सी बेतकल्लुफी हो। वह प्रेम का स्वाँग नहीं, प्रेम चाहती थी। दस ही पाँच दिनों मे उसे ज्ञात हो गया कि इस विशेष अनुराग का कारण बनावट या दिखावा नहीं, वरन् कोई मानसिक विकार है। मनहर ने माँ-बाप का इतना अदब पहले कभी न किया था। उसे अब मोटे-से-मोटा काम करने मे भी सकोच न था। वह जो बाज़ार से साग-भाजी लाने मे अपना अनादर समझता, अब कुएँ से पानी खींचता, लकड़ियाँ फाड़ता और घर में झाड़ू लगाता था, और अपने घर मे ही नहीं, सारे महल्ले मे उसकी सेवा और नम्रता की चर्चा होती थी।

एक बार महल्ले में चोरी हुई। पुलिस ने बहुत दौड़-धूप की, पर चोरों का पता न चला। मनहर ने चोरी का पता ही नहीं लगा दिया, बल्कि माल भी बरामद करा लिया। इससे आस-पास के गाँवों और महल्लों में उसका यश फैल गया। कोई चोरी हो जाती, तो लोग उसके पास दौड़े आते और अधिकांश उसके उद्योग सफल होते थे। इस तरह उसकी जीविका की एक व्यवस्था हो गई। वह अब वागीश्वरी के इशारों का गुलाम था। उसी की दिलजोई और सेवा मे उसके दिन कटते थे, अगर उसमे विकार या बीमारी का कोई लक्षण था, तो इतना ही। यही सनक उसे सवार हो गई थी।

वागीश्वरी को उसकी दशा पर दुःख होता था, पर उसकी यह बीमारी उस स्वास्थ्य से उसे कहीं प्रिय थी, जब वह उसकी बात भी न पूछता था।

(८)

छ महीनों के बाद एक दिन जेनी मनहर का पता लगाती हुई आ पहुँची। हाथ में जो कुछ था, वह सब उड़ा चुकने के बाद अब उसे किसी आश्रय की खोज थी। उसके चाहनेवालों मे कोई ऐसा न था, जो उसकी आर्थिक सहायता करता। शायद अब जेनी को कुछ ग्लानि भी आती थी। वह अपने किये पर लज्जित थी।

द्वार पर हार्न की आवाज़ सुनकर मनहर बाहर निकला और इस प्रकार जेनी को देखने लगा, मानो उसे कभी देखा नहीं है।

जेनी ने मोटर से उतरकर उससे हाथ मिलाया और अपनी बीती सुनाने लगी—तुम इस तरह मुझसे छिपकर क्यों चले आये ? और फिर आकर एक-पत्र भी नहीं लिखा।

आखिर मैंने तुम्हारे साथ क्या बुराई की थी ? फिर मुझमे कोई बुराई देखी थी, तो तुम्हें चाहिए था, मुझे सावधान कर देते । छिपकर चले आने से क्या फायदा हुआ ? ऐसी अच्छी जगह मिल गई थी, वह भी हाथ से निकल गई।

मनहर काठ के उल्लू की भांति खड़ा रहा ।

जेनी ने फिर कहा—तुम्हारे चले आने के बाद मेरे ऊपर जो सकट आये, वह सुनाऊँ तो तुम घबड़ा जाओगे । मैं इसी चिता और दु ख से बीमार हो गई । तुम्हारे बग़ैर मेरा जीवन निरर्थक हो गया है । तुम्हारा चित्र देखकर मन को ढाढस देती थी । तुम्हारे पत्रों को आदि से अन्त तक पढना मेरे लिए सबसे मनोरजक विषय था। तुम मेरे साथ चलो । मैंने एक डाक्टर से बातचीत की है। वह मस्तिष्क के विकारों का डाक्टर है । मुझे आशा है, उसके उपचार से तुम्हे लाभ होगा ।

मनहर चुपचाप विरक्तभाव से खड़ा रहा, मानो वह न कुछ देख रहा है, न सुन रहा है ।

सहसा वागीश्वरी निकल आई । जेनी को देखते ही वह ताड़ गई कि यही मेरी यूरोपियन सौत है । वह उसे बडे आदर-सत्कार के साथ भीतर ले गई । मनहर भी उनके पीछे-पीछे चला गया ।

जेनी ने टूटी खाट पर बैठते हुए कहा—इन्होंने मेरा जिक्र तो तुमसे किया ही होगा । मेरी इनसे लदन मे शादी हुई है ।

वागीश्वरी बोली—यह तो मैं आपको देखते ही समझ गई थी ।

जेनी— इन्होंने कभी मेरा जिक्र नहीं किया ?

वागीश्वरी—कभी नहीं । इन्हें तो कुछ याद ही नहीं । आपको तो यहाँ आने मे बड़ा कष्ट हुआ होगा ?

जेनी—महीनों के बाद तब इनके घर का पता चला । वहाँ से बिना कुछ कहे-सुने चल दिये ।

'आपको कुछ मालूम है, इन्हें क्या शिकायत है ?'

'शराब बहुत पीने लगे थे । आपने किसी डाक्टर को नहीं दिखाया ?'

'हमने तो किसी को नहीं दिखाया ।'

जेनी ने तिरस्कार करके कहा—क्यों ? क्या आप इन्हे हमेशा बीमार रखना चाहती हैं ?

वागीश्वरी ने बेपरवाई से जवाब दिया— मेरे लिए तो इनका बीमार रहना इनके स्वस्थ रहने से कहीं अच्छा है। तब वह अपनी आत्मा को भूल गये थे, अब उसे पा गये।

फिर उसने निर्दय कटाक्ष करके कहा— मेरे विचार मे तो वह तब बीमार थे, अब स्वस्थ हैं।

जेनी ने चिढकर कहा—नानसेंस ! इनकी किसी विशेषज्ञ से चिकित्सा करानी होगी। यह जासूसी में बड़े कुशल हैं। इनके सभी अफसर इनसे प्रसन्न थे। वह चाहे तो अब भी इन्हे वह जगह मिल सकती है। अपने विभाग में ऊँचे-से-ऊँचे पद तक पहुँच सकते हैं। मुझे विश्वास है कि इनका रोग असाध्य नहीं है, हाँ, विचित्र अवश्य है। आप क्या इनकी बहन हैं ?

वागीश्वरी ने मुस्किराकर कहा—आप तो गाली दे रही हैं। वह मेरे स्वामी हैं।

जेनी पर मानो वज्रपात-सा हुआ। उसके मुख पर से नम्रता का आवरण हट गया और मन मे छिपा हुआ क्रोध जैसे दाँत पीसने लगा। उसकी गरदन की नसें तन गई, दोनो मुट्ठियाँ बँध गईं। उन्मत्त होकर बोली—बड़ा दगाबाज़ आदमी है। इसने मुझे बड़ा धोखा दिया। मुझसे इसने कहा था, मेरी स्त्री मर गई है। कितना बड़ा धूर्त है! यह पागल नहीं है। इसने पागलपन का स्वाँग भरा है। मैं अदालत से इसकी सजा कराऊँगी।

क्रोधावेश के कारण वह काँप उठी। फिर रोती हुई बोली—इस दगाबाज़ी का मैं इसे मज़ा चखाऊँगी। ओह ! इसने मेरा कितना घोर अपमान किया है ! ऐसा विश्वासघात करनेवाले को जो दण्ड दिया जाय, वह थोड़ा है। इसने कैसी मीठी-मीठी बातें करके मुझे फाँसा। मैंने ही इसे जगह दिलाई। मेरे ही प्रयत्नो से यह बड़ा आदमी बना। इसके लिए मैंने अपना घर छोड़ा, अपना देश छोड़ा, और इसने मेरे साथ ऐसा कपट किया।

जेनी सिर पर हाथ रखकर बैठ गई। फिर तैश मे उठी और मनहर के पास जाकर उसको अपनी ओर खींचती हुई बोली—मैं तुझे खराब करके छोडूँगी। तूने मुझे समझा क्या है ·······

मनहर इस तरह शान्त भाव से खड़ा रहा, मानो उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

फिर वह सिंहिनी की भाँति मनहर पर टूट पड़ी और उसे ज़मीन पर गिराकर

उसकी छाती पर चढ बैठी। वागीश्वरी ने उसका हाथ पकड़कर अलग कर दिया और बोली—तुम ऐसी डायन न होतीं, तो उनकी यह दशा ही क्यों होती ?

जेनी ने तैश में आकर जेब से पिस्तौल निकाली और वागीश्वरी की तरफ बढी। सहसा मनहर तड़पकर उठा, उसके हाथ से भरा हुआ पिस्तौल छीनकर फेंक दिया और वागीश्वरी के सामने खड़ा हो गया। फिर ऐसा मुँह बना लिया, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

उसी वक्त मनहर की माता दोपहरी की नींद सोकर उठी और जेनी को देखकर वागीश्वरी की ओर प्रश्न की आँखों से ताका।

वागीश्वरी ने उपहास के भाव से कहा—यह आपकी बहू हैं।

बुढिया तिनककर बोली—कैसी मेरी बहू! यह मेरी बहू बनने जोग है बँदरिया ? लड़के पर न-जाने क्या कर-करा दिया, अब छाती पर मूँग दलने आई है ?

जेनी एक क्षण तक खून-भरी आँखों से मनहर की ओर देखती रही। फिर बिजली की भाँति कौंदकर उसने आँगन में पड़ी हुई पिस्तौल उठा ली और वागीश्वरी पर छोड़ना चाहती थी कि मनहर सामने आ गया। वह बेधड़क जेनी के सामने चला गया, उसके हाथ से पिस्तौल छीन ली और अपनी छाती मे गोली मार ली।

न्याय

हजरत मुहम्मद को इल्हाम हुए थोड़े ही दिन हुए थे। दस-पाँच पड़ोसियों तथा निकट-सम्बन्धियों के सिवा और कोई उनके दीन पर ईमान न लाया था, यहाँ तक कि उनकी लड़की ज़ैनब और दामाद अबुलआस भी, जिनका विवाह इलहाम से पहले ही हो चुका था, अभी तक दीक्षित न हुए थे। ज़ैनब कई बार अपने मैके गई थी और अपने पूज्य पिता की ज्ञानमय वाणी सुन चुकी थी। वह दिल से इसलाम पर ईमान ला चुकी थी; लेकिन अबुलआस धार्मिक मनोवृत्ति का आदमी न था। वह कुशल व्यापारी था। मक्के के खजूर, मेवे आदि जिनसें लेकर बन्दरगाहों को चालान किया करता था। बहुत ही ईमानदार, लेन देन का खरा, मेहनती आदमी था, जिसे इहलोक से इतनी फुरसत न थी कि परलोक की फिक्र करे।

ज़ैनब के सामने कठिन समस्या थी। आत्मा धर्म की ओर थी, हृदय पति की ओर। न धर्म को छोड़ सकती थी, न पति को। उसके घर के सभी आदमी मूर्ति-पूजक थे। इस नये सम्प्रदाय से सारे नगर में हलचल मची हुई थी। ज़ैनब सबसे अपनी लगन को छिपाती, यहाँ तक कि पति से भी न कह सकती। वे धार्मिक सहिष्णुता के दिन न थे, बात-बात पर खून की नदी बह जाती थी, खानदान-के-खानदान मिट जाते थे। उन दिनों अरब की वीरता पारस्परिक कलहों में प्रकट होती थी। राजनीतिक सगठन का जमाना न था। खून का बदला ख़ून, धन-हानि का बदला ख़ून, अपमान का बदला ख़ून — मानव-रक्त ही से सभी झगड़ों का निबटारा होता था। ऐसी अवस्था में अपने धर्मानुराग को प्रकट करना अबुलआस के शक्तिशाली परिवार और मुहम्मद और इनके इने-गिने अनुयायियों में देवासुर संग्राम छेड़ना था। उधर प्रेम का बन्धन पैरों को जकड़े हुए था। नये धर्म में दीक्षित होना अपने प्राण-प्रिय पति से सदा के लिए बिछुड़ जाना था। कुरैश-जाति के लोग ऐसे मिश्रित विवाहों को परिवार के लिए कलंक समझते थे। माया और धर्म की दुविधा में पड़ी हुई ज़ैनब कुढ़ती रहती थी।

(२)

धर्म का अनुराग एक दुर्बल वस्तु है , किन्तु जब उसका वेग होता है, तो हृदय के रोके नहीं रुकता। दोपहर का समय था, धूप इतनी तेज थी कि उसकी ओर ताकते आँखो से चिनगारियाँ निकलती थीं। हज़रत मुहम्मद चिन्ता मे डूबे हुए बैठे थे। निराशा चारों ओर अन्धकार के रूप मे दिखाई देती थी। खुदैजा भी सिर झुकाये पास ही बैठी हुई एक फटा कुरता सी रही थी। धन-सम्पत्ति सब कुछ इस लगन की भेंट हो चुकी थी। शत्रुओं का दुराग्रह दिनों-दिन बढ़ता जाता था। उनके मतानुयायियों को भाँति-भाँति की यन्त्रणाएँ दी जा रही थीं। स्वय हजरत को घर से निकलना मुश्किल था। यह खौफ होता था कि कहीं लोग उन पर ईंट-पत्थर न फेंकने लगें। खबर आती थी, आज फलाँ 'मुसलिम' का घर लुट गया, आज फलाँ को लोगों ने आहत किया। हज़रत ये खबरें सुन-सुनकर विकल हो जाते थे और बार-बार खुदा से धैर्य और क्षमा की याचना करते थे।

हज़रत ने फरमाया—मुझे ये लोग अब यहाँ न रहने देंगे। मैं खुद सब कुछ झेल सकता हूँ, लेकिन अपने दोस्तों की तकलीफें नहीं देखी जातीं।

खुदैजा हमारे चले जाने से इन बेचारों को और भी कोई शरण न रहेगी। अभी कम-से कम तुम्हारे पास आकर रो तो लेते है। मुसीबत मे रोने का सहारा ही बहुत होता है।

हज़रत—तो मै अकेले थोड़ा ही जाना चाहता हूँ। मै सब दोस्तों को साथ लेकर जाने का इरादा रखता हूँ। अभी हम लोग यहाँ बिखरे हुए है, कोई किसी की मदद को नहीं पहुच सकता। हम सब एक ही जगह, एक कुटुम्ब की तरह रहेंगे, तो किसी को हमारे ऊपर हमला करने का साहस न होगा। हम अपनी मिली हुई शक्ति से बालू का ढेर तो हो ही सकते हैं, जिस पर चढ़ने की किसी को हिम्मत न होगी।

सहसा जैनब घर मे दाखिल हुई। उसके साथ न कोई आदमी था, न आदमज़ाद। मालूम होता था, कहीं से भागी चली आ रही है। खुदैजा ने उसे गले लगाकर पूछा— क्या हुआ जैनब, खैरियत तो है?

ज़ैनब ने अपने अन्तर-संग्राम की कथा कह सुनाई, और पिता से दीक्षा की याचना की।

हज़रत मुहम्मद आंखो में आँसू भरकर बोले—बेटी, मेरे लिए इससे ज्याद

खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती, लेकिन जानता हूँ, तुम्हारा क्या हाल होगा।

जैनब – या हजरत! खुदा की राह में सब कुछ त्याग देने का निश्चय कर लिया है। दुनिया के लिए अपनी नजात को नहीं खोना चाहती।

हजरत—ज़ैनब, खुदा की राह मे काँटे हैं।

जैनब—अब्बाजान, लगन को काँटो की परवा नहीं होती।

हजरत - ससुराल से नाता टूट जायगा।

ज़ैनब—ख़ुदा से तो नाता जुड़ जायगा?

हज़रत—और अबुलआस?

ज़ैनब की आँखों में आँसू डबडबा आये। क्षीण स्वर में बोली—अब्बाजान, उन्होंने इतने दिनों मुझे बाँध रखा था, नहीं तो मैं कबकी आपकी शरण आ चुकी होती। मैं जानती हूँ, उनसे जुदा होकर मैं ज़िन्दा न रहूँगी, और शायद उनसे भी मेरा वियोग न सहा जाय; पर मुझे विश्वास है कि वह किसी-न-किसी दिन ज़रूर ख़ुदा पर ईमान लायेंगे और फिर मुझे उनकी सेवा का अवसर मिलेगा।

हजरत—बेटी, अबुलआस ईमानदार है, दयाशील है, सद्वक्ता है, किन्तु उसका अहकार शायद अन्त तक उसे ईश्वर से विमुख रखे। वह तकदीर को नहीं मानता, रूह को नहीं मानता, स्वर्ग और नरक को नहीं मानता। कहता है, खुदा की ज़रूरत ही क्या है, हम उससे क्यों डरें, विवेक और बुद्धि की हिदायत हमारे लिए काफी है। ऐसा आदमी खुदा पर ईमान नहीं ला सकता। कुफ्र को तोड़ना आसान है; लेकिन वह जब दर्शन की सूरत पकड़ लेता है, तो उस पर किसी का ज़ोर नहीं चलता।

ज़ैनब ने दृढ होकर कहा—या हज़रत, आत्मा का उपकार जिसमें हो, मुझे वही चाहिए। मैं किसी इन्सान को अपने और ख़ुदा के बीच मे न आने दूँगी।

हज़रत ने कहा—ख़ुदा तुझ पर दया करे बेटी, तेरी बातों ने दिल ख़ुश कर दिया।

यह कहकर उन्होंने जैनब को गले लगा लिया।

(३)

दूसरे दिन जैनब को यथाविधि आम मसजिद मे कलमा पढाया गया।

कुरेशियों ने जब यह खबर पाई, तो जल उठे। ग़ज़ब ख़ुदा का! इस्लाम ने तो बड़े-बड़े घरों पर भी हाथ साफ करना शुरू किया! अगर यही हाल रहा, तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति इतनी बढ जायगी कि हमारे लिए उसका सामना करना कठिन हो जायगा। अबुलआस के घर पर एक बड़ी मजलिस हुई।

अबूसिफियान ने, जो इस्लाम के दुश्मनों मे सबसे प्रतिष्ठित मनुष्य था, अबुल-आस से कहा—तुम्हे अपनी बीबी को तलाक देना पड़ेगा।

अबुलआस ने कहा—हरगिज नहीं।

अबूसिफियान—तो क्या तुम भी मुसलमान हो जाओगे?

अबुलआस - हरग़िज़ नही।

अबूसिफियान—तो उसे मुहम्मद ही के घर रहना पड़ेगा।

अबुलआस—हरगिज नहीं। आप लोग मुझे आज्ञा दीजिए कि उसे अपने घर लाऊँ।

अबूसिफियान – हरगिज़ नहीं।

अबुलआस—क्या यह नहीं हो सकता कि वह मेरे घर मे रहकर अपने इच्छा-नुसार ख़ुदा की बन्दगी करे?

अबूसिफियान—हरगिज़ नहीं।

अबुलआस—मेरी क़ौम मेरे साथ इतनी सहानुभूति भी न करेगी?

अबुसिफियान—हरगिज नहीं।

अबुलआस—तो फिर आप लोग मुझे समाज से पतित कर दीजिए। मुझे पतित होना मंजूर है। आप लोग और जो सज़ा चाहें दें, वह सब मंजूर है, मगर मैं अपनी बीबी को नहीं छोड़ सकता। मैं किसी की धार्मिक स्वाधीनता का अपहरण नहीं करना चाहता, और वह भी अपनी बीबी की।

अ० सि०—कुरैश मे क्या और लड़कियाँ नहीं हैं?

अ० आ०—जैनब की-सी कोई नहीं।

अ० सि०—हम ऐसी लड़कियाँ बता सकते हैं, जो चांद को लज्जित कर दें।

अ० आ०—मैं सौंदर्य का उपासक नहीं।

अ० सि०—ऐसी लड़कियाँ दे सकता हूँ, जो गृह-प्रबन्ध में निपुण हों, बातें ऐसी

करें कि मुँह से फूल झड़ें, खाना ऐसा पकायें कि बीमार को भी रुचि हो, सीने-पिरोने मे इतनी कुशल कि पुराने कपडे को नया कर दें।

अ० आ०—मैं इन गुणो मे से किसी का भी उपासक नहीं। मैं प्रेम—और केवल प्रेम—का उपासक हूँ। और मुझे विश्वास है कि ज़ैनब का-सा प्रेम मुझे सारी दुनिया मे कहीं नहीं मिल सकता।

अ० सि०—प्रेम होता, तो तुम्हे छोड़कर यह बेवफाई करती!

अ० आ०—मैं नहीं चाहता कि मेरे लिए वह अपने आत्म-स्वातन्त्र्य का त्याग करे।

अ० सि०—इसका आशय यह कि तुम समाज में समाज के विरोधी बनकर रहना चाहते हो। आँखों की कसम! समाज तुम्हें अपने ऊपर यह अत्याचार न करने देगा। मैं कहे देता हूँ, इसके लिए तुम रोओगे।

(४)

अबूसिफियान और उनकी टोली के लोग तो धमकियाँ देकर उधर गये, इधर अबुलआस ने लकड़ी सँभाली और हज़रत मुहम्मद के घर जा पहुँचे। शाम हो गई थी। हज़रत दरवाज़े पर अपने मुरीदो के साथ मग़रिब की नमाज पढ रहे थे। अबुलआस ने उन्हे सलाम किया और जब तक नमाज होती रही, ग़ौर से देखते रहे। जमाअत का एक साथ उठना, बैठना और झुकना देखकर उनके मनमें श्रद्धा की तरगें उठने लगीं। उन्हें मालूम न होता था कि मैं क्या कर रहा हूँ, पर अज्ञात भाव से वह जमाअत के साथ बैठते, झुकते और खड़े हो जाते थे। वहाँ एक-एक परमाणु इस समय ईश्वरमय हो रहा था। एक क्षण के लिए अबुलआस भी उसी अन्तर-प्रवाह मे बह गये।

जब नमाज़ खतम हुई और लोग सिधारे, तो अबुलआस ने हजरत के पास जाकर सलाम किया और कहा—मैं ज़ैनब को विदा कराने आया हूँ।

हज़रत ने विस्मित होकर पूछा—तुम्हे मालूम नहीं कि वह खुदा और उसके रसूल पर ईमान ला चुकी है?

अ० आ०—जी हाँ, मालूम है।

हजरत—इस्लाम ऐसे सम्बन्धों का निषेध करता है, यह भी तुम्हे मालूम है?

अ० आ०—क्या इसका मतलब यह है कि ज़ैनब ने मुझे तलाक दे दिया?

हज़रत—अगर यही मतलब हो, तो !

अ० आ०—तो कुछ नहीं। जैनब को अपने ख़ुदा और रसूल की बदगी मुबारक हो। मैं एक बार उससे मिलकर घर चला जाऊँगा, और फिर कभी आपको अपनी सूरत न दिखाऊँगा, लेकिन उस दशा मे अगर कुरैश-जाति आपसे लड़ने को तैयार हो जाय, तो उसका इलज़ाम मुझ पर न होगा।

हज़रत—मैं कुरैश से इस वक्त नहीं लड़ना चाहता।

अ० आ०—तो ज़ैनब को मेरे साथ जाने दीजिए। उस हालत मे कुरैश के क्रोध का भाजन मैं होऊँगा। आप और आपके मुरीदों पर कोई आफत न होगी।

हज़रत—तुम दवाव मे आकर जैनव को खुदा की तरफ से फेरने का यत्न तो न करोगे ?

अ० आ०—मैं किसी के धर्म में बाधा डालना सर्वथा अमानुषीय समझता हूँ।

हज़रत—तुम्हे लोग ज़ैनव को तलाक देने पर तो मज़बूर न करेंगे ?

अ० आ०—मैं जैनब को तलाक़ देने के पहले ज़िन्दगी को तलाक दे दूँगा।

हजरत को अवुलआस की बातो से इतमीनान हो गया। वह आस की इज्ज़त करते थे। आस को हरम मे ज़ैनब से मिलने का मौका दिया।

आस ने पूछा—ज़ैनब, मैं तुम्हे अपने साथ ले चलने आया हूँ, धर्म के बदलने से कहीं मन तो नहीं बदल गया ?

जैनब रोती हुई उनके पैरो पर गिर पड़ी और बोली—या मेरे आका! धर्म बार-बार मिलता है, हृदय केवल एक बार। मैं आपकी हूँ, चाहे यहाँ रहूँ चाहे वहाँ, समाज मुझे आपकी सेवा में रहने देगा ?

आस—यदि समाज न रहने देगा, तो मैं समाज ही से निकल जाऊँगा। दुनिया मे आराम से जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत-से स्थान हैं। रहा मैं, तुम जानती हो, मै धार्मिक स्वाधीनता का पक्षपाती हूँ, मैं तुम्हारे धार्मिक विषयो मे कभी हस्त-क्षेप न करूँगा!

जैनब चली, तो खुदैजा ने रोते हुए उसे यमन के लालो का एक बहुमूल्य हार विदाई में दिया।

(५)

इस्लाम पर विधर्मियों के अत्याचार दिनों-दिन बढ़ने लगे। अवहेलना की दशा

से निकलकर उसने भय के क्षेत्र में प्रवेश किया। शत्रुओं ने उसे समूल नष्ट करने की आयोजना करनी शुरू की। दूर-दूर के कबीलों से मदद माँगी जाने लगी। इस्लाम में इतनी शक्ति न थी कि शस्त्र-बल से विरोधियों को दबा सके। हज़रत मुहम्मद ने मक्का छोड़कर कहीं और चले जाने का निश्चय किया। मक्के मे मुस्लिमों के घर सारे शहर में बिखरे हुए थे। एक की मदद को दूसरे मुसलमान न पहुँच सकते थे। 'हजरत मुहम्मद किसी ऐसी जगह आबाद होना चाहते थे, जहाँ सब मिले हुए रहें, और शत्रुओं की सघटित शक्ति का प्रतीकार कर सकें। अत में उन्होंने मदीने को पसद किया और अपने समस्त अनुयायियों को सूचना दे दी। भक्तजन उनके साथ हुए और एक दिन मुस्लिमों ने मक्के से मदीने को प्रस्थान कर दिया। यही हिजरत थी।

मदीने मे पहुँचकर मुसलमानों में एक नयी शक्ति, नयी स्फूर्ति का उदय हुआ। वे निश्शक होकर अपने धर्म का पालन करने लगे। अब पड़ोसियों से दबने और छिपने की ज़रूरत न थी।

आत्मविश्वास बढा। इधर भी विधर्मियों का स्वागत करने की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्ष सेना इकट्ठी करने लगे। विधर्मियों ने सकल्प किया कि संसार से इस्लाम का नाम ही मिटा देंगे। इस्लाम ने भी उनके दाँत खट्टे करने का निश्चय किया।

एक दिन अबुलआस ने आकर पत्नी से कहा—ज़ैनब, हमारे नेताओं ने इस्लाम पर ज़िहाद करने की घोषणा कर दी है।

ज़ैनब ने घबड़ाकर कहा—अब तो वे लोग यहाँ से चले गये। फिर इस ज़िहाद की क्या जरूरत?

अबुलआस—मक्के से चले गये, अरब से तो नहीं चले गये। उन लोगों की ज़्यादतियाँ बढती जा रही हैं। जिहाद के सिवा और कोई उपाय नहीं है। जिहाद में मेरा शरीक होना ज़रूरी है।

ज़ैनब—अगर तुम्हारा दिल तुम्हे मजबूर करता है, तो शौक से जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

आस—मेरे साथ?

ज़ैनब—हाँ, वहाँ आहत मुसलमानों की सेवा-शुश्रूपा करूँगी।

आस—शौक से चलो।

(६)

घोर सग्राम हुआ। दोनों दलवालों ने खूब दिल के अरमान निकाले। भाई भाई से, बाप बेटे से लड़ा। सिद्ध हो गया, मज़हब का बन्धन रक्त और वीर्य के बन्धन से सुदृढ है!

दोनों दलवाले वीर थे! अन्तर यह था कि मुसलमानों में नया धर्मानुराग था, मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की आशा थी। दिलों मे वह अटल विश्वास था, जो नवजात सप्रदायों का लक्षण है। विधर्मियो में 'बलिदान' का यह भाव लुप्त था।

कई दिन तक लड़ाई होती रही। मुसलमानों की सख्या बहुत कम थी; पर अन्त मे उनके धर्मोत्साह ने मैदान मार लिया। विधर्मियों मे कितने ही मारे गये, कितने ही घायल हुए, और कितने ही .कैद कर लिये गये। अबुलआस भी इन्हीं .कैदियों मे थे।

जैनब ने ज्योंही सुना कि अबुलआस पकड़ लिये गये, उसने तुरन्त हज़रत मुहम्मद की सेवा मे मुक्ति-धन भेजा। यह वही बहुमूल्य हार था, जो .खुदैजा ने उसे दिया था। जैनब अपने पूज्य पिता को उस धर्म-सकट मे एक क्षण के लिए भी न डालना चाहती थी, जो मुक्ति-धन के अभाव की दशा में उन पर पड़ता, किन्तु अबुलआस को इच्छा होते हुए भी पक्षपात-भय से न छोड सके।

सब कैदी हज़रत के सामने पेश किये गये। कितने ही तो ईमान लाये, कितनों के घरों से मुक्ति-धन आ चुका था, वे मुक्त कर दिये गये। हजरत ने अबुलआस को देखा, सबसे अलग सिर झुकाये खडे हैं। मुख पर लज्जा का भाव झलक रहा है।

हज़रत ने कहा—अबुलआस, खुदा ने इस्लाम की हिमायत की, वरना उसे यह विजय न प्राप्त होती।

अबुलआस—अगर आपके कथनानुसार ससार मे एक खुदा है, तो वह अपने एक बन्दे को दूसरे का गला काटने में मदद नहीं दे सकता। मुसलमानों की विजय उनके रणोत्साह से हुई।

एक सहाबी ने पूछा—तुम्हारा फिदिया (मुक्ति-धन) कहाँ है?

हजरत ने फरमाया—अबुलआस का हार निहायत बेशकीमत है, इनके बारे में आप क्या फैसला करते हैं? आपको मालूम है, यह मेरे दामाद है।

अबूबकर—आज तुम्हारे घर में ज़ैनब हैं, जिन पर ऐसे सैकड़ों हार कुर्बा किये जा सकते हैं।

अबुलआस—तो आपका मतलब क्या है कि ज़ैनब मेरा फ़िदिया हो ?

ज़ैद—बेशक हमारा यही मतलब है।

अबुलआस—उससे तो कहीं बेहतर था कि आप मुझे कत्ल कर देते।

अबूबकर—हम रसूल के दामाद को कत्ल नहीं करेंगे, चाहे वह विधर्मी ही क्यों न हो। तुम्हारी यहाँ उतनी खातिर होगी, जितनी हम कर सकते हैं।

अबुलआस के सामने विषम समस्या थी। इधर यहाँ की मेहमानी मे अपमान था, उधर ज़ैनब के वियोग की दारुण वेदना थी। उन्होंने निश्चय किया, यह वेदना सहूँगा, अपमान न सहूँगा। प्रेम आत्मा के गौरव पर बलिदान कर दूँगा। बोले—मुझे आपका फैसला मंजूर है। ज़ैनब मेरी फ़िदिया होगी।

(७)

मदीने में रसूल की बेटी को जितनी इज्ज़त होनी चाहिए, उतनी होती थी। सुख था, ऐश्वर्य था, धर्म था ; पर प्रेम न था। अबुलआस के वियोग में रोया करती।

तीन वर्ष तीन युगों की भाँति बीते। अबुलआस के दर्शन न हुए।

उधर अबुलआस पर उसकी बिरादरी का दबाव पड़ रहा था कि विवाह कर लो, पर ज़ैनब की मधुर स्मृतियाँ ही उसके प्रणय-वञ्चित हृदय को तसक़ीन देने को काफी थीं। वह उत्तरोत्तर उत्साह के साथ अपने व्यवसाय में तल्लीन हो गया। महीनों घर न आता। धनोपार्जन ही अब उसके जीवन का मुख्य आधार था। लोगो को आश्चर्य होता था कि अब यह धन के पीछे क्यों प्राण दे रहा है। निराशा और चिंता बहुधा शराब के नशे से शात होती है; प्रेम उन्माद से। अबुलआस को धनोन्माद हो गया था। धन के आवरण मे ढका हुआ यह प्रेम-नैराश्य था। माया के परदे में छिपा हुआ प्रेम-वैराग्य।

एक बार वह मक्के से माल लादकर ईराक़ की तरफ चला। काफिले मे और भी कितने ही सौदागर थे। रक्षकों का एक दल भी साथ था। मुसलमानो के कई क़ाफिले विधर्मियों के हाथों लुट चुके थे। उन्हे ज्योंही इस काफिले की खबर मिली, ज़ैद ने कुछ चुने हुए आदमियों के साथ उन पर धावा कर दिया। काफिले के रक्षक लड़े और मारे गये। काफिलेवाले भाग निकले। अतुल धन मुसलमानों के हाथ लग अबुलआस फिर क़ैद हो गये।

दूसरे दिन हज़रत मुहम्मद के सामने अबुलआस की पेशी हुई। हज़रत ने एक बार उसकी तरफ करुण-दृष्टि डाली, और सिर झुका लिया। सहाबियों ने कहा—या हज़रत, अबुलआस के बारे में आप क्या फैसला करते हैं?

मुहम्मद—इसके बारे में फैसला करना तुम्हारा काम है। यह मेरा दामाद है, सम्भव है, मैं पक्षपात का दोषी हो जाऊँ।

यह कहकर वह मकान में चले गये। जैनब रोकर पैरों पर गिर पड़ी, और बोली—अब्बाजान, आपने औरों को तो आज़ाद कर दिया। अबुलआस क्या उन सबसे गया-बीता है?

हजरत—नहीं जैनब, न्याय के पद पर बैठनेवाले आदमी को पक्षपात और द्वेष से मुक्त होना चाहिए। यद्यपि यह नीति मैंने ही बनाई है, तो भी अब उसका स्वामी नहीं, दास हूँ। मुझे अबुलआस से प्रेम है। मैं न्याय को प्रेम-कलंकित नहीं कर सकता।

सहाबी हज़रत की इस नीति-भक्ति पर मुग्ध हो गये। अबुलआस को सब माल-असबाब के साथ मुक्त कर दिया।

अबुलआस पर हज़रत की न्याय-परायणता का गहरा असर पड़ा। मक्के आकर उन्होंने अपना हिसाब-किताब साफ किया, लोगों का माल लौटाया, क़र्ज अदा किया और घर-बार त्यागकर हज़रत मुहम्मद की सेवा में पहुँच गये। जैनब की मुराद पूरी हुई।

———

कुत्सा

अपने घर में आदमी बादशाह को भी गाली देता है। एक दिन मैं अपने दो-तीन मित्रों के साथ बैठा हुआ एक राष्ट्रीय संस्था के व्यक्तियों की आलोचना कर रहा था। हमारे विचार में राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को स्वार्थ और लोभ से ऊपर रहना चाहिए। ऊँचा और पवित्र आदर्श सामने रखकर ही राष्ट्र की सच्ची सेवा की जा सकती है। कई व्यक्तियों के आचरण ने हमे क्षुब्ध कर दिया था और हम इस समय बैठे अपने दिल का ग़ुबार निकाल रहे थे। सम्भव था, उस परिस्थिति में पड़कर हम और भी गिर जाते, लेकिन उस वक्त तो हम विचारक के स्थान पर बैठे हुए थे और विचारक उदार बनने लगे, तो न्याय कौन करे? विचारक को यह भूल जाने मे विलम्ब नही होता कि उसमे भी कमजोरियाँ हैं और उसमें और अभियुक्त में केवल इतना ही अन्तर है कि या तो विचारक महाशय उस परिस्थिति में पड़े ही नहीं, या पड़कर भी अपनी चतुराई से बेदाग़ निकल गये।

पद्मा देवी ने कहा—महाशय 'क' काम तो बड़े उत्साह से करते हैं, लेकिन अगर हिसाब देखा जाय, तो उनके ज़िम्मे एक हज़ार से कम न निकलेगा।

उर्मिला देवी बोलीं—ख़ैर 'क' को तो क्षमा किया जा सकता है। उसके बाल-बच्चे हैं, आखिर उनका पालन-पोषण कैसे करे? जब वह चौबीसों घण्टे सेवा-कार्य ही में लगा रहता है, तो उसे कुछ-न-कुछ तो मिलना ही चाहिए। उस योग्यता का आदमी ५००) वेतन पर भी न मिलता; अगर इस साल-भर में उसने एक हजार खर्च कर डाला, तो बहुत नहीं है। महाशय 'ख' तो बिलकुल निहंग हैं। 'जोरु न जाँता, अल्लाह मियाँ से नाता'; पर उनके ज़िम्मे भी एक हज़ार से कम न होंगे। किसीको क्या अधिकार है कि वह ग़रीबों का धन मोटर की सवारी और यार-दोस्तों की दावत में उड़ा दे।

श्यामा देवी उद्दण्ड होकर बोलीं—महाशय 'ग' को इसका जवाब देना पड़ेगा भाई

साहब ! यों बचकर नहीं निकल सकते । हम लोग भिक्षा माँग-माँगकर पैसे लाते हैं, इसी लिए कि यार-दोस्तों की दावतें हों, शराबें उड़ाई जायँ और मुजरे देखे जायँ ? रोज़ सिनेमा की सैर होती है। ग़रीबों का धन यों उड़ाने के लिए नहीं है। यहाँ पाई-पाई का लेखा समझाना पड़ेगा। मैं भरी सभा मे रगेदूँगी। उन्हे जहाँ पाँच सौ वेतन मिलता हो, वहाँ चले जायँ। राष्ट्र के सेवक बहुतेरे निकल आयेंगे।

मैं भी एक बार इसी सस्था का मन्त्री रह चुका हूँ। मुझे गर्व है कि मेरे ऊपर कभी किसी ने इस तरह का आक्षेप नहीं किया, पर न-जाने क्यों लोग मेरे मन्त्रित्व से सन्तुष्ट नहीं थे। लोगो का खयाल था कि मैं बहुत कम समय देता हूँ और मेरे समय मे सस्था ने कोई गौरव बढानेवाला कार्य नहीं किया, इसलिए मैंने रूठकर इस्तीफा दे दिया था। मैं उसी पद से बेलौस रहकर भी निकाला गया। महाशय 'ग' हज़ारो हड़प करके भी उसी पद पर जमे हुए हैं। क्या यह मेरे उनसे कुनह रखने की काफी वजह न थी ? मैं चतुर खिलाड़ी की भाँति खुद तो कुछ न करना चाहता था, किन्तु परदे की आड़ से रस्सी खीचता रहता था।

मैंने रद्दा जमाया—देवीजी, आप अन्याय कर रही हैं। महाशय 'ग' से ज्यादा दिलेर और ·

उर्मिला ने मेरी बात काटकर कहा—मैं ऐसे आदमी को दिलेर नहीं कहती, जो छिपकर जनता के रुपये से शराब पिये। जिन शराब की दूकानो पर हम धरना देने जाते थे, उन्हीं दूकानो से उनके लिए शराब आती थी। इससे बढकर बेवफाई और क्या हो सकती है ? मैं तो ऐसे आदमी को देश-द्रोही कहती हूँ।

मैंने और खींची—लेकिन यह तो तुम भी मानती हो कि महाशय 'ग' केवल अपने प्रभाव से हज़ारो रुपये चन्दा वसूल कर लाते हैं। विलायती कपडे को रोकने का उन्हे जितना श्रेय दिया जाय, थोड़ा है।

उर्मिला देवी कब माननेवाली थीं। बोलीं—उन्हे चन्दे इस सस्था के नाम पर मिलते हैं, व्यक्तिगत रूप से धेला भी लायें तो कहूँ। रहा विलायती कपड़ा। जनता नामो को पूजती है और महाशय की तारीफें हो रही है, पर सच पूछिए तो यह श्रेय हमे मिलना चाहिए। वह तो कभी किसी दूकान पर गये भी नहीं। आज सारे शहर में इस बात की चर्चा हो रही है। जहाँ चन्दा माँगने जाओ, वहीं लोग यही आक्षेप करने लगते हैं। किस-किसका मुँह बन्द कीजिएगा। आप बनते तो हैं जाति के

सेवक ; मगर आचरण ऐसे कि शोहदों का भी न होगा। देश का उद्धार ऐसे विला-सियों के हाथों नहीं हो सकता। उसके लिए सच्चा त्याग होना चाहिए।

(२)

यही आलोचनाएँ हो रही थीं कि एक दूसरी देवी आई भगवती। बेचारी चन्दा माँगने गई थीं। थकी-माँदी चली आ रही थीं। यहाँ जो पचायत देखो, तो रम गईं। उनके साथ उनकी बालिका भी थी। कोई दस साल उम्र होगी। इन कामों मे बराबर माँ के साथ रहती थी। उसे जोर की भूख लगी हुई थी। घर की कुंजी भी भगवती देवी के पास थी। पतिदेव दफ्तर से आ गये होंगे। घर का खुलना भी जरूरी था ; इसलिए मैंने बालिका को उसके घर पहुँचाने की सेवा स्वीकार की।

कुछ दूर चलकर बालिका ने कहा—आपको मालूम है, महाशय 'ग' शराब पीते हैं ?

मैं इस आक्षेप का समर्थन न कर सका। भोली-भाली बालिका के हृदय में कटुता, द्वेष और प्रपञ्च का विष बोना मेरी ईर्ष्यालु-प्रकृति को भी रुचिकर न जान पड़ा। जहाँ कोमलता और सारल्य, विश्वास और माधुर्य का राज्य होना चाहिए, वहाँ कुत्सा और क्षुद्रता का मर्यादित होना कौन पसन्द करेगा, देवता के गले में काँटों की माला कौन पहनायेगा ?

मैंने पूछा—तुमसे किसने कहा कि महाशय 'ग' शराब पीते हैं ?

'वाह ! पीते ही हैं, आप क्या जानें ?'

'तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?'

'सारे शहर के लोग कह रहे हैं।'

'शहरवाले झूठ बोल रहे हैं।'

बालिका ने मेरी ओर अविश्वास की आँखो से देखा, शायद वह समझी, मैं भी महाशय 'ग' के भाई-बन्दों मे हूँ।

'आप कह सकते हैं, महाशय 'ग' शराब नहीं पीते ?'

'हाँ, वह कभी शराब नहीं पीते।'

'और महाशय 'क' ने जनता के रुपये भी नहीं उड़ाये ?'

'यह भी असत्य है।'

'और महाशय 'ख' मोटर पर हवा खाने नहीं जाते ?'

'मोटर पर हवा खाना कोई अपराध नहीं है।'

'अपराध नहीं है राजाओं के लिए, रईसों के लिए, अफसरो के लिए, जो जनता का खून चूसते हैं। देश-भक्ति का दम भरनेवालो के लिए वह बहुत बड़ा अपराध है।'

'लेकिन यह तो सोचो, इन लोगों को कितना दौड़ना पड़ता है ? पैदल कहाँ तक दौड़े ?'

'पैरगाड़ी पर तो चल सकते हैं ? यह कुछ बात नहीं है। ये लोग शान दिखाना चाहते है, जिसमे लोग समझें, यह भी बहुत बडे आदमी हैं। हमारी सस्था ग़रीबो की सस्था है। यहाँ मोटर पर उसी वक्त बैठना चाहिए, जब और किसी तरह काम ही न चल सके और शराबियों के लिए तो यहाँ स्थान ही न होना चाहिए। आप तो चदे माँगने जाते नहीं। हमे कितना लज्जित होना पड़ता है, आपको क्या मालूम ?'

मैंने गभीर होकर कहा—तुम्हें लोगों से कह देना चाहिए, यह सरासर ग़लत है। हम और तुम इस सस्था के शुभचिन्तक है। हमे अपने कार्य-कर्ताओं का अपमान करना उचित नहीं। हमें तो इतना ही देखना चाहिए कि वे हमारी कितनी सेवा करते है। मैं यह नही कहता कि 'क, ख, ग' में बुराइयाँ नहीं हैं। ससार में ऐसा कौन है, जिसमें बुराइयाँ न हों, लेकिन बुराइयो के मुक़ाबले मे उनमें गुण कितने हैं, यह तो देखो। हम सभी स्वार्थ पर जान देते है, मकान बनाते हैं, जायदाद खरीदते हैं। और कुछ नहीं, तो आराम से घर मे सोते है। ये बेचारे चौबीसों घटे देश-हित की फिक्र में डूबे रहते है। तीनों ही साल साल-भर की सज़ा काटकर, कई महीने हुए लौटे है। तीनो ही के उद्योग से अस्पताल और पुस्तकालय खुले, इन्हीं वीरो ने आदोलन करके किसानों का लगान कम कराया ; अगर इन्हे शराब पीना और धन कमाना होता, तो इस क्षेत्र मे आते ही क्यो ?

बालिका ने विचारपूर्ण दृष्टि से मुझे देखा। फिर बोली—यह बतलाइए, महाशय 'ग' शराब पीते हैं या नहीं ?

मैंने निश्चय-पूर्वक कहा—नहीं ! जो यह कहता है, वह झूठ बोलता है।

भगवती देवी का मकान आ गया। बालिका चली गई। मैं आज झूठ बोलकर जितना प्रसन्न था, उतना कभी सच बोलकर भी न हुआ था। मैंने एक बालिका के निर्मल हृदय को कुत्सा के पक मे गिरने से बचा लिया था।

दो बैलों की कथा

जानवरों में गधा सबसे ज्यादा बुद्धि-हीन समझा जाता है। हम जब किसी आदमी को पल्ले दरजे का बेवकूफ कहना चाहते हैं, तो उसे गधा कहते हैं। गधा सचमुच बेवकूफ है, या उसके सीधेपन, उसकी निरापद सहिष्णुता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गायें सींग मारती हैं, ब्याई हुई गाय तो अनायास ही सिंहिनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है, लेकिन गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो, गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असन्तोष की छाया भी दिखाई न देगी। वैशाख मे चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो, पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक स्थायी विषाद स्थायी रूप से छाया रहता है। सुख-दु ख, हानि-लाभ, किसी दशा मे भी उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वह सभी उसमे पराकाष्ठा को पहुँच गये हैं; पर, आदमी उसे बेवकूफ कहता है। सद्‌गुणों का इतना अनादर कहीं नहीं देखा। कदाचित् सीधापन ससार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिए न भारतवासियों की अफ्रीका मे क्यों दुर्दशा हो रही है? क्यों अमेरिका मे उन्हे घुसने नहीं दिया जाता? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं, जी तोड़कर काम करते हैं, किसीसे लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम खा जाते है। फिर भी बदनाम है। कहा जाता है, वे जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे भी ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे ससार की सभ्य जातियों मे गण्य बना दिया।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी है, जो उससे कुछ ही कम गधा है, और वह है 'बैल'। जिस अर्थ मे हम गधा का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते

अर्थ में बछिया के ताऊ का प्रयोग भो करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफों में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे, मगर हमारा विचार ऐसा नहीं। बैल कभी-कभी मारता भो है, कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने मे आ जाता है। और भी कई रीतियों से वह अपना असन्तोष प्रकट कर देता है, अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।

झूरी काछी के दोनों बैलो के नाम थे हीरा और मोतो। दोनों पछाई जाति के थे। देखने मे सुन्दर, काम में चौकस, डोल में ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनो मे भाई-चारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक-दूसरे से मूक-भाषा मे विचार-विनिमय करते थे। एक दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमे कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जोवों मे श्रेष्ठता का दावा करनेवाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते, कभी-कभी दोनों सींग भो मिला लिया करते थे। विग्रह के भाव से नहीं, केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से जैसे दोस्तो मे घनिष्ठता होते ही धौल-धप्पा होने लगती है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हलकी-सी रहतो है, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस वक्त यह दोनों बैल हल या गाड़ी मे जोत दिये जाते और गरदनें हिला-हिलाकर चलते, तो हरएक की यही चेष्टा होती थी कि ज्यादा-से-ज्यादा बोझ मेरे ही गरदन पर रहे। दिन-भर के बाद दोपहर या सध्या को दोनों खुलते, तो एक दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकन मिटा लिया करते। नाद मे खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनो साथ उठते, साथ नाद मे मुँह डालते और साथ ही बैठते थे। एक मुँह हटा लेता, तो दूसरा भी हटा लेता था।

सयोग की बात, झूरी ने एक बार गोईं को ससुराल भेज दिया। बैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जा रहे हैं। समझे, मालिक ने हमें बेच दिया। अपना यों बेचा जाना उन्हे अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने, पर झूरी के साले गया को घर तक गोईं ले जाने में दाँतों पसीना आ गया। पीछे से हाँकता तो दोनों दायें-बायें भागते, पगहिया पकड़कर आगे से खींचता, तो दोनो पीछे को ज़ोर लगाते। मारता तो दोनों सींग नीचे करके हुँकारते। अगर ईश्वर ने उन्हे वाणी दी होती, तो झूरी से पूछते — तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता था तो और काम लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी मे मर जाना क़बूल था। हमने कभी दाने-चारे की शिकायत नहीं

की। तुमने जो कुछ खिलाया वह सिर झुकाकर खा लिया, फिर तुमने हमें इस ज़ालिम के हाथ क्यों बेच दिया?

सन्ध्या समय दोनो बैल अपने नये स्थान पर पहुँचे। दिन-भर के भूखे थे; लेकिन जब नाद मे लगाये गये, तो एक ने भी उसमे मुँह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होने अपना घर समझ रखा था, वह आज उनसे छूट गया था। यह नया घर, नया गाँव, नये आदमी, सब उन्हें बेगानों-से लगते थे।

दोनों ने अपनी मूकभाषा मे सलाह की, एक दूसरे को कनखियों से देखा और लेट गये। जब गाँव मे सोता पड़ गया, तो दोनो ने ज़ोर मारकर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मज़बूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा; पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

झूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनो की गरदनो में आधा-आधा गराँव लटक रहा है। घुटनो तक पाँव कीचड़ से भरे हैं, और दोनों की आँखों में विद्रोहमय स्नेह झलक रहा है।

झूरी बैलो को देखकर स्नेह से गद्‌गद हो गया। दौड़कर उन्हे गले लगा लिया। प्रमालिंगन और चुम्बन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गये और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूत-पूर्व न होने पर भी महत्त्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशु-वीरों को अभिनन्दन-पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।

एक बालक ने कहा—ऐसे बैल किसीके पास न होंगे।

दूसरे ने समर्थन किया—इतनी दूर से दोनों अकेले चले आये।

तीसरा बोला—बैल नहीं हैं वे, उस जनम के आदमी हैं।

इसका प्रतिवाद करने का किसीको साहस न हुआ।

झूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली—कैसे नमकहराम बैल हैं कि एक दिन भी वहाँ काम न किया; भाग खड़े हुए।

झूरी अपने बैलों पर यह अक्षेप न सुन सका—नमकहराम क्यों है? चारा-दाना न दिया होगा, तो क्या करते!

स्त्री ने रोब के साथ कहा—बस, तुम्हीं तो बैलों को खिलाना जानते हो, और तो सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।

झूरी ने चिढाया—चारा मिलता तो क्यों भागते ?

स्त्री चिढी—भागे इसलिए कि वे लोग तुम-जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों को सहलाते नहीं। खिलाते हैं, तो रगड़कर जोतते भी हैं। यह दोनों ठहरे कामचोर, भाग निकले। अब देखूँ, कहां से खली और चोकर मिलता है! सूखे भूसे के सिवा कुछ न दूँगी, खायें चाहे मरें।

यही हुआ। मजूर को कड़ी ताकीद कर दी गई कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाय।

बैलों ने नांद में मुँह डाला, तो फीका-फीका। न कोई चिकनाहट, न कोई रस! क्या खायें ? आशा-भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे।

झूरी ने मजूर से कहा—थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता बे ?

'मालकिन मुझे मार ही डालेंगी।'

'चुराकर डाल आ।'

'ना दादा, पीछे से तुम भी उन्हीं की-सी कहोगे।'

(३)

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई मे गिराना चाहा, पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

सन्ध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों से बांधा, और कल की शरारत का मज़ा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली-चूनी सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। झूरी इन्हे फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत सम्मान की व्यथा तो थी ही, उस पर मिला सूखा भूसा! नांद की तरफ आँखें तक न उठाई।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता, पर इन दोनों ने जैसे पांव उठाने

की कसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक गया ; पर दोनों ने पाँव न उठाये। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक में खूब डडे जमाये, तो मोती का गुस्सा काबू के बाहर हो गया। हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, जोत, सब टूट-टाटकर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं, तो दोनों पकड़ाई में न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती ने उसी भाषा मे उत्तर दिया—तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी। अबकी बड़ी मार पडेगी।

'पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे।'

'गया दो आदमियों के साथ दौडा आ रहा है। दोनों के हाथों मे लाठियाँ हैं।'

मोती बोला—कहो तो दिखा दूँ कुछ मजा मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है।

हीरा ने समझाया—नहीं भाई! खडे हो जाओ।

'मुझे मारेगा, तो मैं भी एक-दो को गिरा दूँगा।'

'नहीं। हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।'

मोती दिल में ऐंठकर रह गया। गया आ पहुँचा, और दोनो को पकड़कर ले चला। कुशल हुई कि उसने इस वक्त मार-पीट न की, नहीं मोती भी पलट पड़ता। उसके तेवर देखकर गया और उसके सहायक समझ गये कि इस वक्त टाल जाना ही मसलहत है।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया। दोनो चुप-चाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन करने लगे। उसी वक्त एक छोटो-सी लड़की दो रोटियाँ लिये निकली और दोनों के मुँह मे देकर चली गई। उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या शांत होती, पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया। यहाँ भी किसी सज्जन का वास है। लड़की भैरो की थी। उसकी माँ मर चुकी थी। सौतेली माँ उसे मारती रहती थी, इसलिए इन बैलों से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गई थी।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डण्डे खाते, अडते। शाम को थान पर बाँध दिये जाते, और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती। प्रेम के इस प्रसाद की वह बरकत थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते थे, मगर दोनों की आँखों मे, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक भाषा मे कहा—अब तो नहीं सहा जाता हीरा!

'क्या करना चाहते हो ?'

'एकाध को सींगो पर उठाकर फेंक दूँगा।'

'लेकिन जानते हो वह प्यारी लड़की, जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। वह बेचारी अनाथ न हो जायगी !'

'तो मालकिन को न फेंक दूँ ? वही तो उस लड़की को मारती है।'

'लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो।'

'तुम तो किसी तरह निकलने ही नहीं देते। तो आओ, आज तुड़ाकर भाग चलें।'

'हाँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ, लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे !'

'इसका उपाय है। पहले रस्सी को थोडा सा चबा लो। फिर एक झटके मे जाती है।'

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गई, तो दोनों रस्सियाँ चबाने लगे, पर मोटी रस्सी मुँह मे न आती थी। बेचारे बार-बार जोर लगाकर रह जाते थे।

सहसा घर का द्वार खुला, और वही लड़की निकली। दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चाटने लगे। दोनों की पूँछे खड़ी हो गई। उसने उनके माथे सहलाये और बोली—खोले देती हूँ। चुपके से भाग जाओ, नहीं यहाँ लोग मार डालेंगे। आज घर मे सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जाय।

उसने गराँव खोल दिया, पर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

मोती ने अपनी भाषा मे पूछा — अब चलते क्यों नहीं ?

हीरा ने कहा—चलें तो, लेकिन कल इस अनाथ पर आफत आयेगी। सब इसी पर सन्देह करेंगे। सहसा बालिका चिल्लाई—दोनों फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं। ओ दादा ! दादा ! दोनों बैल भागे जा रहे है ! जल्दी दौडो !

गया हड़बड़ाकर भीतर से निकला और बैलों को पकड़ने चला। वह दोनों भागे। गया ने पीछा किया। वह और भी तेज हुए। गया ने शोर मचाया। फिर गाँव के कुछ आदमियों को साथ लेने के लिए लौटा। दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गये। यहाँ तक कि मार्ग का ज्ञान न रहा। जिस परिचित

मार्ग से आये थे, उसका यहाँ पता न था। नये-नये गाँव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे, अब क्या करना चाहिए।

हीरा ने कहा—मालूम होता है, राह भूल गये।

'तुम भी तो बेतहाशा भागे। वहीं उसे मार गिराना था।'

'उसे मार गिराते, तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दे; लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें?'

दोनो भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत मे मटर खड़ी थी। चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं है।

जब पेट भर गया, दोनों ने आजादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाये, और एक दूसरे को ठेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाईं में गिर गया। तब उसे भी क्रोध आया। सँभलकर उठा और फिर मोती से भिड़ गया। मोती ने देखा—खेल में झगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गया।

(४)

अरे! यह क्या! कोई साँड़ डौंकता चला आ रहा है। हाँ साँड़ ही है। वह सामने आ पहुँचा। दोनों मित्र बगलें झाँक रहे थे। साँड़ पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है; लेकिन न भिड़ने पर भी तो जान बचती नहीं नजर आती। इन्हीं की तरफ आ भी रहा है। कितनी भयकर सूरत है?

मोती ने मूक भाषा में कहा—बुरे फँसे। जान कैसे बचेगी। कोई उपाय सोचो।

हरी ने चिंतित स्वर में कहा—अपने घमड में भूला हुआ है। आरजू-विनती न सुनेगा।

'भाग क्यों न चलें!'

'भागना कायरता है।'

'तो फिर यहीं मरो। बन्दा तो नौ- दो ग्यारह होता है।'

'और जो दौड़ाये?'

'तो फिर कोई उपाय सोचो जल्द!'

'उपाय यही है कि उस पर दोनों जनें एक साथ चोट करें। मैं आगे से रगेदता हूँ, तुम पीछे से रगेदो, दोहरी मार पड़ेगी तो भाग खड़ा होगा। ज्योंही मेरी ओर

झपटे, तुम बग़ल से उसके पेट में सींग घुसेड़ देना। जान जोखिम है; पर दूसरा उपाय नहीं है।'

दोनों मित्र जान हथेलियों पर लेकर लपके। सांड़ को कभी संगठित शत्रुओं से लड़ने का तजरबा न था। वह तो एक शत्रु से मल्लयुद्ध करने का आदी था। ज्योंही हीरा पर झपटा, मोती ने पीछे से दौड़ाया। सांड़ उसकी तरफ मुड़ा, तो हीरा ने रगेदा। सांड़ चाहता था कि एक एक करके दोनों को गिरा लें, पर यह दोनों भी उस्ताद थे। उसे यह अवसर न देते थे। एक बार सांड़ झल्लाकर हीरा का अन्त कर देने के लिए चला, कि मोती ने बगल से आकर उसके पेट में सींग भोंक दी। सांड़ क्रोध में आकर पीछे फिरा, तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभा दिया। आखिर बेचारा जख्मी होकर भागा, और दोनों मित्रो ने दूर तक उसका पीछा किया। यहाँ तक कि सांड़ बेदम होकर गिर पड़ा। तब दोनों ने उसे छोड़ दिया।

दोनों मित्र विजय के नशे में घूमते चले जाते थे।

मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा—मेरा जी तो चाहता था कि बचा को मार ही डालूँ।

हीरा ने तिरस्कार किया—गिरे हुए वैरी पर सींग न चलाना चाहिए।

'यह सब ढोंग है। वैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे।'

'अब घर कैसे पहुँचेंगे, यह सोचो।'

'पहले कुछ खा लें, तो सोचें।'

सामने मटर का खेत था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा मना करता रहा; पर उसने एक न सुनी। अभी दो ही चार ग्रास खाये थे कि दो आदमी लाठियाँ लिये दौड़ पड़े, और दोनो मित्रों को घेर लिया। हीरा तो मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खेत में था। उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे। न भाग सका। पकड़ लिया गया। हीरा ने देखा, संगी संकट मे है, तो लौट पड़ा। फँसेंगे तो दोनों साथ फँसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रातःकाल दोनों मित्र कांजीहौस मे बन्द कर दिये गये।

(५)

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा साबका पड़ा कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समझ ही में न आता था, यह कैसा स्वामी

है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। वहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े, कई गधे ; पर किसीके सामने चारा न था ; सब ज़मीन पर मुर्दों की तरह पड़े थे। कई तो इतने कमजोर हो गये थे कि खड़े भी न हो सकते थे। सारा दिन दोनों मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाये ताकते रहे, पर कोई चारा लेकर आता न दिखाई दिया। तब दोनो ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरू की, पर इससे क्या तृप्ति होती।

रात को भी जब कुछ भोजन न मिला, तो हीरा के दिल मे विद्रोह की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला—अब तो नहीं रहा जाता मोती!

मोती ने सिर लटकाये हुए जवाब दिया—मुझे तो मालूम होता है, प्राण निकल रहे हैं।

'इतनी जल्द हिम्मत न हारो भाई! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।'

'आओ, दीवार तोड़ डालें।'

'मुझसे तो अब कुछ न होगा।'

'बस, इसी बूते पर अकड़ते थे!'

'सारी अकड़ निकल गई।'

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा मजबूत तो था ही, अपने नुकीले सींग दीवार मे गडा दिये और जोर मारा, तो मिट्टी का एक चिप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढा। उसने दौड़-दौडकर दीवार पर चोटें कीं और हर चोट मे थोडी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय काँजीहौस का चौकीदार लालटेन लेकर जानवरों की हाजिरी लेने आ निकला। हीरा का यह उजड्डपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किये और मोटी-सी रस्सी से बाँध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा—आखिर मार खाई, क्या मिला?

'अपने बूते-भर ज़ोर तो मार लिया!'

'ऐसा ज़ोर मारना किस काम का कि और बंधन मे पड़ गये।'

'जोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने ही बंधन पड़ते जायँ।'

'जान से हाथ धोना पड़ेगा।'

'कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, [illegible] जाती, तो कितनी जानें बच जातीं ? इतने भाई यहाँ बन्द हैं। किसी देह मे जान नहीं है। दो-चार दिन और यही हाल रहा, तो सब मर जायँगे।'

'हाँ, यह बात तो है। अच्छा तो लो फिर मैं भी ज़ोर लगाता हूँ।'

मोती ने भी दीवार मे उसी जगह सींग मारा। थोड़ी-सी मिट्टी गिरी और हिम्मत बढी। फिर तो वह दीवार में सींग लगाकर इस तरह जोर करने लगा, मानो किसी द्वन्द्वी से लड़ रहा है। आखिर कोई दो घटे की जोर-आजमाई के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गई। उसने दूनी शक्ति से दूसरा धक्का मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था कि अधमरे-से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीनों घोड़ियाँ सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियाँ निकलीं। इसके बाद भैंसें भी खिसक गईं, पर गधे अभी तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा—तुम दोनों क्यों नहीं भाग जाते ?

एक गधे ने कहा—जो कहीं फिर पकड़ लिये जायँ ?

'तो क्या हरज है ? अभी तो भागने का अवसर है ?'

'हमें तो डर लगता है। हम यहीं पड़े रहेंगे।'

आधी रात से ऊपर जा चुकी थी। दोनों गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे, भागें या न भागें। और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने में लगा हुआ था। जब वह हार गया तो, हीरा ने कहा—तुम जाओ, मुझे यहीं पड़ा रहने दो। शायद कहीं भेंट हो जाय।

मोती ने आँखों मे आंसू लाकर कहा—तुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हो हीरा ? हम और तुम इतने दिनो एक साथ रहे। आज तुम विपत्ति में पड़ गये, तो मैं तुम्हे छोड़कर अलग हो जाऊँ ?

हीरा ने कहा—बहुत मार पड़ेगी। लोग समझ जायँगे, यह तुम्हारी शरारत है।

मोती गर्व से बोला—जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बधन पड़ा, उसके लिए अगर मुझपर मार पड़े, तो क्या चिन्ता। इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियो की जान बच गई। वह सब तो आशीर्वाद देंगे ?

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधों को सींगों से मार-मारकर बाड़े के बाहर निकाला और तब अपने बन्धु के पास आकर सो रहा।

भोर होते ही मुंशी और चौकीदार और अन्य कर्मचारियों मे कैसी खलबली मची, इसके लिखने की ज़रूरत नहीं। बस, इतना ही काफी है कि मोती की ख़ूब मरम्मत हुई और उसे भी मोटी रस्सी से बांध दिया गया।

(६)

एक सप्ताह तक दोनों मित्र वहाँ बँधे पड़े रहे। किसीने चारे का एक तृण भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गये थे कि उठा तक न जाता था। ठठरियाँ निकल आई थीं।

एक दिन बाडे के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते-होते वहाँ पचास-साठ आदमी जमा हो गये। तब दोनो मित्र निकाले गये और उनकी देख-भाल होने लगी, लोग आ-आकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जाते। ऐसे मृतक बैलों का कौन खरीदार होता।

सहसा एक दढ़ियल आदमी, जिसकी आँखें लाल थीं और मुद्रा अत्यन्त कठोर, आया और दोनों मित्रों के कूल्हों मे उँगली गोदकर मुंशीजी से बातें करने लगा। उसका चेहरा देखकर अन्तर्ज्ञान से दोनों मित्रो के दिल काँप उठे। वह कौन है और उन्हे क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हे कोई सन्देह न हुआ। दोनो ने एक दूसरे को भीत नेत्रों से देखा, और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा—गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।

मोती ने अश्रद्धा के भाव से उत्तर दिया—कहते हैं, भगवान् सबके ऊपर दया करते हैं। उन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती?

'भगवान् के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर है। चलो, अच्छा ही है, कुछ दिन उनके पास तो रहेगे? एक बार भगवान् ने उस लड़की के रूप में हमे बचाया था। क्या अब न बचायेंगे?'

'यह आदमी छुरी चलायेगा। देख लेना।'

'तो क्या चिंता है। मांस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी-न-किसी काम आ जायँगी।'

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दढ़ियल के साथ चले। दोनों की बोटी-

चोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे; पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे, क्योंकि वह ज़रा भी चाल धीमी हो जाने पर ज़ोर से डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का एक रेवड़ हरे-हरे हार में चरता नज़र आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिकने, चपल। कोई उछलता था, कोई आनन्द से बैठा पागुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका, पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिन्ता नहीं कि उनके दो भाई वधिक के हाथ पड़े कैसे दुखी हैं।

सहसा दोनों को ऐसा मालूम हुआ कि यह परिचित राह है। हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग़, वही गाँव मिलने लगे। प्रतिक्षण उनकी चाल तेज़ होने लगी। सारी थकन, सारी दुर्बलता ग़ायब हो गई। अहा! यह लो! अपना ही हार आ गया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे, हाँ, यही कुआँ है।

मोती ने कहा—हमारा घर नगीच आ गया।

हीरा बोला—भगवान् की दया है।

'मैं तो अब घर भागता हूँ।'

'यह जाने देगा?'

'इसे मैं मार गिराता हूँ।'

'नहीं-नहीं, दौड़कर थान पर चलो। वहाँ से हम आगे न जायँगे।'

दोनों उन्मत्त होकर बछड़ों की भाँति कुलेलें करते हुए घर की ओर दौड़े। वह हमारा थान है। दोनों दौड़कर अपने थान पर आये और खड़े हो गये। दढ़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था।

झूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था। बैलों को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मित्रों की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। एक झूरी का हाथ चाट रहा था।

दढ़ियल ने जाकर बैलों की रस्सियाँ पकड़ लीं।

झूरी ने कहा—मेरे बैल हैं।

'तुम्हारे बैल कैसे? मैं मवेशीखाने से नीलाम लिये आता हूँ।'

'मैं तो समझता हूँ, चुराये लिये आते हो। चुपके से चले जाओ। मेरे बैल हैं। मैं बेचूँगा, तो बिकेंगे। किसीको मेरे बैल नीलाम करने का क्या अखतियार है?'

'जाकर थाने में रपट कर दूँगा।'

'मेरे बैल हैं। इसका सबूत यह है कि मेरे द्वार पर खड़े हैं।'

दढ़ियल झल्लाकर बैलों को जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी वक्त मोती ने सींग चलाया। दढ़ियल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दढ़ियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका, पर खड़ा दढ़ियल का रास्ता देख रहा था। दढ़ियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था। और मोती विजयी शूर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे, और हँसते थे।

जब दढ़ियल हारकर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

हीरा ने कहा—मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर मार न बैठो।

'अगर वह मुझे पकड़ता, तो बे मारे न छोड़ता।'

'अब न आयेगा?'

'आयेगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ कैसे ले जाता है।'

'जो गोली मरवा दे?'

'मर जाऊँगा; पर उसके काम तो न आऊँगा।'

'हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।'

'इसी लिए कि हम इतने सीधे होते हैं।'

ज़रा देर में नाँदों में खली, भूसा, चोकर, दाना भर दिया गया और दोनों मित्र खाने लगे। झूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था और बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे। सारे गाँव में उछाह-सा मालूम होता था।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिये।

रियासत का दीवान

महाशय मेहता उन अभागों मे थे, जो अपने स्वामी को नहीं प्रसन्न रख सकते। वह दिल से अपना काम करते थे और चाहते थे कि उनकी प्रशसा हो। वह यह भूल जाते थे कि वह काम के नौकर तो हैं ही, अपने स्वामी के सेवक भी हैं। जब उनके अन्य सहकारी स्वामी के दरबार में हाजिरी देते थे, तो वह बेचारे दफ्तर में बैठे कागजों से सिर मारा करते थे। इसका फल यह था कि स्वामी के सेवक तो तरक्कियाँ पाते थे, पुरस्कार और पारितोषिक उड़ाते थे और काम के सेवक मेहता किसी-न-किसी अपराध में निकाल दिये जाते थे। ऐसे कटु अनुभव उन्हे अपने जीवन मे कई बार हो चुके थे; इसलिए अबकी जब राजा साहब सतिया ने उन्हे एक अच्छा पद प्रदान किया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब वह भी स्वामी का रुख देखकर काम करेंगे और उनके स्तुति-गान मे ही भाग्य की परीक्षा करेंगे। और इस प्रतिज्ञा को उन्होंने कुछ इस तरह निभाया कि दो साल भी न गुज़रे थे कि राजा साहब ने उन्हे अपना दीवान बना लिया। एक स्वाधीन राज्य की दीवानी का क्या कहना! वेतन तो ५००) मासिक ही था, मगर अख्तियार बड़े लम्बे। राई का पर्वत करो, या पर्वत से राई, कोई पूछनेवाला न था। राजा साहब भोग-विलास मे पड़े रहते थे, राज्य-सचालन का सारा भार मि० मेहता पर था। रियासत के सभी अमले और कर्मचारी दण्डवत् करते, बड़े-बड़े रईस नज़राने देते, यहाँ तक कि रानियाँ भी उनकी ख़ुशामद करतीं। राजा साहब उग्र प्रकृति के मनुष्य थे, जैसे प्राय: राजे होते हैं। दुर्बलों के सामने कभी बिल्ली, कभी शेर, सबलों के सामने मि० मेहता को डाँट-फटकार भी बताते। पर मेहता ने अपनी सफाई मे एक शब्द भी मुँह से न निकालने की क़सम खा ली थी। सिर झुकाकर सुन लेते। राजा साहब की क्रोधाग्नि ईंधन न पाकर शान्त हो जाती।

गर्मियों के दिन थे। पोलिटिकल एजेन्ट का दौरा था। राज्य में उनके स्वागत

की तैयारियाँ हो रही थीं। राजा साहब ने मेहता को बुलाकर कहा—मैं चाहता हूँ, साहब बहादुर यहाँ से मेरा कलमा पढ़ते हुए जायँ।

मेहता ने सिर झुकाकर विनीत भाव से कहा—चेष्टा तो ऐसी ही कर रहा हूँ, अन्नदाता!

'चेष्टा तो सभी करते हैं, मगर वह चेष्टा कभी सफल नहीं होती। मैं चाहता हूँ, तुम दृढ़ता के साथ कहो—ऐसा ही होगा।'

'ऐसा ही होगा।'

'रुपये की परवाह मत करो।'

'जो हुक्म।'

'कोई शिकायत न आये, वरना तुम जानोगे।'

'वह हुजूर को धन्यवाद देते जायँ तो सही।'

'हाँ, मैं यही चाहता हूँ।'

'जान लड़ा दूँगा, दीनबन्धु!'

'अब मुझे सतोष है।'

इधर तो पोलिटिकल एजेन्ट का आगमन था, उधर मेहता का लड़का जयकृष्ण गर्मियों की छुट्टियाँ मनाने माता-पिता के पास आया। किसी विश्वविद्यालय में पढ़ता था। एक बार १९३२ में कोई उग्र-भाषण करने के जुर्म में ६ महीने की सज़ा काट चुका था। मि० मेहता की नियुक्ति के बाद जब वह पहली बार आया था तो राजा साहब ने उसे खास तौर पर बुलाया था, और उससे जी खोलकर बातें की थीं, उसे अपने साथ शिकार खेलने ले गये और नित्य उसके साथ टेनिस खेला किये थे। जयकृष्ण पर राजा साहब के साम्यवादी विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उसे ज्ञात हुआ कि राजा साहब केवल देशभक्त ही नहीं, क्रान्ति के समर्थक हैं। रूस और फ्रांस की क्रान्ति पर दोनों में खूब बहस हुई थी; लेकिन अबकी यहाँ उसने कुछ और ही रग देखा। रियासत के हरएक किसान और ज़मींदार से जबरन् चन्दा वसूल किया जा रहा था। पुलिस गाँव-गाँव चन्दा उगाहती फिरती थी। रक़म दीवान साहब नियत करते थे। वसूल करना पुलिस का काम था। फरियाद की कहीं सुनवाई न थी! चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। हज़ारों मज़दूर सरकारी इमारतों की सफाई, सजावट और सड़कों की मरम्मत मे बेगार भर रहे थे। बनियों से डण्डों के

ज़ोर से रसद जमा की जा रही थी। जयकृष्ण को आश्चर्य हो रहा था कि यह क्या हो रहा है। राजा जाहब के विचार और व्यवहार में इतना अन्तर कैसे हो गया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि महाराज को इन अत्याचारों की खबर ही न हो, या उन्होंने जिन तैयारियों का हुक्म दिया हो, उसकी तामील में कर्मचारियों ने अपनी कारगुजारी की धुन में यह अनर्थ कर डाला हो। रात भर तो उसने किसी तरह ज़ब्त किया। प्रात काल उसने मेहताजी से पूछा—आपने राजा साहब को इन अत्याचारों की सूचना नहीं दी ?

मेहताजी को स्वय इस अनीति से ग्लानि हो रही थी। वह स्वभावत दयालु मनुष्य थे, लेकिन परिस्थितियों ने उन्हे अशक्त कर रखा था। दु खित स्वर में बोले—राजा साहब का यही हुक्म है, तो क्या किया जाय।

'तो आपको ऐसी दशा में अलग हो जाना चाहिए था। आप जानते हैं, यह जो कुछ हो रहा है, उसकी सारी ज़िम्मेदारी आपके सिर लादी जा रही है। प्रजा आप ही को अपराधी समझती है।'

'मैं मजबूर हूँ। मैंने कर्मचारियों से बार-बार सकेत किया है कि यथासाध्य किसी पर सख्ती न की जाय, लेकिन हरेक स्थान पर मैं मौजूद तो नहीं रह सकता। अगर प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करूँ, तो शायद कर्मचारी लोग महाराज से मेरी शिकायत कर दें। यह लोग ऐसे ही अवसरों की ताक मे तो रहते ही हैं। इन्हे तो जनता को लूटने का कोई बहाना चाहिए। जितना सरकारी कोष में जमा करते, उससे ज्यादा अपने घर मे रख लेते हैं। मैं कुछ कर ही नहीं सकता।'

जयकृष्ण ने उत्तेजित होकर कहा—तो आप इस्तीफा क्यो नहीं दे देते ?

मेहता लज्जित होकर बोले—बेशक, मेरे लिए मुनासिब तो यही था, लेकिन जीवन मे इतने धक्के खा चुका हूँ कि अब और सहने की शक्ति नहीं रही। यह निश्चय है कि नौकरी करके मैं अपने को बेदाग़ नहीं रख सकता। धर्म और अधर्म, सेवा और परमार्थ के झमेलों में पड़कर मैंने बहुत ठोकरें खाई। मैंने देख लिया कि दुनिया दुनियादारों के लिए है, जो अवसर और काल देखकर काम करते हैं। सिद्धान्त-वादियों के लिए यह अनुकूल स्थान नहीं है।

जयकृष्ण ने तिरस्कार-भरे स्वर में पूछा—मैं राजा साहब के पास जाऊँ ?

'क्या तुम समझते हो, राजा साहब से यह बातें छिपी है ?'

'सभव है, प्रजा की दु:ख-कथा सुनकर उन्हे कुछ दया आये ?'

मि० मेहता को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी। वह तो ख़ुद चाहते थे कि किसी तरह अन्याय का बोझ उनके सिर से उतर जाय। हाँ, यह भय अवश्य था कि कहीं जयकृष्ण की सत्प्रेरणा उनके लिए हानिकर न हो, और कहीं उन्हें इस सम्मान और अधिकार से हाथ न धोना पड़े। बोले—यह खयाल रखना कि तुम्हारे मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाय, जो महाराज को अप्रसन्न कर दे।

जयकृष्ण ने उन्हे आश्वासन दिया—वह ऐसी कोई बात न करेगा। क्या वह इतना नादान है, मगर उसे क्या खबर थी कि आज के महाराजा साहब वह नहीं हैं, जो एक साल पहले थे। या संभव है. पोलिटिकल एजेंट के चले जाने के बाद फिर हो जायँ। वह न जानता था कि उनके लिए क्रान्ति और आतक की चर्चा भी उसी तरह विनोद की वस्तु थी, जैसी हत्या या बलात्कार या जाल की वारदातें या रूप के बाज़ार के आकर्षक समाचार। जब उसने ड्योढी पर पहुँचकर अपनी इत्तला कराई, तो मालूम हुआ कि महाराज इस समय अस्वस्थ हैं, लेकिन वह लौट ही रहा था कि महाराज ने उसे बुला भेजा। शायद उससे सिनेमा-ससार के ताजे समाचार पूछना चाहते थे। उसके सलाम पर मुसकिराकर बोले—तुम खूब आये भई, कहो एम० सी० सी० का मैच देखा या नहीं ? मैं तो इन बखेड़ो में ऐसा फँसा कि जाने की नौबत ही नहीं आई। अब तो यही दुआ कर रहा हूँ कि किसी तरह एजेंट साहब खुश-खुश रुखसत हो जायँ। मैंने जो भाषण लिखवाया है, वह जरा तुम भी देख लो। मैंने इन राष्ट्रीय आन्दोलनों की ख़ूब खबर ली है और हरिजनोद्धार पर भी छींटे उड़ा दिये हैं।

जयकृष्ण ने अपने आवेश को दबाकर कहा—राष्ट्रीय आन्दोलनो की आपने खबर ली, यह अच्छा किया, लेकिन हरिजनोद्धार को तो सरकार भी पसन्द करती है; इसी लिए उसने महात्मा गांधी को रिहा कर दिया, और जेल में भी उन्हें इस आदोलन के सम्बन्ध में लिखने-पढने और मिलने जुलने की पूरी स्वाधीनता दे रखी थी।

राजा साहब ने तात्त्विक मुस्कान के साथ कहा—तुम जानते नहीं, यह सब प्रदर्शन-मात्र हैं। दिल में सरकार समझती है कि यह भी राजनैतिक आदोलन है। वह इस रहस्य को बड़े ध्यान से देख रही है। लायलटी में जितना प्रदर्शन करो, चाहे वह औचित्य की सीमा के पार ही क्यों न हो जाय, उसका रंग चोखा ही होता है।

उसी तरह जैसे कवियों की विरुदावली से हम फूल उठते हैं, चाहे वह ...
क्यों न हो। हम ऐसे कवि को खुशामदी समझें, अहमक़ भी समझ सकते हैं; पर उससे अप्रसन्न नहीं हो सकते; वह हमें जितना ही ऊँचा उठाता है, उतना ही हमारी दृष्टि में ऊँचा उठता जाता है।

राजा साहब ने अपने भाषण की एक प्रति मेज की दराज से निकालकर जयकृष्ण के सामने रख दी, पर जयकृष्ण के लिए इस भाषण में अब कोई आकर्षण न था। अगर वह सभा-चतुर होता, तो ज़ाहिरदारी के लिए ही इस भाषण को बड़े ध्यान से पढ़ता और उसके शब्द-विन्यास और भावोत्कर्ष की प्रशंसा करता, और उसकी तुलना महाराजा बीकानेर या पटियाला के भाषणों से करता, पर अभी दरबारी दुनिया की रीति-नीति से अनभिज्ञ था। जिस चीज़ को बुरा समझता था, उसे बुरा कहता था; जिस चीज़ को अच्छा समझता था, उसे अच्छा कहता। बुरे को अच्छा और अच्छे को बुरा कहना अभी उसे न आया था। उसने भाषण पर सरसरी नजर डालकर उसे मेज पर रख दिया, और अपनी स्पष्टवादिता का बिगुल फूँकता हुआ बोला—मैं राजनीति के रहस्यों को भला क्या समझ सकता हूँ, लेकिन मेरा खयाल है कि चाणक्य के यह वंशज इन चालों को खूब समझते हैं और कृत्रिम भावों का उन पर कोई असर नहीं होता, वल्कि इससे आदमी उनकी नज़रों में और भी गिर जाता है। अगर एजेंट को मालूम हो जाय कि उसके स्वागत के लिए प्रजा पर कितने जुल्म ढाये जा रहे हैं, तो शायद वह यहाँ से प्रसन्न होकर न जाय। फिर, मैं तो प्रजा की दृष्टि देखता हूँ। एजेंट की प्रसन्नता आपके लिए लाभप्रद हो सकती है, प्रजा को तो उससे हानि ही होगी।

राजा साहब अपने किसी काम की आलोचना नहीं सह सकते थे। उनका क्रोध पहले जिरहों के रूप में निकलता, फिर तर्क का आकार धारण कर लेता और अन्त में भूकम्प के आवेश से उबल पड़ता था, जिससे उनका स्थूल शरीर, कुरसी, मेज़, दीवारें और छत सभी में भीषण कम्पन होने लगता था। तिरछी आँखों से देखकर बोले—क्या हानि होगी, ज़रा सुनूँ?

जयकृष्ण समझ गया कि क्रोध की मशीनगन चक्कर में है और घातक स्फोट होने ही वाला है। सँभलकर बोला—इसे आप मुझसे ज्यादा समझ सकते हैं।

'नहीं, मेरी बुद्धि इतनी प्रखर नहीं है।'

'आप बुरा मान जायँगे।'

'क्या तुम समझते हो, मैं बारूद का ढेर हूँ!'

'बेहतर है, आप इसे न पूछें।'

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा।'

और आप-ही-आप उनकी मुट्ठियाँ बँध गईं।

'तुम्हे बतलाना पड़ेगा, इसी वक्त!'

जयकृष्ण यह धौंस क्यों सहने लगा। क्रिकेट के मैदान में राजकुमारों पर रोब जमाया करता था, बड़े-बड़े हुक्काम की चुटकियाँ लेता था। बोला--अभी आपके दिल में पोलिटिकल एजेन्ट का कुछ भय है, आप प्रजा पर जुल्म करते डरते हैं। जब वह आपके एहसानों से दब जायगा, आप स्वच्छन्द हो जायँगे। और प्रजा की फरियाद सुननेवाला कोई न रहेगा।

राजा साहब प्रज्वलित नेत्रों से ताकते हुए बोले—मैं एजेण्ट का गुलाम नहीं हूँ कि उससे डरूँ, कोई कारण नहीं है कि मैं उससे डरूँ, बिलकुल कारण नहीं है। मैं पोलिटिकल एजेण्ट की इसी लिए खातिर करता हूँ कि वह हिज मैजेस्टी का प्रतिनिधि है। मेरे और हिज़ मैजेस्टी के बीच में भाईचारा है, एजेन्ट केवल उनका दूत है। मैं केवल नीति का पालन कर रहा हूँ। मैं विलायत जाऊँ, तो हिज मैजेस्टी भी इसी तरह मेरा सत्कार करेंगे! मैं डरूँ क्यों? मैं अपने राज्य का स्वतन्त्र राजा हूँ। जिसे चाहूँ, फाँसी दे सकता हूँ। मैं किसीसे क्यों डरने लगा? डरना नामर्दों का काम है, मैं ईश्वर से भी नहीं डरता। डर क्या वस्तु है, यह मैंने आज तक नहीं जाना। मैं तुम्हारी तरह कालेज का मुँहफट छात्र नहीं हूँ कि क्रान्ति और आजादी की हाँक लगाता फिरूँ। तुम क्या जानो, क्रान्ति क्या चीज़ है? तुमने केवल उसका नाम सुन लिया है। उसके लाल दृश्य आँखों से नहीं देखे। बन्दूक की आवाज़ सुनकर तुम्हारा दिल काँप उठेगा। क्या तुम चाहते हो, मैं एजेण्ट से कहूँ—प्रजा तबाह है, आपके आने की ज़रूरत नहीं। मैं इतना आतिथ्य-शून्य नहीं हूँ। मैं अन्धा नहीं हूँ, अहमक नहीं हूँ। प्रजा की दशा का मुझे तुमसे कहीं अधिक ज्ञान है, तुमने उसे बाहर से देखा है, मैं उसे नित्य भीतर से देखता हूँ। तुम मेरी प्रजा को क्रान्ति का स्वप्न दिखाकर उसे गुमराह नहीं कर सकते। तुम मेरे राज्य में विद्रोह और असंतोष के बीज नहीं

बो सकते। तुम्हे अपने मुँह पर ताला लगाना होगा, तुम मेरे विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल सकते। चूँ भी नहीं कर सकते ... .

डूबते हुए सूरज की किरणें महराबी दीवानखाने के रंगीन शीशों से होकर राजा साहब के क्रोधोन्मत्त मुख मण्डल को और भी रंजित कर रही थीं। उनके बाल नीले हो गये थे, आँखें पीली, चेहरा लाल और देह हरी। मालूम होता था, प्रेतलोक का कोई पिशाच है। जयकृष्ण की सारी उद्दण्डता हवा हो गई। राजा साहब को इस उन्माद की दशा में उसने कभी न देखा था, लेकिन इसके साथ ही उसका आत्म-गौरव इस ललकार का जवाब देने के लिए व्याकुल हो रहा था। जैसे विनय का जवाब विनय है, वैसे ही क्रोध का जवाब क्रोध है, जब वह आतङ्क और भय, अदब और लिहाज़ के बन्धनों को तोड़कर निकल पड़ता है।

उसने भी राजा साहब को आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा—मैं अपनी आँखों से यह अत्याचार देखकर मौन नहीं रह सकता।

राजा साहब ने आवेश से खड़े होकर, मानो उसकी गरदन पर सवार होते हुए कहा - तुम्हें यहाँ ज़बान खोलने का कोई हक़ नहीं है!

'प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने का हक़ है। आप वह हक मुझसे नहीं छीन सकते!'

'मैं सब कुछ कर सकता हूँ।'

'आप कुछ नहीं कर सकते।'

'मैं तुम्हे अभी जेल मे बन्द कर सकता हूँ।'

'आप मेरा बाल भी नहीं बाँका कर सकते।'

इसी वक्त मि० मेहता बदहवास-से कमरे मे आये और जयकृष्ण की ओर कोप-भरी आँखें उठाकर बोले—कृष्णा—निकल जा यहाँ से, अभी मेरी आँखों से दूर हो जा, और खबरदार! फिर मुझे अपनी सूरत न दिखाना। मैं तुझ-जैसे कपूत का मुँह नहीं देखना चाहता। जिस थाल मे खाता है, उसी में छेद करता है, बेअदब कहीं का! अब अगर ज़बान खोली, तो मैं तेरा ख़ून पी जाऊँगा।

जयकृष्ण ने हिंसा-विक्षिप्त पिता को घृणा की आँखो से देखा और अकड़ता हुआ, गर्व से सिर उठाये, दीवानखाने के बाहर निकल गया।

राजा साहब ने कोच पर लेटकर कहा—बदमाश आदमी है, पल्ले सिरे का

बदमाश ! मैं नहीं चाहता कि ऐसा खतरनाक आदमी एक क्षण भी रियासत में रहे। तुम उससे जाकर कहो, इसी वक्त यहाँ से चला जाय ; वरना उसके हक़ में अच्छा न होगा। मैं केवल आपकी मुरौवत से ग़म खा गया, नहीं इसी वक्त उसे इसका मज़ा चखा सकता था। केवल आपकी मुरौवत ने हाथ पकड़ लिया। आपको तुरन्त निर्णय करना पड़ेगा, इस रियासत की दीवानी, या लड़का। अगर दीवानी चाहते हो, तो तुरन्त उसे रियासत से निकाल दो और कह दो कि फिर कभी मेरी रियासत मे पाँव न रखे। लड़के से प्रेम है, तो आज ही रियासत से निकल जाइए। आप यहाँ से कोई चीज़ नहीं ले जा सकते, एक पाई की भी चीज़ नहीं। जो कुछ है, वह रियासत की है। बोलिए, क्या मजूर है ?

मि० मेहता ने क्रोध के आवेश में जयकृष्ण को डाँट तो बतलाई थी, पर यह न समझे थे कि मामला इतना तूल खींचेगा। एक क्षण के लिए वह सन्नाटे मे आ गये। सिर झुकाकर परिस्थिति पर विचार करने लगे—राजा उन्हें मिट्टी मे मिला सकता है। वह यहाँ बिलकुल बेकस हैं, कोई उनका साथी नहीं, कोई उनकी फरियाद सुननेवाला नहीं। राजा उन्हे भिखारी छोड़ देगा ! इस अपमान के साथ निकाले जाने की कल्पना करके, वह काँप उठे। रियासत में उनके वैरियो की कमी न थी। सब-के-सब मूसलों ढोल बजायेंगे। जो आज उनके सामने भीगी बिल्ली बने हुए हैं, कल शेरों की तरह गुर्रायेंगे। फिर इस उमर मे अब उन्हे नौकर ही कौन रखेगा। निर्दयी ससार के सामने क्या फिर उन्हें हाथ फैलाना पड़ेगा ? नहीं, इससे तो यह कहीं अच्छा है कि वह यहीं पडे रहे। कम्पित स्वर मे बोले—मैं आज ही उसे घर से निकाल देता हूँ, अन्नदाता !

'आज नहीं, इसी वक्त !'

'इसी वक्त निकाल दूँगा।'

'हमेशा के लिए।'

'हमेशा के लिए।'

'अच्छी बात है जाइए, और आध घटे के अन्दर मुझे सूचना दीजिए।'

मि० मेहता घर चले, तो मारे क्रोध के उनके पाँव काँप रहे थे। देह में आग-सी लगी हुई थी। इस लौंडे के कारण आज उन्हे कितना अपमान सहना पडा। गधा चला है यहाँ अपने साम्यवाद का राग अलापने। अब बचा को मालूम होगा, ज़बान

पर लगाम न रखने का क्या नतीजा होता है। मैं क्यों उसके पीछे गली-गली ठोकरें खाऊँ ? हाँ, मुझे यह पद और सम्मान प्यारा है। क्यों न प्यारा हो। इसके लिए बरसों एड़ियाँ रगड़ी हैं, अपना खून और पसीना एक किया है। यह अन्याय बुरा जरूर लगता है, लेकिन बुरी लगने की यही एक बात तो नहीं है। और हजारों बातें भी तो बुरी लगती हैं। जब किसी बात का उपाय मेरे पास नहीं, तो इस मुआमले के पीछे क्यों अपनी ज़िन्दगी खराब करूँ।

उन्होंने घर मे आते-ही-आते पुकारा – जयकृष्ण !

सुनीता ने कहा—जयकृष्ण तो तुमसे पहले ही राजा साहब के पास गया था। तबसे यहाँ कब आया ?

'अब तक यहाँ नहीं आया ? वह तो मुझसे पहले ही चल चुका था !'

वह फिर बाहर आये और नौकरों से पूछना शुरू किया। अब भी उसका पता न था। मारे डर के कहीं छिप रहा होगा। और राजा ने आध घंटे में इत्तला देने का हुक्म दिया है। यह लौंडा न जाने क्या करने पर लगा हुआ है। आप तो जायगा ही, मुझे भी अपने साथ ले डूबेगा।

सहसा एक सिपाही ने एक पुरजा लाकर उनके हाथ मे रख दिया। अच्छा, यह तो जयकृष्ण की लिखावट है। क्या कहता है— इस दुर्दशा के बाद में इस रियासत मे एक क्षण भी नहीं रह सकता। मैं जाता हूँ। आपको अपना पद और मान अपनी आत्मा से ज्यादा प्रिय है, आप खुशी से उसका उपभोग कीजिए। मैं फिर आपको तकलीफ देने न आऊँगा। अम्माँ से मेरा प्रणाम कहिएगा।

मेहता ने पुरजा लाकर सुनीता को दिखाया और खिन्न होकर बोले—इसे न जाने कब समझ आयेगी, लेकिन बहुत अच्छा हुआ। अब लाला को मालूम होगा, दुनिया में किस तरह रहना चाहिए। बिना ठोकरें खाये आदमी की आँखें नहीं खुलतीं। मैं ऐसे तमाशे बहुत खेल चुका। अब इस खुराफात के पीछे अपना शेष जीवन नहीं बरबाद करना चाहता—और तुरन्त राजा साहब को सूचना देने चले।

(२)

दम-के दम मे सारी रियासत में यह समाचार फैल गया। जयकृष्ण अपने शील-स्वभाव के कारण जनता मे बड़ा प्रिय था। लोग बाज़ारों और चौरस्तों पर खड़े हो-होकर इस काण्ड पर आलोचना करने लगे—अजी, वह आदमी नहीं था भाई, उसे

भड़काना कोई भले आदमी का काम है ? जिस पत्तल में खाओ, उसीमें छेद करो। महाराज ने दीवान साहब का मुलाहज़ा किया, नहीं उसे हिरासत मे डलवा देते। अब बच्चा नहीं है। खासा पाँच हाथ का जवान है। सब कुछ देखता और समझता है। हम हाकिमों से बैर करें, तो कै दिन निबाह हो। उसका क्या बिगड़ता है। कहीं सौ-पचास की चाकरी पा जायगा। यहाँ तो करोड़ो की रियासत बरबाद हो जायगी।

सुनीता ने अचल फैलाकर कहा—महारानी बहुत सत्य कहतीं हैं, पर अब तो उसका अपराध क्षमा कीजिए। बेचारा लज्जा और भय के मारे घर नहीं गया। न-जाने किधर चला गया। हमारे जीवन का यही एक अवलम्बन है, महारानी! हम दोनों रो-रोकर मर जाएंगे। अञ्चल फैलाकर आपसे भीख माँगती हूँ, उसको क्षमा-दान दीजिए। माता के हृदय को आपसे ज्यादा और कौन समझेगा, आप महाराज से सिफारिश कर दें ...

महारानी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसकी ओर देखा, मानो वह कोई बड़ी अनोखी बात कह रही हो और अपने रँगे हुए ओठो पर अँगूठियों से जगमगाती हुई उँगली रखकर बोली—क्या कहती हो सुनीता देवी! उस युवक की महाराज से सिफारिश करूँ, जो हमारी जड़ खोदने पर तुला हुआ है ? आस्तीन में साँप पालूँ ? ना, मैं इसके बीच मे न पड़ूँगी। उसने जो बीज बोये है, उनका फल खाये। मेरा लड़का ऐसा नाखलफ होता, तो उसका मुँह न देखती। और, तुम ऐसे बेटे की सिफारिश करती हो!

सुनीता ने आँखो में आँसू भरकर कहा—महारानी, एसी बातें आपके मुँह से शोभा नहीं देतीं।

महारानी मसनद टेककर उठ बैठी, और तिरस्कार के स्वर में बोली—अगर तुमने सोचा था कि मैं तुम्हारे आँसू पोछूँगी, तो तुमने भूल की। हमारे द्रोही की सिफारिश लेकर हमारे ही पास आना, इसके सिवा और क्या है, कि तुम उसके अपराध को बाल-क्रीड़ा समझ रही हो। अगर तुमने उसके अपराध की भीषणता का ठीक अनुमान किया होता, तो मेरे पास कभी न आतीं। जिसने इस रियासत का नमक खाया हो, वह रियासत के द्रोही की पीठ सहलाये! वह स्वय राजद्रोही है। इसके सिवा और क्या कहूँ।

सुनीता भी गर्म हो गई। पुत्र-स्नेह म्यान के बाहर निकल आया, बोली—

राजा का कर्त्तव्य केवल अपने अफसरों को प्रसन्न करना नहीं है। प्रजा को पालने की ज़िम्मेदारी इससे कहीं बढ़कर है।

उसी समय महाराज ने कमरे में कदम रखा। रानी ने उठकर स्वागत किया और सुनीता सिर झुकाये निःस्पन्द खड़ी रह गई।

राजा ने व्यग्यपूर्ण मुस्कान के साथ पूछा—वह कौन महिला तुम्हें राजा के कर्तव्य का उपदेश दे रही थी ?

रानी ने सुनीता की ओर आँखें मारकर कहा—यह दीवान साहब की धर्मपत्नी हैं। राजा की त्योरियाँ चढ़ गईं। ओठ चबाकर बोले—जब माँ ऐसी पैनी छुरी है, तो लड़का क्यों न ज़हर का बुझाया हुआ हो! देवीजी, मैं तुमसे यह शिक्षा नहीं लेना चाहता कि राजा का अपनी प्रजा के साथ क्या धर्म है। यह शिक्षा मुझे कई पीढ़ियों से मिलती चली आई है। बेहतर हो कि तुम किसीसे यह शिक्षा प्राप्त कर लो कि स्वामी के प्रति उसके सेवक का क्या धर्म है, और जो नमकहराम है, उसके साथ स्वामी को कैसा व्यवहार करना चाहिए।

यह कहते हुए राजा साहब उसी उन्माद की दशा में बाहर चले गये। मि० मेहता घर जा रहे थे कि राजा साहब ने कठोर स्वर में पुकारा—सुनिए मि० मेहता, आपके सपूत तो बिदा हो गये; लेकिन मुझे अभी मालूम हुआ कि आपकी देवीजी राजद्रोह के मैदान में उनसे भी दो कदम आगे हैं; बल्कि मैं तो कहूँगा, वह केवल रेकर्ड है, जिसमें देवीजी की ही आवाज़ बोल रही है। मैं नहीं चाहता कि जो व्यक्ति रियासत का सचालक हो, उसके साये में रियासत के विद्रोहियों को आश्रय मिले। आप खुद इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते। यह हरगिज़ मेरा अन्याय न होगा, यदि मैं यह अनुमान कर लूँ कि आप ही ने यह मन्त्र फूँका है।

मि० मेहता अपनी स्वामि-भक्ति पर यह आक्षेप न सह सके। व्यथित कठ से बोले—यह तो मैं किस ज़बान से कहूँ कि दीनबन्धु इस विषय में मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं, लेकिन मैं सर्वदा निर्दोष हूँ और मुझे यह देखकर दुःख होता है कि मेरी वफादारी पर यों सदेह किया जा रहा है।

'वफादारी केवल शब्दो से नहीं होती।'

'मेरा खयाल है कि मैं उसका प्रमाण दे चुका।'

'नयी-नयी दलीलों के लिए नये-नये प्रमाणो की जरूरत है। आपके पुत्र के लिए

जो दण्ड-विधान था, वही आपकी स्त्री के लिए भी है। मैं इसमें किसी तरह का उज्र नहीं चाहता। और इसी वक्त इस हुक्म को तामील होनी चाहिए।

'लेकिन दीनानाथ...'

'मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।'

'मुझे कुछ निवेदन करने की आज्ञा न मिलेगी?'

'बिलकुल नहीं, यह मेरा आखिरी हुक्म है।'

मि० मेहता यहाँ से चले, तो उन्हे सुनीता पर बेहद गुस्सा आ रहा था। इन सभी को न-जाने क्या सनक सवार हो गई है। जयकृष्ण तो ख़ैर बालक है, बेसमझ है, इस बुढ़िया को क्या सूझी? न-जाने रानी साहब से जाकर क्या कह आई। किसी को मुझसे हमदर्दी नहीं, सब अपनी-अपनी धुन में मस्त हैं। किस मुसीबत से मैं अपनी ज़िन्दगी के दिन काट रहा हूँ,' यह कोई नहीं समझता। कितनी निराशा और विपत्तियों के बाद यहाँ ज़रा निश्चिन्त हुआ था कि इन सभों ने यह नया तूफ़ान खड़ा कर दिया। न्याय और सत्य का ठीका क्या हमीं ने लिया है? यहाँ भी वही हो रहा है, जो सारी दुनिया मे हो रहा है। कोई नयी बात नहीं है। ससार में दुर्बल और दरिद्र होना पाप है। इसकी सज़ा से कोई बच ही नहीं सकता। बाज़ कबूतर पर कभी दया नहीं करता। सत्य और न्याय का समर्थन मनुष्य की सज्जनता और सभ्यता का एक अग है, बेशक। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता; लेकिन जिस तरह और सभी प्राणी केवल मुख से इसका समर्थन करते है, क्या उसी तरह हम भी नहीं कर सकते? और जिन लोगों का पक्ष लिया जाय, वे भी तो कुछ इसका महत्त्व समझें। आज राजा साहब इन्हीं बेगारों से जरा हँसकर बातें करें, तो वे अपने सारे दुखड़े भूल जायँगे और उल्टे हमारे ही शत्रु बन जायँगे। शायद सुनीता महारानी के पास जाकर अपने दिल का बुखार निकाल आई है। गधी यह नहीं समझती कि दुनिया में किसी तरह मान-मर्यादा का निर्वाह करते हुए जिन्दगी काट लेना ही हमारा धर्म है। अगर भाग्य मे यश और कीर्ति बदी होती, तो इस तरह दूसरों की गुलामी क्यों करता, लेकिन समस्या यह है कि इसे भेजूँ कहाँ? मैके में कोई है नहीं, मेरे घर में कोई है नहीं। उँह! अब मैं इस चिन्ता मे कहाँ तक मरूँ? जहाँ जी चाहे जाय, जैसा किया है वैसा भोगे।

वह इसी क्षोभ और ग्लानि की दशा मे घर मे गये और सुनीता से बोले—

आखिर तुम्हें भी वही पागलपन सूझा, जो उस लौंडे को सूझा था। मैं कहता हूँ, आखिर तुम्हें कभी समझ आयेगी या नहीं ? क्या सारे ससार के सुधार का बोड़ा हमीं ने उठाया है ? कौन राजा ऐसा है, जो अपनी प्रजा पर जुल्म न करता हो, उनके स्वत्वों का अपहरण न करता हो ; राजा ही क्यों, हम तुम सभी तो दूसरों पर अन्याय कर रहे हैं। तुम्हे क्या हक़ है कि तुम दर्जनों खिदमतगार रखो और उन्हें ज़रा-जरा-सी बात पर सजा दो ? न्याय और सत्य निरर्थक शब्द हैं, जिनकी उपयोगिता इसके सिवा और कुछ नहीं कि बुद्धुओं की गर्दन मारी जाय और समझदारों की वाह-वाह हो। तुम और तुम्हारा लड़का उन्हीं बुद्धुओं में हैं। और इसका दण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा। महाराज का हुक्म है कि तुम तीन घटे के अन्दर रियासत से निकल जाओ, नहीं पुलिस आकर तुम्हे निकाल देगी। मैंने तो तय कर लिया है कि राजा साहब की इच्छा के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से न निकालूँगा। न्याय का पक्ष लेकर देख लिया। हैरानी और अपमान के सिवा और कुछ हाथ न आया। जिनकी मैंने हिमायत की थी, वे आज भी उसी दशा में हैं; बल्कि उससे भी और बदतर। मै साफ कहता हूँ कि मैं तुम्हारी उद्दण्डताओं का तावान देने के लिए तैयार नहीं। मैं गुप्त रूप से तुम्हारी सहायता करता रहूँगा। इसके सिवा मैं और कुछ नहीं कर सकता।

सुनीता ने गर्व के साथ कहा—मुझे तुम्हारी सहायता की ज़रूरत नहीं। कहीं भेद खुल जाय, तो दीन बन्धु तुम्हारे ऊपर कोप का वज्र गिरा दें। तुम्हें अपना पद और सम्मान प्यारा है। उसका आनन्द से उपभोग करो। मेरा लड़का और कुछ न कर सकेगा, तो पाव-भर आटा तो कमा ही लायगा। मैं भी देखूँगी कि तुम्हारी यह स्वामिभक्ति कब तक निभती है और कब तक तुम अपनी आत्मा की हत्या करते हो।

मेहता ने तिलमिलाकर कहा—तुम क्या चाहती हो कि फिर उसी तरह चारों तरफ ठोकरें खाता फिरूँ ?

सुनीता ने घाव पर नमक छिड़का—नहीं, कदापि नहीं, अब तक तो मैं समझती थी, तुम्हें ठोकरें खाने मे मज़ा आता है, और पद और अधिकार से भी मूल्यवान् कोई वस्तु तुम्हारे पास है, जिसकी रक्षा के लिए तुम ठोकरें खाना अच्छा समझते हो। अब मालूम हुआ, तुम्हे अपना पद अपनी आत्मा से भी प्रिय है। फिर क्यों ठोकरें खाओ ; मगर कभी-कभी अपना कुशल-समाचार तो भेजते रहोगे, या राजा साहब की आज्ञा लेनी पड़ेगी ?

'राजा साहब इतने न्याय-शून्य हैं कि मेरे पत्र-व्यवहार में रोक-टोक करें ?'

'अच्छा ! राजा साहब में इतनी आदमीयत है ? मुझे तो विश्वास नहीं आता।'

'तुम अब भी अपनी ग़लती पर लज्जित नहीं हो ?'

'मैंने कोई ग़लती नहीं की। मैं तो ईश्वर से चाहती हूँ कि जो मैंने आज किया, वह बार-बार करने का मुझे अवसर मिले।'

मेहता ने अरुचि के साथ पूछा—तुमने कहाँ जाने का इरादा किया है ?

'जहन्नुम में !'

'ग़लती आप करती हो, गुस्सा मुझ पर उतारती हो ?'

'मैं तुम्हें इतना निर्लज्ज न समझती थी !'

'मैं भी इसी शब्द का तुम्हारे लिए प्रयोग कर सकता हूँ।'

'केवल मुख से, मन से नहीं।'

मि० मेहता लज्जित हो गये।

(३)

जब सुनीता की विदाई का समय आया, तो स्त्री-पुरुष दोनों खूब रोये और एक तरह से सुनीता ने अपनी भूल स्वीकार कर ली। वास्तव में इस बेकारी के दिनों में मेहता ने जो कुछ किया, वही उचित था, बेचारे कहाँ मारे-मारे फिरते।

पॉलिटिकल एजेण्ट साहब पधारे और कई दिनों तक खूब दावतें खाईं। और खूब शिकार खेला। राजा साहब ने उनकी तारीफ की। उन्होंने राजा साहब की तारीफ की। राजा साहब ने उन्हें अपनी लायलटी का विश्वास दिलाया, उन्होंने सतिया राज्य को आदर्श कहा और राजा साहब को न्याय और सेवा का अवतार स्वीकार किया ; और तीन दिन में रिसायत को ढाई लाख की चपत देकर विदा हो गये।

मि० मेहता का दिमाग़ आसमान पर था। सभी उनकी कारगुज़ारी की प्रशंसा कर रहे थे। एजेण्ट साहब तो उनकी दक्षता पर मुग्ध हो गये। उन्हें 'राय साहब' की उपाधि मिली और उनके अधिकारों में भी वृद्धि हुई। उन्होंने अपनी आत्मा को उठाकर ताख पर रख दिया था। उनकी यह साधना कि महाराज और एजेण्ट दोनों उनसे प्रसन्न रहें, सम्पूर्ण रीति से पूरी हो गई। रियासत में ऐसा स्वामि-भक्त सेवक दूसरा न था।

राजा साहब अब कम-से-कम तीन साल के लिए निश्चिन्त थे। एजेण्ट खुश है, तो फिर किसका भय ! कामुकता और लम्पटता और भाँति-भाँति के दुर्व्यसनों की लहर प्रचण्ड हो उठी। सुन्दरियों की टोह लगाने के लिए सुराग़-रसानी का एक विभाग खुल गया, जिसका सम्बन्ध सीधे राजा साहब से था। एक बूढ़ा खुर्राट, जिसका पेशा हिमालय की परियों को फँसाकर राजाओं को लूटना था, और जो इसी पेशे की बदौलत राज-दरबारों में पुजता था, इस विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया। नयी-नयी चिड़ियाँ आने लगीं। भय और लोभ और सम्मान, सभी अस्त्रों से शिकार खेला जाने लगा, लेकिन एक ऐसा अवसर भी पड़ा, जहाँ इस तिकड़म की सारी सामूहिक और वैयक्तिक चेष्टाएँ निष्फल हो गईं और गुप्त-विभाग ने निश्चय किया कि इस बालिका को किसी तरह उड़ा लाया जाय। और इस महत्त्व-पूर्ण कार्य के सम्पादन का भार मि० मेहता पर रखा गया, जिनसे ज़्यादा स्वामि-भक्त सेवक रियासत मे दूसरा न था। उनके ऊपर महाराजा साहब को पूरा विश्वास था। दूसरों के विषय मे सन्देह था कि कहीं रिशवत लेकर शिकार बहका दें, या भण्डाफोड़ कर दें, या अमानत में खयानत कर बैठें। मेहता की ओर से किसी तरह की उन बातो की शका न थी। रात को नौ बजे उनकी तलबी हुई—अन्नदाता ने हजूर को याद किया है।

मेहता साहब ड्योढ़ी पर पहुँचे, तो राजा साहब पाईबाग़ में टहल रहे थे। मेहता को देखते ही बोले—आइए मि० मेहता, आपसे एक ख़ास बात में सलाह लेनी है। यहाँ कुछ लोगो की राय है कि सिंहद्वार के सामने आपकी एक प्रतिमा स्थापित की जाय, जिससे चिरकाल तक आपकी यादगार क़ायम रहे। आपको तो शायद इसमें कोई आपत्ति न होगी। और यदि हो भी, तो लोग इस विषय मे आपकी अवज्ञा करने पर भी तैयार हैं। सतिया की आपने जो अमूल्य सेवा की है, उसका पुरस्कार तो कोई क्या दे सकता है; लेकिन जनता के हृदय मे आपसे जो श्रद्धा है, उसे तो वह किसी-न-किसी रूप में प्रकट ही करेगी।

मेहता ने बड़ी नम्रता से कहा—यह अन्नदाता की गुण-ग्राहकता है, मैं तो एक तुच्छ सेवक हूँ। मैंने जो कुछ किया, वह इतना ही है कि नमक का हक अदा करने का सदैव प्रयत्न किया; मगर मैं इस सम्मान के योग्य नहीं हूँ।

राजा साहब ने कृपालु भाव से हँसकर कहा—आप योग्य हैं या नहीं, इसका निर्णय आपके हाथ मे नहीं है मि० मेहता, आपकी दीवानी यहाँ न चलेगी। हम

आपका सम्मान नहीं कर रहे हैं, अपनी भक्ति का परिचय दे रहे हैं। थोड़े दिनों में न हम रहेंगे, न आप रहेंगे, उस वक्त भी यह प्रतिमा अपनी मूक वाणी से कहती रहेगी कि पिछले लोग अपने उद्धारकों का आदर करना जानते थे। मैंने लोगों से कह दिया है कि चन्दा जमा करें। एजेण्ट ने अबकी जो पत्र लिखा है, उसमें आपको खास तौर से सलाम लिखा है।

मेहता ने जमीन में गड़कर कहा--यह उनकी उदारता है, मैं तो जैसा आपका सेवक हूँ, वैसा उनका भी सेवक हूँ।

राजा साहब कई मिनट तक फूलों की बहार देखते रहे। फिर इस तरह बोले, मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो--तहसील खास में एक गाँव लगनपुर है, आप कभी वहाँ गये हैं?

'हाँ अन्नदाता, एक बार गया हूँ, वहाँ एक धनी साहूकार है। उसीके दीवान-खाने में ठहरा था। अच्छा आदमी है।'

'हाँ, ऊपर से बहुत अच्छा आदमी है, लेकिन अन्दर से पक्का पिशाच। आपको शायद मालूम न हो, इधर कुछ दिनों से महारानी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है और मैं सोच रहा हूँ कि उन्हें किसी सैनेटोरियम में भेज दूँ। वहाँ सब तरह की चिन्ताओं-झंझटों से मुक्त होकर वह आराम से रह सकेंगी; लेकिन रनिवास में एक नारी का रहना लाजिम है। अफसरों के साथ उनकी लेडियाँ भी आती हैं, और भी कितने अंग्रेज मित्र अपनी लेडियों के साथ मेरे मेहमान होते रहते हैं। कभी राजे-महाराजे भी रानियों के साथ आ जाते हैं। रानी के बगर लेडियों का आदर-सत्कार कौन करेगा? मेरे लिए यह वैयक्तिक प्रश्न नहीं, राजनैतिक समस्या है, और शायद आप भी मुझसे सहमत होंगे, इसलिए मैंने दूसरी शादी करने का इरादा कर लिया है। इस साहूकार की एक लड़की है, जो कुछ दिनों अजमेर में शिक्षा पा चुकी है। मैं एक बार उस गाँव से होकर निकला, तो मैंने उसे अपने घर की छत पर खड़े देखा। मेरे मन में तुरन्त भावना उठी कि अगर यह रमणी रनिवास में आ जाय तो रनिवास की शोभा बढ़ जाय। मैंने महारानी की अनुमति लेकर साहूकार के पास सदेशा भेजा, किन्तु मेरे द्रोहियों ने उसे कुछ ऐसी पट्टी पढा दी कि उसने मेरा सदेशा स्वीकार न किया। कहता है, कन्या का विवाह हो चुका है। मैंने कहला भेजा, इसमें कोई हानि नहीं, मैं तावान देने को तैयार हूँ,

लेकिन वह दुष्ट बराबर इन्कार किये जाता है। आप जानते हैं प्रेम असाध्य रोग है। आपको भी शायद इसका कुछ-न-कुछ अनुभव हो। बस, यह समझ लीजिए कि जीवन निरानन्द हो रहा है। नींद और आराम हराम है। भोजन से अरुचि हो गई है। अगर कुछ दिन यही हाल रहा, तो समझ लीजिए कि मेरी जान पर बन आयगी। सोते-जागते वही मूर्ति आँखों के सामने नाचती रहती है। मन को समझा-कर हार गया और अब विवश होकर मैंने कूटनीति से काम लेने का निश्चय किया है। प्रेम और समर में सब कुछ क्षम्य है। मै चाहता हूँ, आप थोड़े-से मातबर आदमियों को लेकर जायँ और उस रमणी को किसी तरह ले आयें। खुशी से आये खुशी से, बल से आये बल से, इसकी चिन्ता नहीं। मैं अपने राज्य का मालिक हूँ। इसमें जिस वस्तु पर मेरी इच्छा हो, उस पर किसी दूसरे व्यक्ति का नैतिक या समाजिक स्वत्व नहीं हो सकता। यह समझ लीजिए कि आप ही मेरे प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। कोई दूसरा ऐसा आदमी नहीं है, जो इस काम को इतने सुचारु-रूप से पूरा कर दिखाये। आपने राज्य की बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं। यह उस यज्ञ की पूर्णाहुति होगी और आप जन्म-जन्मान्तर तक राजवंश के इष्टदेव समझे जायँगे।

मि० मेहता का मरा हुआ आत्म-गौरव एकाएक सचेत हो गया। जो रक्त चिर-काल से प्रवाह-शून्य हो गया था, उसमें सहसा उद्रेक हो उठा। त्योरियाँ चढ़ाकर बोले — तो आप चाहते हैं, मैं उसे किडनैप करूँ?

राजा साहब ने उनके तेवर देखकर आग पर पानी डालते हुए कहा—कदापि नहीं मि० मेहता, आप मेरे साथ घोर अन्याय कर रहे हैं। मैं आपको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेज रहा हूँ। कार्य-सिद्धि के लिए आप जिस नीति से चाहे काम ले सकते हैं। आपको पूरा अधिकार है।

मि० मेहता ने और भी उत्तेजित होकर कहा — मुझसे ऐसा पाजीपन नहीं हो सकता।

राजा साहब की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

'अपने स्वामी का आज्ञा-पालन करना पाजीपन है?'

'जो आज्ञा नीति और धर्म के विरुद्ध हो, उसका पालन करना बेशक पाजी-पन है।'

'किसी स्त्री से विवाह का प्रस्ताव करना नीति और धर्म के विरुद्ध है?'

'इसे आप विवाह कहकर 'विवाह' शब्द को कलंकित करते हैं। यह बलात्कार है।'

'आप अपने होश में हैं?

'खूब अच्छी तरह!'

'मैं आपको धूल में मिला सकता हूँ!'

'तो आपकी गद्दी भी सलामत न रहेगी!'

'मेरी नेकियों का यही बदला है, नमकहराम!'

'आप अब शिष्टता की सीमा से आगे बढ़े जा रहे हैं, राजा साहब! मैंने अब तक अपनी आत्मा की हत्या की है और आपके हरएक जा और बेजा हुक्म की तामील की है, लेकिन आत्मसेवा की भी एक हद होती है, जिसके आगे कोई भला आदमी नहीं जा सकता। आपका यह कृत्य जघन्य है और इसमें जो व्यक्ति आपका सहायक हो, वह इसी योग्य है कि उसकी गर्दन काट ली जाय। मैं ऐसी नौकरी पर लानत भेजता हूँ।'

यह कहकर वह घर आये और रातों-रात बोरिया बकचा समेटकर रियासत से निकल गये, मगर इसके पहले सारा वृत्तान्त लिखकर एजेण्ट के पास भेज दिया।

मुफ़्त का यश

उन दिनों संयोग से हाकिम-ज़िला एक रसिक सज्जन थे। इतिहास और पुराने सिक्कों की खोज में उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली। ईश्वर जाने दफ्तर के सूखे कामों से उन्हें ऐतिहासिक छान-बीन के लिए कैसे समय मिल जाता था। यहाँ तो जब किसी अफसर से पूछिए, तो वह यही कहता है—'मारे काम के मरा जाता हूँ, सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती।' शायद शिकार और सैर भी उनके काम में शामिल है। उन सज्जन की कीर्तियाँ मैंने देखी थीं और मन में उनका आदर करता था, लेकिन उनकी अफसरी किसी प्रकार की घनिष्ठता में बाधक थी। मुझे यह संकोच था कि अगर मेरी ओर से पहले हुई, तो लोग यही कहेंगे कि इसमें मेरा कोई स्वार्थ है, और मैं किसी दशा में भी यह इलजाम अपने सिर नहीं लेना चाहता। मैं तो हुक्काम की दावतों और सार्वजनिक उत्सवों में नेवता देने का भी विरोधी हूँ, और जब कभी सुनता हूँ कि किसी अफसर को किसी आम जलसे का सभापति बनाया गया, या कोई स्कूल या औषधालय या विधवाश्रम किसी गवर्नर के नाम से खोला गया, तो अपने देश-बन्धुओं की दास-मनोवृत्ति पर घण्टों अफसोस करता हूँ। मगर जब एक दिन हाकिम-जिला ने खुद मेरे नाम एक रुक्का भेजा कि मैं आपसे मिलना चाहता हूँ, क्या आप मेरे बङ्गले पर आने का कष्ट स्वीकार करेंगे, तो मैं बड़े दुबिधे में पड़ गया। क्या जवाब दूँ? अपने दो-एक मित्रों से सलाह ली। उन्होंने कहा—'साफ लिख दीजिए, मुझे फुरसत नहीं। वह हाकिम-जिला होंगे, तो अपने घर के होंगे। कोई सरकारी या जाब्ते का काम होता, तो आपका जाना अनिवार्य था; लेकिन निजी मुलाकात के लिए जाना आपकी शान के खिलाफ है। आखिर वह खुद आपके मकान पर क्यों नहीं आये? इससे क्या उनकी शान में बट्टा लगा जाता था, इसी लिए तो खुद नहीं आये कि वह हाकिम-ज़िला हैं। इन अहमक हिन्दुस्तानियों को कब यह समझ आयेगी कि दफ्तर के बाहर वे भी वैसे ही साधारण मनुष्य हैं, जैसे हम या

आप। शायद यह लोग अपनी घरवालियों से भी अफसरी जताते होंगे। अपना पद उन्हें कभी नहीं भूलता।'

एक मित्र ने, जो लतीफों के चलते-फिरते तिजोरी हैं, हिन्दुस्तानी अफसरों के विषय में कई मनोरञ्जक घटनाएँ सुनाईं। एक अफसर साहब ससुराल गये। शायद स्त्री को विदा कराना था। जैसा आम रिवाज है, ससुरजी ने पहले ही वाढे पर लड़की को विदा करना उचित न समझा। कहने लगे—बेटा, इतने दिनों के बाद आई है, अभी कैसे विदा कर दूँ? भला छ महीने तो रहने दो। उधर धर्मपत्नीजी ने भी नाइन से सदेशा कहला भेजा—अभी मैं नहीं जाना चाहती। आखिर माता-पिता से भी तो मेरा कोई नाता है! कुछ तुम्हारे हाथ बिक थोड़े ही गई हूँ। दामाद साहब अफसर थे, जामे से बाहर हो गये। तुरन्त घोड़े पर बैठे और सदर की राह ली। दूसरे ही दिन ससुरजी पर सम्मन जारी कर दिया। बेचारा बूढा आदमी तुरन्त लड़की को साथ लेकर दामाद की सेवा मे जा पहुँचा। तब जाके उसकी जान बची। यह लोग ऐसे मिथ्याभिमानी होते हैं। और फिर तुम्हें हाकिम-जिला से लेना ही क्या है, अगर तुम कोई विद्रोहात्मक गल्प या लेख लिखोगे, तो फौरन् गिरफ्तार कर लिये जाओगे। हाकिम-जिला ज़रा भी मुरौवत न करेंगे। कह देंगे—यह गवर्नमेंट का हुक्म है, मै क्या करूँ। अपने लडके के लिए कानूनगोई या नायब तहसीलदारी की लालसा तुम्हे है नहीं, व्यर्थ क्यों दौड़े जाओगे।

लेकिन, मुझे मित्रों की यह सलाह पसन्द न आई। एक भला आदमी जब निमन्त्रण देता है, तो उसे केवल इसलिए अस्वीकार कर देना कि हाकिम-जिला ने भेजा है, मुटमर्दी है। बेशक हाकिम साहब मेरे घर आ जाते, तो उनकी शान कम न होती। उदार हृदयवाला आदमी बेतकल्लुफ चला आता, लेकिन भाई, जिले की अफसरी बड़ी चीज़ है। और एक उपन्यासकार की हस्ती ही क्या है। इङ्गलैंड या अमेरिका में गल्प-लेखकों और उपन्यासकारों की मेज पर निमन्त्रित होने मे प्रधान मन्त्री भी अपना गौरव समझेगा, हाकिम-जिला को तो गिनती ही क्या है, लेकिन यह भारतवर्ष है, जहाँ हरएक रईस के दरबार में कवि-सम्राटों का एक जत्था रईस के कीर्तिगान के लिए जमा रहता था और आज भी ताजपोशी में हमारे लेखकवृन्द बिना बुलाये राजाओं की खिदमत में हाजिर होते हैं, कसीदे पेश करते हैं और इनाम के लिए हाथ पसारते हैं। तुम ऐसे कहाँ के बड़े वह हो कि हाकिम-जिला तुम्हारे

घर चला आये। जब तुम मे इतनी अकड़ और तुनुकमिजाजो है, तो वह तो जिले का बादशाह है; अगर उसे कुछ अभिमान भी हो, तो उचित है। इसे उसको कमज़ोरी कहो, बेहूदगी कहो, मूर्खता कहो, उजड्ता कहो, फिर भी उचित है। देवता होना गर्व की बात है; लेकिन मनुष्य होना भी अपराध नहीं।

और मैं तो कहता हूँ—ईश्वर को धन्यवाद दो कि हाकिम-ज़िला तुम्हारे घर नहीं आये; वरना तुम्हारी कितनी भद होती। उनके आदर-सत्कार का सामान तुम्हारे पास कहाँ था? गत को एक कुरसी भी तो नहीं है। उन्हें क्या तीन टाँगवाले सिंहासन पर बैठाते या मटमैले जाजिम पर? तीन पैसे की चौबीस बीड़ियाँ पीकर दिल खुश कर लेते हो। है सामर्थ्य रुपये के दो सिगार खरीदने की? तुम तो इतना भी नहीं जानते, वह सिगार मिलता कहाँ है, उसका नाम क्या है। अपना भाग्य सराहो कि अफसर साहब तुम्हारे घर नहीं आये और तुम्हें बुला लिया। चार-पाँच रुपये बिगड़ भी जाते और लज्जित भी होना पड़ता। और कहीं तुम्हारे परम दुर्भाग्य और पापों के दण्ड-स्वरूप उनकी धर्म-पत्नी भी उनके साथ होतीं, तब तो तुम्हें धरती में समा जाने के सिवा और कोई ठिकाना न था। तुम या तुम्हारी धर्मपत्नी उस महिला का सत्कार कर सकती थी? तुम्हारी तो घिग्घी बँध जातो साहब, बदहवास हो जाते! वह तुम्हारे दीवानखाने तक ही न रहती, जिसे तुमने गरीबामऊ ढङ्ग से सजा रखा है। वहाँ तुम्हारी ग़रीबी अवश्य है, पर फूहड़पन नहीं। अन्दर तो पग-पग पर फूहड़पन के दृश्य नज़र आते। तुम अपने घर में फटे-पुराने पहनकर और अपनी विपन्नता में मगन रहकर जिन्दगी बसर कर सकते हो, लेकिन कोई भी आत्माभिमानो आदमी यह पसन्द नहीं कर सकता कि उसकी दुरवस्था दूसरों के लिए विनोद की वस्तु बने। इन लेडी साहबा के सामने तो तुम्हारी ज़बान बन्द हो जाती।

चुनाचे मैंने हाकिम-ज़िला का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और यद्यपि उनके स्वभाव में कुछ अनावश्यक अफसरी की शान थी; लेकिन उनके स्नेह और उदारता ने उसे यथासाध्य प्रकट न होने दिया। कम-से-कम उन्होंने मुझे शिकायत का कोई मौका न दिया। अफसराना प्रकृति को तबदील करना उनकी शक्ति के बाहर था।

मैंने, इस प्रसंग को कोई महत्त्व देने की कोई बात भी न थी, महत्त्व न दिया। उन्होंने मुझे बुलाया, मैं चला गया। कुछ गप-शप किया और लौट आया। किसीसे इसका ज़िक्र करने की ज़रूरत ही क्या। मानो भाजी खरीदने बाज़ार गया था।

लेकिन टोहियों ने जाने कैसे टोह लगा लिया। विशेष समुदायों में यह चर्चा होने लगी कि हाकिम-जिला से मेरी बड़ी गहरी मैत्री है, और वह मेरा बड़ा सम्मान करते हैं। अतिशयोक्ति ने मेरा सम्मान और भी बढा दिया। यहाँ तक मशहूर हुआ कि वह मुझसे सलाह लिये बगैर कोई फैसला या रिपोर्ट नहीं लिखते।

कोई समझदार आदमी इस ख्याति से लाभ उठा सकता था। स्वार्थ मे आदमी बावला हो जाता है। तिनके का सहारा ढूँढता फिरता है। ऐसों को विश्वास दिलाना कुछ मुश्किल न था कि मेरे द्वारा उनका काम निकल सकता है, लेकिन मैं ऐसी बातों से घृणा करता हूँ। सैकड़ो व्यक्ति अपनी कथाएँ लेकर मेरे पास आये। किसीके साथ पुलिस ने बेजा ज्यादती की थी। कोई इन्कमटैक्सवालों की सख्तियों से दुखी था, किसीकी यह शिकायत थी कि दफ्तर मे उसकी हकतलफी हो रही है और उसके पीछे के आदमियों को दनादन तरक्कियाँ मिल रही हैं। उसका नम्बर आता है, तो कोई परवाह नहीं करता। इस तरह का कोई-न-कोई प्रसग नित्य ही मेरे पास आने लगा, लेकिन मेरे पास उन सबके लिए एक ही जवाब था—मुझसे कोई मतलब नहीं।

एक दिन मैं अपने कमरे मे बैठा था कि मेरे बचपन के एक सहपाठी मित्र आ टपके। हम दोनो एक ही मकतब में पढने जाया करते थे। कोई ४५ साल की पुरानी बात है। मेरी उम्र ८-९ साल से अधिक न थी। वह भी लगभग इसी उम्र के रहे होंगे, लेकिन मुझसे कहीं बलवान् और हृष्ट-पुष्ट। मैं ज़हीन था, वह निरे कौदन। मौलवी साहब उनसे हार गये थे। और उन्हे सबक पढाने का भार मुझ पर डाल दिया था। अपने से दुगुने व्यक्ति को पढाना मैं अपने लिए गौरव की बात समझता था और खूब मन लगाकर पढाता था। फल यह हुआ कि मौलवी साहब की छड़ी जहाँ असफल रही, वहाँ मेरा प्रेम सफल हो गया। बलदेव चल निकला, खालिक़बारी तक जा पहुँचा, मगर इस बीच मे मौलवी साहब का स्वर्गवास हो गया और वह शाखा टूट गई। उनके छात्र भी इधर उधर हो गये। तबसे बलदेव को मैंने केवल दो-तीन बार रास्ते मे देखा, (मैं अब भी वही सींकिया पहलवान हूँ, वह अब भी वही भीमकाय) राम-राम हुई, क्षेम-कुशल पूछा और अपनी-अपनी राह चले गये।

मैंने उनसे हाथ मिलाते हुए कहा—आओ भाई बलदेव, मजे मे तो हो? कैसे याद किया? क्या करते हो आजकल?

बलदेव ने व्यथित कण्ठ से कहा—जिन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं भाई, और

क्या। तुमसे मिलने की बहुत दिनों से इच्छा थी। याद करो वह मकतबवाली बात, जब तुम मुझे पढ़ाया करते थे। तुम्हारी बदौलत चार अक्षर पढ गया और अपनी ज़मींदारी का काम सँभाल लेता हूँ, नहीं मूरख ही बना रहता। तुम मेरे गुरु हो भाई, सच कहता हूँ। मुझ-जैसे गधे को पढाना तुम्हारा ही काम था। न-जाने क्या बात थी कि मौलवी साहब से सबक पढकर अपनी जगह पर आया नहीं कि बिलकुल साफ। तुम जो पढाते थे, वह बिना याद किये ही याद हो जाता था। तुम तब भी बड़े जहीन थे।

यह कहकर उन्होंने मुझे सगर्व नेत्रों से देखा।

मैं बचपन के साथियों को देखकर फूल उठता हूँ। सजल नेत्र होकर बोला— मैं तो जब तुम्हें देखता हूँ, तो यही जी में आता है कि दौड़कर तुम्हारे गले लिपट जाऊँ। ४५ वर्ष का युग मानो बिलकुल गायब हो जाता है। वह मकतब आँखो के सामने फिरने लगता है, और बचपन सारी मनोहरताओं के साथ ताजा हो जाता है।

बलदेव ने भी द्रवित कण्ठ से उत्तर दिया—मैंने तो भाई, तुम्हें सदैव अपना इष्टदेव समझा है। जब तुम्हें देखता हूँ, तो छाती गज-भर की हो जाती है कि वह मेरा बचपन का सगी जा रहा है, जो समय आ पड़ने पर कभी दगा न देगा। तुम्हारी बडाई सुन-सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो जाता हूँ; लेकिन यह बताओ, क्या तुम्हें खाना नहीं मिलता? कुछ खाते-पीते क्यों नहीं? सूखते क्यों जाते हो? घी न मिलता हो, तो दो-चार कनस्टर भिजवा दूँ। अब तुम भी बूढ़े हुए, खूब डटकर खाया करो। अब तो देह मे जो कुछ तेज और बल है, वह केवल भोजन के अधीन है। मैं तो अब भी सेर-भर दूध और पाव-भर घी उडाये जाता हूँ। इधर थोडा मक्खन भी खाने लगा हूँ। जिन्दगी-भर बाल-बच्चों के लिए मर मिटे, अब कोई यह भी नहीं पूछता, तुम्हारी तबीयत कैसी है; अगर आज खटिया डाल दूँ, तो कोई एक लोटे पानी को न पूछे, इसलिए खूब खाता हूँ और सबसे ज्यादा काम करता हूँ। घर पर अपना रोब बना हुआ है। वही जो तुम्हारा जेठा लड़का है, उस पर पुलिस ने एक झूठा मुकदमा चला दिया है। जवानी के मद में किसीको कुछ समझता नहीं। है भी अच्छा खासा पहलवान। दारोगाजी से एक बार कुछ कहा-सुनी हो गई। तबसे घात में लगे हुए थे। इधर गाँव मे एक डाका पड़ गया। दारोगाजी ने तहकीकात में उसे भी फाँस लिया। आज एक सप्ताह से हिरासत मे है। मुकदमा मुहम्मद खलील डिप्टी

के इजलास में है और मुहम्मद खलील और दारोग़ाजी की दाँत-काटी रोटी है। अवश्य सज़ा हो जायगी। अब तुम्हीं बचाओ, तो उसकी जान बच सकती है। और कोई आशा नहीं। सज़ा तो जो होगी वह होगी ही, इज्ज़त भी खाक में मिल जायगी। तुम जाकर हाकिम-जिला से इतना कह दो कि मुकदमा झूठा है, आप खुद चलकर तहकीकात कर लें। बस देखो भाई, बचपन के साथी हो, नाहीं न करना। जानता हूँ, तुम इन मुआमलों में नहीं पड़ते और तुम्हारे-जैसे आदमी को पड़ना भी न चाहिए। तुम प्रजा की लड़ाई लड़नेवाले जीव हो, तुम्हें सरकार के आदमियों से मेल-जोल बढ़ाना उचित नहीं। नहीं जनता की नज़रों से गिर जाओगे, लेकिन यह घर का मुआमला है। इतना समझ लो; अगर बिलकुल झूठा न होता, तो मैं कभी तुम्हारे पास न आता। लड़के की माँ रो-रोकर जान दिये डालती है, बहू ने दाना-पानी छोड़ रखा है। सात दिन से घर में चूल्हा नहीं जला। मैं तो थोड़ा-सा दूध पी लेता हूँ, लेकिन दोनों सास-बहू तो निराहार पड़ी हुई हैं। अगर बच्चा को सज़ा हो गई, तो दोनों मर जायँगी। मैंने यही कहकर उन्हे ढाढस दिया है कि जब तक हमारा छोटा भाई सलामत है, कोई हमारा बाल बाँका नहीं कर सकता। तुम्हारी भाभी ने तुम्हारी एक पुस्तक पढी है। वह तो तुम्हें देव-तुल्य समझती है, और जब कोई बात होती है तो तुम्हारी नजीर देकर मुझे लज्जित करती रहती है। मैं भी साफ कह देता हूँ—मैं उस छोकरे की-सी बुद्धि कहां से लाऊँ। तुम्हे उसकी नजरो से गिराने के लिए तुम्हें छोकरा, मरियल सभी कुछ कहता हूँ, पर तुम्हारे सामने मेरा रग नहीं जमता।

मैं बड़े सकट में पड़ गया। मेरी ओर से जितनी आपत्तियाँ हो सकती थीं, उन सबका जवाब बलदेवसिह ने पहले ही से दे दिया था। उनको फिर से दुहराना व्यर्थ था। इसके सिवा कोई भी जवाब न सूझा कि मैं जाकर साहब से कहूँगा। हाँ, इतना मैंने अपनी तरफ से और बढा दिया कि मुझे आशा नहीं कि मेरे कहने का विशेष खयाल किया जाय, क्योंकि सरकारी मुआमलों में हुक्काम हमेशा अपने मातहतों का पक्ष लिया करते हैं।

बलदेवसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—इसकी चिन्ता नहीं, तकदीर में जो लिखा है, वह तो होगा ही, बस तुम जाकर कह-भर दो।

'अच्छी बात है।'

'तो कल जाओगे ?'

'हाँ, अवश्य जाऊँगा।'

'यह जरूर कहना कि आप चलकर तहकीकात कर लें।'

'हाँ, यह ज़रूर कहूँगा।'

'और यह भी कह देना कि बलदेवसिंह मेरा भाई है।'

'झूठ बोलने के लिए मुझे मजबूर न करो।'

'तुम मेरे भाई नहीं हो ? मैंने तो हमेशा तुम्हें अपना भाई समझा है।'

'अच्छा, यह भी कह दूँगा।'

बलदेवसिह को बिदा करके मैंने अपना लेख समाप्त किया। और आराम से भोजन करके लेटा। मैंने उनसे गला छुड़ाने के लिए झूठा वादा कर दिया था। मेरा इरादा हाकिम-ज़िला से कुछ कहने का नहीं था। मैंने पेशबदी के तौर पर पहले ही जता दिया था कि हुक्काम आम तौर पर पुलिस के मुआमलों मे दखल नहीं देते, इसलिए सज़ा हो भी गई, तो मुझे यह कहने की काफी गुञ्जाइश थी कि साहब ने मेरी बात स्वीकार नहीं की।

कई दिन गुज़र गये थे। मैं इस वाकिये को बिलकुल भूल गया था। सहसा एक दिन बलदेवसिह अपने पहलवान बेटे के साथ मेरे कमरे में दाखिल हुए। बेटे ने मेरे चरणों पर सिर रख दिया और अदब से एक किनारे खड़ा हो गया। बलदेवसिह बोले—बिलकुल बरी हो गया भैरो। साहब ने दारोग़ा को बुलाकर खूब डाँटा कि तुम भले आदमियों को सताते और बदनाम करते हो। अगर फिर ऐसा झूठा मुकदमा लाये, तो बर्खास्त कर दिये जाओगे। दारोग़ाजी बहुत झेंपे। मैंने उन्हें झुक-कर सलाम किया। बचा पर घड़ों पानी पड़ गया। यह तुम्हारी सिफारिश का चमत्कार है भाईजान, अगर तुमने मदद न की होती, तो हम तबाह हो गये थे। यह समझ लो कि तुमने चार प्राणियों कि जान बचा ली। मैं तुम्हारे पास बहुत डरते-डरते आया था। लोगों ने कहा था—उसके पास नाहक जाते हो, वह बड़ा बेमुरौवत आदमी है, उसकी जाति से किसीका उपकार नहीं हो सकता। आदमी वह है, जो दूसरों का हित करे। वह क्या आदमी है, जो किसी कि कुछ सुने ही नहीं। लेकिन भाईजान, मैंने किसीकी बात न मानी। मेरे दिल मे मेरा राम बैठा कह रहा था—तुम चाहे कितना ही रूखे और बेलाग हो; लेकिन मुझ पर अवश्य दया करोगे।

'तुम पीछे से निकल जाओगे। पहले तुम घोड़ा बन जाओ। मैं सवारी कर लूँ, फिर मैं बनूँगा।'

सुरेश ने सचमुच चकमा देना चाहा था। मगल का यह मुतालबा सुनकर साथियों से बोला—देखते हो इसकी बदमाशी, भगी है न ?

तीनों ने मगल को घेर लिया और उसे जबरदस्ती घोड़ा बना दिया। सुरेश ने चटपट उसकी पीठ पर आसन जमा लिया और टिकटिक करके बोला—चल घोड़े, चल !

मगल कुछ दूर तक तो चला, लेकिन उस बोझ से उसकी कमर टूटी जाती थी। उसने धीरे से पीठ सिकोड़ी और सुरेश की रान से नीचे सरक गया। सुरेश महोदय लद् से गिर पडे और भोपू बजाने लगे।

माँ ने सुना, सुरेश कहीं रो रहा है। सुरेश कहीं रोये, उनके तेज कानों में जरूर भनक पड़ जाती थी, और उसका रोना भी बिलकुल निराला होता था, जैसे छोटी लाइन के इञ्जन की आवाज़।

महरी से बोली—देख तो, सुरेश कहीं रो रहा है, पूछ, किसने मारा है ?

इतने में सुरेश ख़ुद आँखें मलता हुआ आया। उसे जब रोने का अवसर मिलता था, तो माँ के पास फरियाद लेकर जरूर आता था। माँ मिठाई या मेवे देकर आँसू पोछ देती थी। आप थे तो आठ साल के, मगर बिलकुल गावदी। हद से ज्यादा प्यार ने उसकी बुद्धि के साथ वही किया था, जो हद से ज्यादा भोजन ने उसकी देह के साथ।

माँ ने पूछा—क्यों रोता है सुरेश, किसने मारा ?

सुरेश ने रोकर कहा—मगल ने छू दिया।

माँ को विश्वास न आया। मगल इतना निरीह था कि उससे किसी तरह की शरारत की शका न होती थी, लेकिन जब सुरेश क़समें खाने लगा, तो विश्वास करना लाज़िम हो गया। मगल को बुलवाकर डाँटा क्यों रे मगल, अब तुझे बदमाशी सूझने लगी ? मैंने तुझसे कहा था, सुरेश को कभी मत छूना, याद है कि नहीं, बोल !

मगल ने दबी आवाज़ से कहा—याद क्यों नहीं है !

'तो फिर तूने उसे क्यों छुआ ?'

'मैंने नहीं छुआ।'

'तूने नहीं छूआ, तो यह रोते क्यों थे ?'

'गिर पडे इससे रोने लगे।'

चोरी और सीनाज़ोरी ! देवीजी दाँत पीसकर रह गई। मारतीं तो उसी दम स्नान करना पड़ता। छड़ी तो हाथ में लेनी ही पड़ती और छूत का विद्युत-प्रवाह इस छड़ी के रास्ते उनकी देह मे पैवस्त हो जाता, इसलिए जहाँ तक गालियाँ दे सकीं, दीं और हुक्म दिया कि अभी-अभी यहाँ से निकल जा। फिर जो इस द्वार पर तेरी सूरत नजर आई, तो खून ही पी जाऊँगी। मुफ्त की रोटियाँ खा-खाकर शरारत सूझती है आदि।

मगल मे गैरत तो क्या थी, हाँ डर था। चुपके से अपने सकोरे उठाये, टाट का टुकड़ा बगल मे दबाया, धोती कन्धे पर रखी और रोता हुआ वहाँ से चल पड़ा। अब वह यहाँ कभी न आयेगा। यही तो होगा, भूखों मर जायगा। क्या हरज है। इस तरह जीने से फायदा ही क्या। गाँव मे उसके लिए और कहाँ ठिकाना था। भगी को कौन पनाह देता ? उसी अपने खडहर की ओर चला, जहाँ भले दिनों की स्मृतियाँ उसके आँसू पोंछ सकती थीं, और खूब फूट-फूटकर रोया।

उसी क्षण टामी भी उसे ढूँढता हुआ पहुँचा और दोनों फिर अपनी व्यथा भूल गये।

(६)

लेकिन ज्यों-ज्यों दिन का प्रकाश क्षीण होता जाता था, मगल की ग्लानि भी गायब होती जाती थी। बचपन की बेचैन करनेवाली भूख देह का रक्त पी-पीकर और भी बलवान होती जाती थी। आँखें बार-बार सकोरों की ओर उठ जातीं। वहाँ अब-तक सुरेश की जूठी मिठाइयाँ मिल गई होतीं। यहाँ क्या धूल फाँके !

उसने टामी से सलाह की—खाओगे क्या टामी, मैं तो भूखा ही लेट रहूँगा ?

टामी ने कूँ-कूँ करके शायद कहा—इस तरह का अपमान तो ज़िन्दगी-भर सहना है। यों हिम्मत हारोगे, तो कैसे काम चलेगा। मुझे देखो न, अभी किसी ने डण्डा मारा, चिल्ला उठा, फिर ज़रा देर बाद दुम हिलाता हुआ उसके पास जा पहुँचा। हम-तुम दोनों इसलिए बने हैं भाई !

मगल ने कहा—तो तुम जाओ, जो कुछ मिले खा लो, मेरी परवाह न करो।

टामी ने अपनी श्वान-भाषा में कहा —अकेला नहीं जाता, तुम्हे साथ लेकर चलूँगा।

'मैं नहीं जाता।'

'तो मै भी नहीं जाता।'

'भूखों मर जाओगे।'

'तो क्या तुम जीते रहोगे।'

'मेरा कौन बैठा है, जो रोयेगा।'

यहाँ भी वही हाल है भाई! क्वार में जिस कुतिया से प्रेम किया था, उसने बेवफाई की और अब कल्लू के साथ है। खैरियत यही हुई कि अपने बच्चे लेती गई, नहीं मेरी जान गाढे में पड़ जाती। पाँच-पाँच बच्चों को कौन पालता?

एक क्षण के बाद भूख ने एक दूसरी युक्ति सोच निकाली?

'मालकिन हमे खोज रही होंगी, क्यों टामी!'

'और क्या। बाबूजी और सुरेश खा चुके होंगे। कहार ने उनकी थाली से जूठन निकाल लिया होगा और हमें पुकार रहा होगा।'

'बाबूजी और सुरेश दोनों की थालियों में घी खूब रहता है, और वह मीठी-मीठी चीज़—हाँ मलाई!'

'सब-का सब घूरे पर डाल दिया जायगा।'

'देखें, हमे खोजने कोई आता है?'

'खोजने कौन आयेगा, क्या कोई पुरोहित हो? एक बार मगल-मगल होगा और बस, थाली परनाले मे उँडेल दी जायगी।'

'अच्छा तो चलो चलें, मगर मैं छिपा रहूँगा। अगर किसीने मेरा नाम लेकर न पुकारा, तो मैं लौट आऊँगा। यह समझ लो।'

दोनो वहाँ से निकले और आकर महेशनाथ के द्वार पर अँधेरे में दबककर खड़े हो गये, मगर टामी को सब्र कहाँ। वह धीरे से अन्दर घुस गया। देखा, महेशनाथ और सुरेश थाली पर बैठ गये हैं। बरौठे में धीरे से बैठ गया, मगर डर रहा था कि कोई डंडा न मार दे।

नौकरों में बातचीत हो रही थी। एक ने कहा—आज मँगलवा नहीं दिखाई देता। मालकिन ने डाँटा था, इसी से भागा है साइत।

दूसरे ने जवाब दिया—अच्छा हुआ, निकाल दिया गया। सबेरे-सबेरे भंगी का मुँह देखना पड़ता था।

मगल अँधेरे में खिसक गया। आशा गहरे जल मे डूब गई।

महेशनाथ थाली से उठ गये। नौकर हाथ धुला रहा है। अब हुक्का पीयेंगे और सोयेंगे। सुरेश अपनी माँ के पास बैठा कोई कहानी सुनता-सुनता सो जायेगा। गरीब मगल की किसे चिन्ता है। इतनी देर हो गई, किसी ने भूल से भी न पुकारा।

कुछ देर तक वह निराशा-सा वहाँ खड़ा रहा, फिर एक लबी साँस खींचकर जाना ही चाहता था कि कहार पत्तल मे थाली का जूठन ले जाता नजर आया।

मगल अँधेरे से निकलकर प्रकाश मे आ गया। अब मन को कैसे रोके!

कहार ने कहा—अरे, तू यहाँ था! हमने समझा कहीं चला गया। ले खा ले, मैं फेंकने ले जा रहा था।

मगल ने दीनता से कहा—मैं तो बड़ी देर से यहाँ खड़ा था।

'तो बोला क्यों नहीं?'

'मारे डर के।'

'अच्छा, ले खा ले।'

उसने पत्तल को ऊपर उठाकर मगल के फैले हुए हाथों मे डाल दिया। मगल ने उसकी ओर ऐसी आँखो से देखा, जिसमे दीन कृतज्ञता भरी हुई थी।

टामी भी अन्दर से निकल आया था। दोनों वहीं नीम के नीचे पत्तल में खाने लगे।

मगल ने एक हाथ से टामी का सिर सहलाकर कहा—देखा, पेट की आग ऐसी होती है। यह लात की मारीं हुई रोटियाँ भी न मिलतीं, तो क्या करते?

टामी ने दुम हिला दी।

'सुरेश को अम्माँ ने पाला था।'

टामी ने फिर दुम हिलाई।

'लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।'

टामी ने फिर दुम हिलाई।

———

बालक

गगू को लोग ब्राह्मण कहते हैं और वह अपने को ब्राह्मण समझता भी है। मेरे सईस और खिदमतगार मुझे दूर से सलाम करते हैं। गंगू मुझे कभी सलाम नहीं करता। वह शायद मुझसे पालागन की आशा रखता है। मेरा जूठा गिलास कभी हाथ से नहीं छूता, और न मेरी कभी इतनी हिम्मत हुई कि उससे पंखा झलने को कहूँ। जब मैं पसीने से तर होता हूँ और वहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं होता, तो गगू आप-ही-आप पखा उठा लेता है; लेकिन उसकी मुद्रा से यह भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि मुझ पर कोई एहसान कर रहा है और मैं भी न-जाने क्यों फौरन् ही उसके हाथ से पखा छीन लेता हूँ। उग्र स्वभाव का मनुष्य है। किसी की बात नहीं सह सकता। ऐसे बहुत कम आदमी होंगे, जिनसे उसकी मित्रता हो. पर सईस और खिदमतगार के साथ बैठना शायद वह अपमानजनक समझता है। मैंने उसे किसीसे मिलते-जुलते नहीं देखा। आश्चर्य यह है कि उसे भग-बूटी से प्रेम नहीं, जो इस श्रेणी के मनुष्यों मे एक असाधारण गुण है। मैंने उसे कभी पूजा पाठ करते या नदी मे स्नान करने जाते नहीं देखा। बिलकुल निरक्षर है, लेकिन फिर भी वह ब्राह्मण है और चाहता है कि दुनिया उसकी प्रतिष्ठा और सेवा करे और क्यों न चाहे? जब पुरुषाओं की पैदा की हुई सम्पत्ति पर आज भी लोग अधिकार जमाये हुए हैं और उसी शान से, मानो खुद पैदा की हो, तो वह क्यों उस प्रतिष्ठा और सम्मान को त्याग दे, जो उसके पुरुषाओं ने सचय किया था? यह उसकी बपौती है।

मेरा स्वभाव कुछ इस तरह का है कि अपने नौकरों से बहुत कम बोलता हूँ। मैं चाहता हूँ, जब तक मैं खुद न बुलाऊँ, कोई मेरे पास न आये। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जरा सी बातों के लिए नौकरों को आवाज देता फिरूँ। मुझे अपने हाथ से सुराही से पानी उँडेल लेना, या अपना लैम्प जला लेना, या अपने जूते पहन लेना, या आलमारी से कोई किताब निकाल लेना, इससे कहीं ज्यादा सरल मालूम होता

है कि हींगन और मैकू को पुकारूँ। इससे मुझे अपनी स्वेच्छा और आत्म-विश्वास का बोध होता है। नौकर भी मेरे स्वभाव से परिचित हो गये हैं और बिना जरूरत मेरे पास बहुत कम आते हैं, इसलिए एक दिन जब प्रातःकाल गगू मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, तो मुझे बहुत बुरा लगा। यह लोग जब आते हैं, तो पेशगी हिसाब मे कुछ माँगने के लिए या किसी दूसरे नौकर की शिकायत करने के लिए, और मुझे यह दोनो ही बातें अत्यन्त अप्रिय हैं। मैं पहली तारीख को हरएक का वेतन चुका देता हूँ और बीच मे जब कोई कुछ माँगता है, तो क्रोध आ जाता है। कौन दो-दो, चार-चार रुपये का हिसाब रखता फिरे। फिर जब किसीको महीने-भर की पूरी मजूरी मिल गई, तो उसे क्या हक है कि उसे पन्द्रह दिन मे खर्च कर दे और ऋण या पेशगी की शरण ले, और शिकायतों से तो मुझे घृणा है। मैं शिकायतो को दुर्बलता का प्रमाण समझता हूँ, या ठकुर-सुहाती की क्षुद्र चेष्टा।

'मैंने माथा सिकोड़कर कहा—क्या बात है, मैंने तो तुम्हे बुलाया नही?

गगू के तीखे अभिमानी मुख पर आज कुछ ऐसी नम्रता, कुछ ऐसी याचना, कुछ ऐसा सकोच था कि मैं चकित हो गया। ऐसा जान पड़ा, वह कुछ जवाब देना चाहता है; मगर शब्द नहीं मिल रहे हैं।'

मैंने ज़रा और कड़ा होकर कहा—आखिर क्या बात है? कहते क्यों नहीं। तुम जानते हो, यह मेरे टहलने का समय है। मुझे देर हो रही है।

गंगू ने निराशा-भरे स्वर मे कहा—तो आप हवा खाने जायँ, मैं फिर आ जाऊँगा।

यह अवस्था और भी चिन्ताजनक थी। इस जल्दी में तो वह एक क्षण मे अपना वृत्तान्त कह सुनायेगा। वह जानता है कि मुझे ज्यादा अवकाश नही है। दूसरे अवसर पर तो दुष्ट घटों रोयेगा। मेरे कुछ लिखने-पढने को तो वह शायद कुछ काम समझता हो, लेकिन विचार को, जो मेरे लिए सबसे कठिन साधना है, वह मेरे विश्राम का समय समझता है। वह उसी वक्त आकर मेरे सिर पर सवार हो जायगा।

मैंने निर्दयता के साथ कहा—क्या कुछ पेशगी माँगने आये हो? मैं पेशगी नहीं देता।

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी पेशगी नहीं माँगी।'

'तो क्या किसी की शिकायत करना चाहते हो? मुझे शिकायतो से घृणा है।'

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी किसी की शिकायत नही की?'

गगू ने अपना दिल मजबूत किया। उसकी आकृति से स्पष्ट झलक रहा था, मानो वह कोई छलाँग मारने के लिए अपनी सारी शक्तियों को एकत्र कर रहा हो। और लड़खड़ाती हुई आवाज मे बोला—मुझे आप छुट्टी दे दें। मैं आपकी नौकरी अब न कर सकूँगा।

यह इस तरह का पहला प्रस्ताव था, जो मेरे कानों मे पड़ा। मेरे आत्माभिमान को चोट लगी। मैं जब अपने को मनुष्यता का पुतला समझता हूँ, अपने नौकरों को कभी कटु-वचन नहीं कहता, अपने स्वामित्व को यथासाध्य-म्यान मे रखने की चेष्टा करता हूँ, तब मैं इस प्रस्ताव पर क्यों न विस्मित हो जाता! कठोर स्वर मे बोला—क्यों, क्या शिकायत है?

'आपने तो हुजूर, जैसा अच्छा स्वभाव पाया है, वैसा क्या कोई पायेगा, लेकिन बात ऐसी आ पड़ी है कि अब मैं आपके यहाँ नहीं रह सकता। ऐसा न हो कि पीछे से कोई बात हो जाय, तो आपकी बदनामी हो। मैं नहीं चाहता, मेरी वजह से आपकी आबरू मे बट्टा लगे।'

मेरे दिल में उलझन पैदा हुई। जिज्ञासा की अग्नि प्रचण्ड हो गई। आत्मसमर्पण के भाव से, बरामदे मे पड़ी हुई कुर्सी पर बैठकर बोला—तुम तो पहेलियाँ बुझा रहे हो। साफ-साफ क्यों नहीं कहते, क्या मामला है?

गगू ने बड़ी नम्रता से कहा—बात यह है कि वह स्त्री जो अभी विधवा-आश्रम से निकाल दी गई है, वही गोमती देवी . . . .

वह चुप हो गया। मैंने अधीर होकर कहा—हाँ, निकाल दी गई है तो फिर? तुम्हारी नौकरी से उससे क्या सम्बन्ध?

गगू ने जैसे अपने सिर का भारी बोझ जमीन पर पटक दिया—

'मै उससे ब्याह करना चाहता हूँ, बाबूजी!'

मैं विस्मय से उसका मुँह ताकने लगा। यह पुराने विचारों का पोंगा ब्राह्मण, जिसे नयी सभ्यता की हवा तक न लगी, उस कुलटा से विवाह करने जा रहा है, जिसे कोई भला आदमी अपने घर मे कदम भी न रखने देगा। गोमती ने मुहल्ले के शान्त वातावरण मे थोड़ी-सी हलचल पैदा कर दी। कई साल पहले वह विधवाश्रम से आई थी। तीन बार आश्रम के कर्मचारियों ने उसका विवाह कर दिया था, पर हर बार वह महीने-पन्द्रह दिन के बाद भाग आई थी। यहाँ तक कि आश्रम के मन्त्री ने अबकी

वार उसे आश्रम से निकाल दिया था। तबसे वह इसी महल्ले में एक कोठरी लेकर रहती थी और सारे मुहल्ले के शोहदों के लिए मनोरञ्जन का केन्द्र बनी हुई थी।

मुझे गगू की सरलता पर क्रोध भी आया और दया भी। इस गधे को सारी दुनिया में कोई स्त्री ही न मिलती थी, जो इससे ब्याह करने जा रहा है। जब वह तीन बार पतियों के पास से भाग आई, तो इसके पास कितने दिन रहेगी? कोई गाँठ का पूरा आदमी होता, तो एक बात भी थी। शायद साल छः महीने टिक जाती। यह तो निपट आँख का अन्धा है। एक सप्ताह भी तो निबाह न होगा।

मैंने चेतावनी के भाव से पूछा—तुम्हें इस स्त्री की जीवन-कथा मालूम है?

गगू ने आँखों देखी बात की तरह कहा—सब झूठ है सरकार, लोगों ने हक-नाहक उसको बदनाम कर दिया है।

'क्या कहते हो, वह तीन बार अपने पतियों के पास से नहीं भाग आई?'

'उन लोगों ने उसे निकाल दिया, तो क्या करती?'

'कैसे बुद्धू आदमी हो! कोई इतनी दूर से आकर विवाह करके ले जाता है, हज़ारों रुपये खर्च करता है इसी लिए कि औरत को निकाल दे?

गगू ने भावुकता से कहा—जहाँ प्रेम नहीं है हजूर, वहाँ कोई स्त्री नहीं रह सकती। स्त्री केवल रोटी-कपड़ा ही नहीं चाहती, कुछ प्रेम भी तो चाहती है। वह लोग समझते होंगे कि हमने एक विधवा से विवाह करके उसके ऊपर कोई बहुत बड़ा एहसान किया है। चाहते होंगे कि तन-मन से वह उनकी हो जाय, लेकिन दूसरे को अपना बनाने के लिए पहले आप उसका बन जाना पड़ता है हजूर! यह बात है। फिर उसे एक बीमारी भी है। उसे कोई भूत लगा हुआ है। वह कभी-कभी बक-झक करने लगती है और बेहोश हो जाती है।

'और तुम ऐसी स्त्री से विवाह करोगे?'—मैंने सदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा—समझ लो, जीवन कड़वा हो जायगा।

गगू ने शहीदों के-से आवेश से कहा—मैं तो समझता हूँ, मेरी ज़िन्दगी बन जायगी बाबूजी, आगे भगवान् की मर्जी!

मैंने जोर देकर पूछा—तो तुमने तय कर लिया है?

'हाँ, हजूर!'

'तो मैं तुम्हारा इस्तीफा मजूर करता हूँ।'

मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ, लेकिन जो आदमी एक दुष्टा से विवाह करे, उसे अपने यहाँ रखना वास्तव मे जटिल समस्या थी। आये दिन टण्टे-बखेड़े होंगे, नयी-नयी उलझनें पैदा होंगी, कभी पुलिस दौड़ लेकर आयेगी, कभी मुकदमे खडे होंगे। सभव है, चोरी की वारदातें भी हों। इस दलदल से दूर रहना ही अच्छा। गगू क्षुधा-पीड़ित प्राणी की भाँति रोटी का टुकड़ा देखकर उसकी ओर लपक रहा है। रोटी जूठी है, सूखी हुई है, खाने योग्य नहीं है, इसकी उसे परवाह नहीं, उसकी विचार-बुद्धि से काम लेना कठिन था। मैंने उसे पृथक् कर देने ही में अपनी कुशल समझी।

(२)

पाँच महीने गुज़र गये। गगू ने गोमती से विवाह कर लिया था और उसी मुहल्ले मे एक खपरैल का मकान लेकर रहता था। वह अब चाट का खोंचा लगाकर गुज़र-बसर करता था। मुझे जब कभी बाजार मे मिल जाता, तो मैं उसका क्षेम-कुशल पूछता। मुझे उसके जीवन से विशेष अनुराग हो गया था। यह एक सामाजिक प्रश्न की परीक्षा थी—सामाजिक ही नहीं, मनोवैज्ञानिक भी। मैं देखना चाहता था इसका परिणाम क्या होता है। मैं गगू को सदैव प्रसन्न-मुख देखता। समृद्धि और निश्चिन्तता से मुख पर जो एक तेज और स्वभाव में जो एक आत्म-सम्मान पैदा हो जाता है, वह मुझे यहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देता था। रुपये-बीस आने की रोज बिक्री हो जाती थी। इसमे लागत निकालकर आठ-दस आने बच जाते थे। यही उसकी जीविका थी, किन्तु इसमे किसी देवता का वरदान था। क्योंकि इस वर्ग के मनुष्यो मे जो निर्लज्जता और विपन्नता पाई जाती है, इसका वहाँ चिह्न तक न था। उसके मुख पर आत्म-विकास और आनन्द की झलक थी, जो चित्त की शान्ति से ही आ सकती है।

एक दिन मैंने सुना कि गोमती गगू के घर से भाग गई है। कह नहीं सकता, क्यों मुझे इस खबर से एक विचित्र आनन्द हुआ। मुझे गगू के सन्तुष्ट और सुखी जीवन पर एक प्रकार की ईर्ष्या होती थी। मैं उसके विषय में किसी अनिष्ट की, किसी घातक अनर्थ की, किसी लज्जास्पद घटना की प्रतीक्षा करता था। इस खबर से इस ईर्ष्या को सान्त्वना मिली। आखिर वही बात हुई, जिसका मुझे विश्वास था। आखिर बचा को अपनी अदूरदर्शिता का दण्ड भोगना पडा। अब देखें, बचा कैसे मुँह दिखाते हैं। अब आँखें खुलेंगी और मालूम होगा कि लोग जो उन्हें इस विवाह से रोक रहे

थे, उनके कैसे शुभचिन्तक थे। उस वक्त तो ऐसा मालूम होता था, मानो आपको कोई दुर्लभ पदार्थ मिला जा रहा है। मानो मुक्ति का द्वार खुल गया है। लोगों ने कितना कहा कि यह स्त्री विश्वास के योग्य नहीं है, कितनो को दगा दे चुकी है, तुम्हारे साथ भी दगा करेगी, लेकिन इसके कानों पर जूँ तक न रेंगी। अब मिलें, तो जरा उनका मिज़ाज पूछूँ, कहूँ—क्यों महाराज, देवीजी का यह वरदान पाकर प्रसन्न हुए या नहीं? तुम तो कहते थे, वह ऐसी है और वैसी है, लोग उस पर केवल दुर्भावना के कारण दोष आरोपित करते हैं। अब बतलाओ, किसकी भूल थी?

उसी दिन सयोगवश गगू से बाजार मे भेंट हो गई। घबराया हुआ था, बदहवास था, बिलकुल खोया हुआ। मुझे देखते ही उसकी आँखों मे आँसू भर आये, लज्जा से नहीं, व्यथा से। मेरे पास आकर बोला—बाबूजी, गोमती ने मेरे साथ भी विश्वासघात किया। मैंने कुटिल आनन्द से, लेकिन कृत्रिम सहानुभूति दिखाकर, कहा—तुमसे तो मैंने पहले ही कहा था, लेकिन तुम माने हो नहीं, अब सब्र करो। इसके सिवा और क्या उपाय है। रुपये-पैसे ले गई या कुछ छोड़ गई?

गगू ने छाती पर हाथ रखा। ऐसा जान पडा, मानो मेरे इस प्रश्न ने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया है।

'अरे बाबूजी, ऐसा न कहिए, उसने धेले की चीज भी नहीं छुई। अपना जो कुछ था, वह भी छोड़ गई। न जाने मुझमे क्या बुराई देखी। मैं उसके योग्य न था और क्या कहूँ। वह पढी-लिखी थी, मै करिया अक्षर भैंस बराबर। मेरे साथ इतने दिन रही, यही बहुत था। कुछ दिन और उसके साथ रह जाता, तो आदमी बन जाता। उसका आपसे कहाँ तक बखान करूँ हजूर, औरों के लिए चाहे जो कुछ रही हो, मेरे लिए तो किसी देवता का आशीर्वाद थी। न-जाने मुझसे क्या ऐसी खता हो गई, मगर कसम ले लीजिए, जो उसके मुख पर मैल तक आया हो। मेरी औकात ही क्या है बाबूजी, दस-बारह आने का मजूर हूँ, पर इसी मे उसके हाथों इतनी बरकत थी कि कभी कमी नहीं पड़ी।'

मुझे इन शब्दों से घोर निराशा हुई। मैंने समझा था, वह उसकी बेवफाई की कथा कहेगा और मै उसकी अन्ध-भक्ति पर कुछ सहानुभूति प्रकट करूँगा, मगर उस मूर्ख की आँखें अब तक नहीं खुलीं। अब भी उसीका मन्त्र पढ रहा है। अवश्य ही इसका चित्त कुछ अव्यवस्थित है।

मैंने कुटिल परिहास आरम्भ किया —तो तुम्हारे घर से कुछ नहीं ले गई ?

'कुछ भी नहीं बाबूजी, धेले की चीज़ भी नहीं।'

'और तुमसे प्रेम भी बहुत करती थी ?'

'अब आपसे क्या कहूँ बाबूजी, वह प्रेम तो मरते दम तक याद रहेगा।'

'फिर भी तुम्हें छोड़कर चली गई ?'

'यही तो आश्चर्य है, बाबूजी!'

'त्रिया-चरित्र का नाम कभी सुना है ?'

'अरे बाबूजी, ऐसा न कहिए। मेरी गर्दन पर कोई छुरी रख दे, तो भी मैं उसका यश ही गाऊँगा'।'

'तो फिर ढूँढ निकालो!'

'हाँ, मालिक! जब तक उसे ढूँढ न लाऊँगा, मुझे चैन न आवेगा। मुझे इतना मालूम हो जाय कि वह कहाँ है, फिर तो मैं उसे ले ही आऊँगा, और बाबूजी, मेरा दिल कहता है कि वह आवेगी जरूर। देख लीजिएगा। वह मुझसे रूठकर नहीं-गई, लेकिन दिल नहीं मानता। जाता हूँ, महीने-दो-महीने जंगल-पहाड़ की धूल छानूँगा। जीता रहा, तो फिर आपके दर्शन करूँगा।'

यह कहकर वह उन्माद की दशा में एक तरफ चल दिया।

(३)

इसके बाद मुझे एक ज़रूरत से नैनीताल जाना पड़ा। सैर करने के लिए नहीं। एक महीने के बाद लौटा, और अभी कपड़े भी न उतारने पाया था कि देखता हूँ, गंगू एक नव-जात शिशु को गोद में लिये खड़ा है। शायद कृष्ण को पाकर नन्द भी इतने पुलकित न हुए होंगे। मालूम होता था, उसके रोम-रोम से आनन्द फूटा पड़ता है। चेहरे और आँखों से कृतज्ञता और श्रद्धा के राग से निकल रहे थे। कुछ वही भाव था, जो किसी क्षुधा-पीड़ित भिक्षुक के चेहरे पर भर-पेट भोजन करने के बाद नज़र आता है।

मैंने पूछा—कहो महाराज, गोमती देवी का कुछ पता लगा, तुम तो बाहर गये थे ?

गंगू ने आपे में न समाते हुए जवाब दिया—हाँ बाबूजी, आपके आशीर्वाद से ढूँढ लाया। लखनऊ के जनाने अस्पताल में मिली। यहाँ एक सहेली से कह गई थी

कि अगर वह बहुत घबरायें, तो बतला देना। मैं सुनते ही लखनऊ भागा और उसे घसीट लाया। घाते में यह बच्चा भी मिल गया।

उसने बच्चे को उठाकर मेरी तरफ बढाया—मानो कोई खिलाड़ी तमगा पाकर दिखा रहा हो।

मैंने उपहास के भाव से पूछा—अच्छा, यह लड़का भी मिल गया? शायद इसी लिए वह यहाँ से भागी थी। है तो तुम्हारा ही लड़का?

'मेरा काहे को है बाबूजी, आपका है, भगवान् का है।'

'तो लखनऊ में पैदा हुआ?'

'हाँ बाबूजी, अभी तो कुल एक महीने का है।'

'तुम्हारा ब्याह हुए कितने दिन हुए?'

'यह सातवाँ महीना जा रहा है।'

'तो शादी के छठे महीने पैदा हुआ?'

'और क्या बाबूजी!'

'फिर भी तुम्हारा लड़का है?'

'हाँ, जी।'

'कैसी बेसिर-पैर की बातें कर रहे हो?'

मालूम नहीं, वह मेरा आशय समझ रहा था, या बन रहा था। उसी निष्कपट भाव से बोला—मरते-मरते बची बाबूजी, नया जनम हुआ। तीन दिन तीन रात छटपटाती रही। कुछ न पूछिए।

मैंने अब ज़रा व्यंग्य-भाव से कहा—लेकिन छ महीने मे लडका होते आज ही सुना।

यह चोट निशाने पर जा बैठी।

मुस्कराकर बोला—अच्छा, वह बात! मुझे तो उसका ध्यान भी नहीं आया। इसी भय से तो गोमती भागी थी। मैंने कहा—गोमती, अगर तुम्हारा मन मुझसे नहीं मिलता, तो मुझे छोड़ दो। मैं अभी चला जाऊँगा और फिर कभी तुम्हारे पास न आऊँगा। तुमको जब कुछ काम पडे, तो मुझे लिखना, मैं भरसक तुम्हारी मदद करूँगा। मुझे तुमसे कुछ मलाल नहीं है। मेरी आँखों मे तुम अब भी उतनी ही भली हो। अब भी मैं तुम्हे उतना ही चाहता हूँ। नहीं, अब मैं तुम्हें और ज्यादा

चाहता हूँ, लेकिन अगर तुम्हारा मन मुझसे फिर नहीं गया है, तो मेरे साथ चलो। गगू जीते-जी तुमसे बेवफाई नहीं करेगा। मैंने तुमसे इसलिए ब्याह नहीं किया कि तुम देवी हो, बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हें चाहता था और सोचता था कि तुम भी मुझे चाहती हो। यह बच्चा मेरा बच्चा है। मेरा अपना बच्चा है। मैंने एक बोया हुआ खेत लिया तो क्या उसकी फसल को इसलिए छोड दूँगा कि उसे किसी दूसरे ने बोया था।

यह कहकर उसने ज़ोर से ठट्ठा मारा।

मैं कपडे उतारना भूल गया। कह नहीं सकता, क्यों मेरी आँखें सजल हो गई। न-जाने वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने मेरी मनोगत घृणा को दबाकर मेरे हाथों को बढा दिया। मैंने उस निष्कलक बालक को गोद मे ले लिया और इतने प्यार से उसका चुम्बन लिया कि शायद अपने बच्चों का कभी न लिया होगा।

गगू बोला—बाबूजी, आप बड़े सज्जन हैं। मैं गोमती से बार-बार आपका बखान किया करता हूँ। कहता हूँ, चल एक बार उनके दर्शन कर आ, लेकिन मारे लाज के आती ही नहीं।

मैं और सज्जन! अपनी सज्जनता का पर्दा आज मेरी आँखों से हटा। मैंने भक्ति से डूबे हुए स्वर में कहा—नहीं जी, मेरे-जैसे कलुषित मनुष्य के पास वह क्या आयेंगी। चलो, मैं उनके दर्शन करने चलता हूँ। तुम मुझे सज्जन समझते हो? मै ऊपर से सज्जन हूँ, पर दिल का कमीना हूँ। असली सज्जनता तुममें है और यह बालक वह फूल है, जिससे तुम्हारी सज्जनता की मॅहक निकल रही है।

मै बच्चे को छाती से लगाये हुए गगू के साथ चला।

जीवन का शाप

कावसजी ने पत्र निकाला और यश कमाने लगे। शापूरजी ने रूई की दलाली शुरू की और धन कमाने लगे। कमाई दोनों ही कर रहे थे, पर शापूरजी प्रसन्न थे, कावसजी विरक्त। शापूरजी को धन के साथ सम्मान और यश आप-ही-आप मिलता था। कावसजी को यश के साथ धन दूरबीन से देखने पर भी न दिखाई देता था, इसलिए शापूरजी के जीवन में शाति थी, सहृदयता थी, आशावाद था, क्रीड़ा थी। कावसजी के जीवन मे अशाति थी, कटुता थी, निराशा थी, उदासीनता थी। धन को तुच्छ समझने की वह बहुत चेष्टा करते थे, लेकिन प्रत्यक्ष को कैसे झुठला देते। शापूरजी के घर मे विराजनेवाले सौजन्य और शान्ति के सामने उन्हे अपने घर के कलह और फूहड़पन से घृणा होती थी। मृदुभाषिणी मिसेज शापूर के सामने उन्हे अपनी गुलशन बानू सकीर्णता और ईर्ष्या का अवतार-सी लगती थी। शापूरजी घर में आते, तो शीरीं बाई मृदु हास से उनका स्वागत करती। वह खुद दिन-भर के थके-मांदे घर आते, तो गुलशन अपना दुखड़ा सुनाने बैठ जाती और उनको खूब फटकारें बताती तुम भी अपने को आदमी कहते हो! मैं तो तुम्हें बैल समझती हूँ, बैल बड़ा मेहनती है, गरीब है, सन्तोषी है, माना, लेकिन उसे विवाह करने का क्या हक था।

कावसजी से एक लाख बार यह प्रश्न किया जा चुका था कि जब तुम्हे समाचार-पत्र निकालकर अपना जीवन बरबाद करना था, तो तुमने विवाह क्यों किया? क्यों मेरी ज़िन्दगी तबाह कर दी? जब तुम्हारे घर में रोटियाँ न थीं, तो मुझे क्यों लाये? इस प्रश्न का जवाब देने की कावसजी में शक्ति न थी। उन्हें कुछ सूझता ही न था। वह सचमुच अपनी गलती पर पछताते थे। एक बार बहुत तंग आकर उन्होंने कहा था—अच्छा भाई, अब तो जो होना था, हो चुका; लेकिन मैं तुम्हें बांधे तो नहीं हूँ, तुम्हें जो पुरुष ज्यादा सुखी रख सके, उसके साथ जाकर रहो, अब मैं क्या करूँ।

आमदनी नहीं बढ़ती, तो मैं क्या करूँ, क्या चाहती हो जान दे दूँ ? इस पर गुलशन ने उनके दोनों कान पकड़कर जोर से ऐंठे और गालों पर दो तमाचे लगाये और पैनी आँखों से काटती हुई बोली—अच्छा, अब चोंच सँभालो, नहीं अच्छा न होगा। ऐसी बात मुँह से निकालते तुम्हे लाज नही आती ? हयादार होते, तो चिल्लू-भर पानी मे डूब मरते। उस दूसरे पुरुष के महल मे आग लगा दूँगी, उसका मुँह झुलस दूँगी। तबसे बेचारे कावसजी के पास इस प्रश्न का कोई जवाब न रहा। कहाँ तो यह असन्तोष और विद्रोह की ज्वाला, और कहाँ वह मधुरता और भद्रता की देवी शीरीं, जो कावसजी को देखते ही फूल की तरह खिल उठती, मीठी-मीठी बातें करती, चाय और मुरब्बे और फूलों से सत्कार करती और अक्सर उन्हे अपनी कार पर घर पहुँचा देती ? कावसजी ने कभी मन मे भी इसे स्वीकार करने का साहस नहीं किया, मगर उनके हृदय मे यह लालसा छिपी हुई थी कि गुलशन की जगह शीरीं होती, तो उनका जीवन कितना गुलजार होता। कभी-कभी गुलशन की कटूक्तियों से वह इतने दुखी हो जाते कि यमराज का आवाहन करते। घर उनके लिए कैदखाने से कम जान-लेवा न था और उन्हे जब अवसर मिलता, सीधे शीरीं के घर जाकर अपने दिल की जलन बुझा आते।

(२)

एक दिन कावसजी सबेरे गुल्शने से झल्लाकर शापूरजी के टेरेस मे पहुँचे, तो देखा शीरीं बानू की आँखें लाल हैं और चेहरा भभराया हुआ है, जैसे रोकर उठी हो। कावसजी ने चिन्तित होकर पूछा—आपका जी कैसा है, बुखार तो नहीं आ गया ?

शीरीं ने दर्द-भरी आँखों से देखकर रोनी आवाज से कहा—नहीं, बुखार तो नहीं है, कम-से-कम देह का बुखार तो नहीं है।

कावसजी इस पहेली का कुछ मतलब न समझे।

शीरीं ने एक क्षण मौन रहकर फिर कहा - आपको मै अपना मित्र समझती हूँ मि० कावसजी ! आपसे क्या छिपाऊँ। मैं इस जीवन से तग आ गई हूँ। मैने अब तक हृदय की आग हृदय मे रखी, लेकिन ऐसा मालूम होता है कि अब उसे बाहर न निकालूँ, तो मेरी हड्डियाँ तक जल जायँगी। इस वक्त आठ बजे हैं, लेकिन मेरे रँगीले पिया का कहीं पता नहीं। रात को खाना खाकर वह एक मित्र से मिलने का बहाना करके घर से निकले थे और अभी तक लौटकर नहीं

आये। और आज यह कोई बात नयी नहीं है। इधर कई महीनों से यह इनकी रोज़ की आदत है। मैंने आज तक आपसे कभी अपना दर्द नहीं कहा, मगर उस समय भी जब मैं हँस-हँसकर आपसे बातें करती थी, मेरी आत्मा रोती रहती थी।

कावसजी ने निष्कपट भाव से कहा — तुमने पूछा नहीं, कहाँ रह जाते हो?

'पूछने से क्या लोग अपने दिल की बातें बता दिया करते हैं?'

'तुमसे तो उन्हे कोई भेद न रखना चाहिए।'

'घर में जी न लगे, तो आदमी क्या करे।'

'मुझे यह सुनकर आश्चर्य हो रहा है। तुम-जैसी देवी जिस घर मे हो, वह स्वर्ग है। शापूरजी को तो अपना भाग्य सराहना चाहिए।'

'आपका यह भाव तभी तक है, जब तक आपके पास धन नहीं है। आज तुम्हे कहीं से दो-चार लाख मिल जाय, तो तुम यों न रहोगे, और तुम्हारे यह भाव बदल जायँगे। यही धन का सबसे बड़ा अभिशाप है। ऊपरी सुख-शान्ति के नीचे कितनी आग है, यह तो उसी वक्त खुलता है, जब ज्वालामुखी फट पड़ता है। वह समझते हैं, धन से घर भरकर उन्होंने मेरे लिए वह सब कुछ कर दिया, जो उनका कर्तव्य था, और अब मुझे असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं। वह नहीं जानते कि ऐश के ये सारे सामान उन मिश्री तहखानों मे गड़े हुए पदार्थों की तरह हैं, जो मृतात्मा के भोग के लिए रखे जाते थे।'

कावसजी एक नयी बात सुन रहे थे। उन्हे अब तक जीवन का जो अनुभव हुआ था, वह यह था कि स्त्री अंतःकरण से विलासिनी होती है। उस पर लाख प्राण वारो, उसके लिए मर ही क्यों न मिटो, लेकिन व्यर्थ। वह केवल खरहरा नहीं चाहती, उससे कहीं ज्यादा दाना और घास चाहती है, लेकिन एक यह देवी है, जो विलास की चीजों को तुच्छ समझती है और केवल मीठे स्नेह और रसमय सहवास से ही प्रसन्न रहना चाहती है। उनके मन में गुदगुदी-सी उठी।

मिसेज़ शापूर ने फिर कहा—उनका यह व्यापार मेरी बर्दाश्त के बाहर हो गया है, मि० कावसजी; मेरे मन मे विद्रोह की ज्वाला उठ रही है, और मैं धर्म और शास्त्र और मर्यादा इन सभी का आश्रय लेकर भी त्राण नहीं पाती। मन को समझाती हूँ—क्या संसार मे लाखों विधवाएँ नहीं पड़ी हुई हैं, लेकिन किसी तरह चित्त नहीं शान्त होता। मुझे विश्वास आता जाता है कि वह मुझे मैदान में आने के लिए

चुनौती दे रहे हैं। मैंने अब तक उनकी चुनौती नहीं ली है, लेकिन अब पानी सिर से ऊपर चढ़ गया है और मैं किसी तिनके का सहारा ढूँढे बिना नहीं रह सकती। वह जो चाहते हैं, वह हो जायगा। आप उनके मित्र हैं, आपसे बन पड़े, तो उनको समझाइए। मैं इस मर्यादा की बेड़ी को अब और न पहन सकूँगी।

मि० कावसजी मन में भावी सुख का एक स्वर्ग-निर्माण कर रहे थे। बोले—हाँ-हाँ, मैं अवश्य समझाऊँगा। यह तो मेरा धर्म है, लेकिन मुझे आशा नहीं कि मेरे समझाने का उन पर कोई असर हो। मैं तो दरिद्र हूँ, मेरे समझाने का उनकी दृष्टि में मूल्य ही क्या?

'यों वह मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते हैं, बस उनकी यही आदत मुझे पसन्द नहीं!'

'तुमने इतने दिनों बर्दाश्त किया, यही आश्चर्य है। कोई दूसरी औरत तो एक दिन न सहती।'

'थोड़ी-बहुत तो यह आदत सभी पुरुषों में होती है, लेकिन ऐसे पुरुषों की स्त्रियाँ भी वैसी ही होती हैं। कर्म से न सही, मन से ही सही। मैंने तो सदैव इनको अपना इष्टदेव समझा।'

'किन्तु जब पुरुष इसका अर्थ ही न समझे, तो क्या हो। मुझे भय है, वह मन में कुछ और न सोच रहे हों।'

'और क्या सोच सकते हैं?'

'आप अनुमान नहीं कर सकतीं?'

'अच्छा, वह बात? मगर मेरा कोई अपराध?'

'शेर और मेमनेवाली कथा आपने नहीं सुनी?'

मिसेज़ शापूर एकाएक चुप हो गईं। सामने से शापूरजी की कार आती दिखाई दी। उन्होंने कावसजी को ताकीद और विनय-भरी आँखों से देखा और दूसरे द्वार से कमरे से निकलकर अन्दर चली गईं। मि० शापूर लाल आँखें किये कार से उतरे और मुसकिराकर कावसजी से हाथ मिलाया। स्त्री की आँखें भी लाल थीं, पति की आँखें भी लाल। एक रुदन से, दूसरी रात की खुमारी से।

(३)

शापूरजी ने हैट उतारकर खूँटी पर लटकाते हुए कहा—क्षमा कीजिएगा, मैं

रात को एक मित्र के घर सो गया था। दावत थी। खाने में देर हुई, तो मैंने सोचा, अब कौन घर जाय!

कावसजी ने व्यग्य-मुस्कान के साथ कहा—किसके यहाँ दावत थी? मेरे रिपोर्टर ने तो कोई खबर नहीं दी। ज़रा मुझे नोट करा दीजिएगा।

उन्होंने जेब से नोटबुक निकाली।

शापूरजी ने सतर्क होकर कहा—ऐसी कोई बड़ी दावत नहीं थी जी, दो-चार मित्रों का प्रीतिभोज था।

'फिर भी समाचार तो जानना ही चाहिए। जिस प्रीतिभोज मे आप-जैसे प्रतिष्ठित लोग शरीक हों, वह साधारण बात नहीं हो सकती। क्या नाम है मेज़बान साहब का?'

'आप चौंकेंगे तो नहीं?'

'बतलाइए तो।'

'मिस गौहर!'

'मिस गौहर!!'

'जी हाँ, आप चौंके क्यों? क्या आप इसे तस्लीम नहीं करते कि दिन-भर रुपये-आने-पाई से सिर मारने के बाद मुझे कुछ मनोरजन करने का भी अधिकार है, नहीं, जीवन भार हो जाय?'

'मैं इसे नहीं मानता।'

'क्यों?'

'इसी लिए कि मैं इस मनोरजन को अपनी ब्याहता स्त्री के प्रति अन्याय समझता हूँ।'

शापूरजी नकली हँसी हँसे—वही दक़ियानूसी बात। आपको मालूम होना चाहिए, आज का समय ऐसा कोई बन्धन स्वीकार नहीं करता।

'और मेरा खयाल है कि कम-से-कम इस विषय में आज का समाज एक पीढ़ी पहले के समाज से कहीं परिष्कृत है। अब देवियों का यह अधिकार स्वीकार किया जाने लगा है।'

'यानी देवियाँ पुरुषों पर हुकूमत कर सकती हैं?'

'उसी तरह जैसे पुरुष देवियो पर हुकूमत कर सकते हैं।'

'मैं इसे नहीं मानता। पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं है, स्त्री पुरुष की मुहताज है।'

'आपका आशय यही तो है कि स्त्री अपने भरण-पोषण के लिए पुरुष पर अवलंबित है।'

'अगर आप इन शब्दों में कहना चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, मगर अधिकार की बागडोर जैसे राज-नीति में, वैसे ही समाज-नीति में धन-बल के हाथ रही है और रहेगी।'

'अगर दैवयोग से धनोपार्जन का काम स्त्री कर रही हो। और पुरुष कोई काम न मिलने के कारण घर बैठा हो, तो स्त्री को अधिकार है कि अपना मनोरंजन जिस तरह चाहे करे?'

'मैं स्त्री को अधिकार नहीं दे सकता।'

'यह आपका अन्याय है।'

'बिलकुल नहीं। स्त्री पर प्रकृति ने ऐसे बन्धन लगा दिये हैं कि वह कितना भी चाहे, पुरुष की भांति स्वच्छन्द नहीं रह सकती और न पशुबल में पुरुष का मुकाबला कर सकती है। हां, गृहिणी का पद त्याग कर, या अप्राकृतिक जीवन का आश्रय लेकर वह सब कुछ कर सकती है।'

'आप लोग उसे मजबूर कर रहे हैं कि अप्राकृतिक जीवन का आश्रय ले।'

'मैं ऐसे समय की कल्पना ही नहीं कर सकता, जब पुरुषों का आधिपत्य स्वीकार करनेवाली औरतों का काल पड़ जाय। कानून और सभ्यता मैं नहीं जानता। पुरुषों ने स्त्रियों पर हमेशा राज किया है और करेंगे।'

सहसा कावसजी ने पहलू बदला। इतनी थोड़ी-सी देर में ही वह अच्छे खासे कूटनीति-चतुर हो गये थे। शापूरजी को प्रशंसा-सूचक आंखों से देखकर बोले—तो हम और आप दोनों एक विचार के हैं। मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। मैं भी स्त्री को गृहिणी, माता और स्वामिनी, सब कुछ मानने को तैयार हूं, पर उसे स्वच्छन्द नहीं देख सकता। अगर कोई स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है, तो उसके लिए मेरे घर में स्थान नहीं है। अभी मिसेज शापूर की बातें सुनकर मैं दंग रह गया। मुझे इसकी कल्पना भी न थी कि कोई नारी मन में इतने विद्रोहात्मक भावों को स्थान दे सकती है।

मि० शापूरजी की गर्दन की नसें तन गईं। नथने फूल गये। कुरसी से उठकर

बोले—अच्छा, तो अब शीरीं ने यह ढंग निकाला! मैं अभी उससे पूछता हूँ—आपके सामने पूछता हूँ—अभी फैसला कर डालूँगा। मुझे उसकी परवाह नहीं है। किसीकी परवाह नहीं है। बेवफा औरत! जिसके हृदय मे जरा भी समवेदना नहीं, जो मेरे जीवन मे जरा-सा आनन्द भी नहीं सह सकती। चाहती है, मै उसके अञ्चल में बँधा-बँधा घूमूँ! शापूर से यह आशा रखती है? अभागिनी भूल जाती है कि आज मै आँखो का इशारा कर दूँ, तो एक सौ एक शीरियाँ मेरी उपासना करने लगें, जी हाँ, मेरे इशारो पर नाचें। मैंने इसके लिए जो कुछ किया, बहुत कम पुरुष किसी स्त्री के लिए करते हैं। मेने· मैंने

उन्हे खयाल आ गया कि वह ज़रूरत से ज़्यादा बहके जा रहे है। शीरीं की प्रेममय सेवाएँ याद आईं। रुककर बोले—लेकिन मेरा खयाल है कि वह अब भी समझ से काम ले सकती है। मै उसका दिल नहीं दुखाना चाहता। मै यह भी जानता हूँ कि वह ज्यादा-से-ज्यादा जो कर सकती है, वह शिकायत है। इसके आगे बढ़ने की हिमाकत वह नहीं कर सकती। औरतो को मना लेना बहुत मुश्किल नहीं है, कम-से-कम मुझे तो यही तजरबा है।

कावसजी ने खण्डन किया—मेरा तजरबा तो कुछ और है।

'हो सकता है, मगर आपके पास खाली बातें हैं, मेरे पास लक्ष्मी का आशीर्वाद है।'

'जब मन में विद्रोह के भाव जम गये, तो लक्ष्मी के टाले भी नहीं टल सकते!'

शापूरजी ने विचारपूर्ण भाव से कहा—शायद आपका विचार ठीक है।

(४)

कई दिन के बाद कावसजी की शीरीं से पार्क मे मुलाकात हुई। वह इसी अवसर की खोज मे थे। उनका स्वर्ग तैयार हो चुका था। केवल उसमे शीरीं को प्रतिष्ठित करने की कसर थी। उस शुभ-दिन की कल्पना मे वह पागल-से हो रहे थे। गुलशन को उन्होंने उसके मैके भेज दिया था—भेज क्या दिया था, वह रूठकर चली गई थी। जब शीरीं उनकी दरिद्रता का स्वागत कर रही है, तो गुलशन की खुशामद क्यो की जाय। लपककर शीरीं से हाथ मिलाया और बोले—आप खूब मिलीं! मैं आज आनेवाला था।

शीरीं ने गिला करते हुए कहा—आपकी राह देखते-देखते आँखें थक गईं। आप भी ज़बानी हमदर्दी ही करना जानते हैं। आपको क्या खबर, इन कई दिनों मे मेरी आँखों से आँसू बहे हैं।

कावसजी ने शीरीं बानू की उत्कण्ठापूर्ण मुद्रा देखी, जो बहुमूल्य रेशमी साड़ी की आब से और भी दमक उठी थी, और उनका हृदय अंदर से बैठता हुआ जान पड़ा। उस छात्र की-सी दशा हुई, जो आज अन्तिम परीक्षा पास कर चुका हो और जीवन का प्रश्न उसके सामने अपने भयंकर रूप मे खड़ा हो। काश वह कुछ दिन और परीक्षाओं की भूल-भुलैया मे जीवन के स्वप्नों का आनन्द ले सकता। उस स्वप्न के सामने यह सत्य कितना डरावना था। अभी तक कावसजो ने मधुमक्खो का शहद ही चखा था। इस समय वह उनके मुख पर मँडरा रही थो और वह डर रहे थे, कहीं डक न मारे।

दबी हुई आवाज़ से बोले—मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। मैंने तो शापूर को बहुत समझाया था।

शीरीं ने उनका हाथ पकड़कर एक बेंच पर बिठा दिया और बोली—उन पर अब समझाने-बुझाने का कोई असर न होगा। और मुझे ही क्या गरज़ पड़ी है कि मै उनके पांव सहलातो रहूँ। आज मैंने निश्चय कर लिया है, अब उस घर में लौटकर न जाऊँगी, अगर उन्हें अदालत में ज़लील होने का शौक है, तो मुझ पर दावा करें, मै तैयार हूँ। मै जिसके साथ नहीं रहना चाहतो, उसके साथ रहने के लिए ईश्वर भी मुझे मज़बूर नहीं कर सकता, अदालत क्या कर सकती है? अगर तुम मुझे आश्रय दे सकते हो, तो मैं तुम्हारी बनकर रहूँगी, जब तक तुम मेरे रहोगे। अगर तुममे इतना आत्मबल नहीं है, तो मेरे लिए दूसरे द्वार खुल जायँगे। अब साफ-साफ बतलाओ, क्या वह सारी सहानुभूति ज़बानी थी?

कावसजी ने कलेजा मज़बूत करके कहा—नहीं-नहीं, शीरीं, खुदा जानता है, मुझे तुमसे कितना प्रेम है। तुम्हारे लिए मेरे हृदय मे स्थान है।

मगर गुलशन को क्या करोगे?'

'उसे तलाक़ दे दूँगा।'

'हाँ, यही मैं भी चाहती हूँ। तो मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, अभी, इसी दम। शापूर से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।'

कावसजी को अपने दिल में कम्पन का अनुभव हुआ। बोले—लेकिन अभी तो वहाँ कोई तैयारी नहीं है।

'मेरे लिए किसी तैयारी की जरूरत नहीं। तुम सब कुछ हो। एक टैक्सी ले लो। मैं इसी वक्त चलूँगी।'

कावसजी टैक्सी की खोज में पार्क से निकले। वह एकान्त मे विचार करने के लिए थोड़ा-सा समय चाहते थे। इस बहाने से उन्हें समय मिल गया। उन पर अब जवानी का वह नशा न था, जो विवेक की आँखों पर छाकर बहुधा हमें गड्ढे मे गिरा देता है। अगर कुछ नशा था, तो अबतक हिरन हो चुका था। वह किस फन्दे में गला डाल रहे हैं, वह खूब समझते थे। शापूरजी उन्हे मिट्टी में मिला देने के लिए पूरा जोर लगायेंगे, यह भी उन्हे मालूम था। गुलशन उन्हे सारी दुनिया में बदनाम कर देगी, यह भी वह जानते थे। यह सब विपत्तियाँ झेलने को वह तैयार थे। शापूर की ज़बान बन्द करने के लिए उनके पास काफी दलीलें थीं। गुलशन को भी स्त्री समाज मे अपमानित करने का उनके पास काफी मसाला था। डर था, तो यह कि शीरीं का यह प्रेम टिक सकेगा, या नहीं। अभी तक शीरीं ने केवल उनके सौजन्य का परिचय पाया है, केवल उनकी न्याय और सत्य और उदारता से भरी बातें सुनी हैं। इस क्षेत्र में शापूरजी से उन्होंने बाजी मारी है, लेकिन उनके सौजन्य और उनकी प्रतिमा का जादू उनके बेसरोसामान घर मे कुछ दिन रहेगा, इसमे उन्हे सन्देह था। हलवे की जगह चुपड़ी रोटियाँ भी मिलें, तो आदमी सब्र कर सकता है। रूखी भी मिल जायँ, तो वह सन्तोष कर लेगा; लेकिन सूखी घास सामने देखकर तो ऋषि-मुनि भी जामे से बाहर हो जायँगे। शीरीं उनसे प्रेम करती है; लेकिन प्रेम के त्याग की भी तो सीमा है! दो-चार दिन भावुकता के उन्माद मे वह सब्र कर ले, लेकिन भावुकता कोई टिकाऊ चीज तो नहीं है। वास्तविकता के आघातों के सामने यह भावुकता कै दिन टिकेगी! उस परिस्थिति की कल्पना करके कावसजी काँप उठे। अब तक वह रनिवास मे रही है। अब उसे एक खपरैल का काटेज मिलेगा, जिसके फर्श पर कालीन की जगह टाट भी नहीं, कहाँ वरदीपोश नौकरों की पलटन, कहाँ एक बुढ़िया मामा की सदिग्ध सेवाएँ जो बात-बात पर भुनभुनाती है, धमकाती है, कोसती है। उनका आधा वेतन तो सगीत सिखानेवाला मास्टर ही खा जायगा और शापूरजी ने कहीं ज्यादा कमीनापन से काम लिया, तो उनको बदमाशों से पिटवा भी

सकते हैं। पिटने से वह नहीं डरते। यह तो उनकी फतह होगी, लेकिन शोरीं की भोग-लालसा पर कैसे विजय पायें! बुढ़िया मामा जब मुँह लटकाये आकर उसके सामने रोटियां और सालन परोस देगी, तब शीरीं के मुख पर कैसी विदग्ध विरक्ति छा जायगी! कहीं वह खड़ी होकर उनको और अपनी किस्मत को कोसने न लगे। नहीं, अभाव की पूर्ति सौजन्य से नहीं हो सकती। शोरीं का वह रूप कितना विकराल होगा।

सहसा एक कार सामने से आती दिखाई दी। कावसजी ने देखा—शापूरजी बैठे हुए थे। उन्होंने हाथ उठाकर कार को रुकवा लिया और पीछे दौड़ते हुए जाकर शापूरजी से बोले—आप कहां जा रहे हैं?

'यों ही, जरा घूमने निकला था।'

'शोरीं बानू पार्क मे हैं, उन्हे लेते जाइए।'

'वह तो मुझसे लड़कर आई है कि अब इस घर मे कभी कदम न रखूँगी।'

'और आप सैर करने जा रहे हैं?'

'तो क्या आप चाहते हे, बैठकर रोऊँ?'

'वह बहुत रो रही है।'

'सच!'

'हां, बहुत रो रही हैं।'

'तो शायद उसकी बुद्धि जाग रही है।'

'तुम इस समय उन्हे मना लो, तो वह हर्ष से तुम्हारे साथ चली जायँ।'

'मैं परीक्षा करना चाहता हूँ कि वह बिना मनाये मानती है या नहीं।'

'मैं बड़े असमंजस मे पड़ा हुआ हूँ। मुझ पर दया करो, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।'

'जीवन मे जो थोड़ा सा आनन्द है, उसे मनावन के नाट्य मे नहीं छोड़ना चाहता।'

कार चल पड़ी और कावसजी कर्तव्य-भ्रष्ट से वहीं खड़े रह गये। देर हो रही थी। सोचा—कहीं शोरीं यह न समझ ले कि मैंने भी उसके साथ दगा की; लेकिन जाऊँ भी तो क्योंकर। अपने सम्पादकीय कुटीर में उस देवी को प्रतिष्ठित करने की कल्पना ही उन्हे हास्यास्पद लगी। वहां के लिए तो गुलशन ही उपयुक्त है। कुढ़ती है, कठोर बातें कहती है, रोती है, लेकिन वक्त से भोजन तो दे देती है। फटे हुए कपड़ों को रफू तो कर देती है, कोई मेहमान आ जाता है, तो कितने प्रसन्न-मुख से उसका आदर-सत्कार करती है, मानो उसके मन में आनन्द-ही-आनन्द है। कोई छोटी-

सो चीज भी दे दो, तो कितना फूल उठती है। थोड़ी-सी तारीफ करके चाहे उससे गुलामी करवा लो। अब उन्हें अपना ज़रा-ज़रा-सी बात पर झुँझला पड़ना, उसकी सीधी-सी बातो का टेढा जवाब देना, विकल करने लगा। उस दिन उसने यही तो कहा था कि उसकी छोटी वहन के सालगिरह पर कोई उपहार भेजना चाहिए। इसमें बरस पड़ने की कौन-सी बात थी। माना, वह अपना सम्पादकीय नोट लिख रहे थे , लेकिन उनके लिए सम्पादकीय नोट जितना महत्त्व रखता है, क्या गुलशन के लिए उपहार भेजना उतना ही या उससे ज्यादा महत्त्व नहीं रखता ? बेशक उनके पास उस समय रुपये न थे, तो क्या वह मीठे शब्दों में यह नहीं कह सकते थे कि डार्लिङ्ग, मुझे खेद है, अभी हाथ खाली है, दो-चार रोज़ में मैं कोई प्रबन्ध कर दूँगा। यह जवाब सुन-कर वह चुप हो जाती। और अगर कुछ भुनभुना ही लेती, तो उनका क्या बिगड़ जाता था। अपनी टिप्पणियों मे वह कितनी शिष्टता का व्यवहार करते हैं। कलम ज़रा भी गर्म पड़ जाय, तो गर्दन नापी जाय। गुलशन पर वह क्यो बिगड़ जाते हैं ? इसी लिए कि वह उनके अधीन है और उन्हें रूठ जाने के सिवा कोई दण्ड नहीं दे सकती। कितनी नीच कायरता है कि हम सबलो के सामने दुम हिलायें और जो हमारे लिए अपने जीवन का बलिदान कर रही है, उसे काटने दौड़ें।

सहसा एक ताँगा आता हुआ दिखाई दिया और सामने आते ही उस पर से एक स्त्री उतरकर उनकी ओर चली। अरे ! यह तो गुलशन है। उन्होंने आतुरता से आगे बढकर उसे गले लगा लिया और बोले—तुम इस वक्त यहाँ कैसे आईं ? मैं अभी-अभी तुम्हारा ही खयाल कर रहा था।

गुलशन ने गद्गद कण्ठ से कहा—तुम्हारे ही पास जा रही थी। शाम को बरामदे में बैठी तुम्हारा लेख पढ़ रही थी। न-जाने कब झपकी आ गई, और मैने एक बुरा सपना देखा। मारे डर के मेरी नींद खुल गई और तुमसे मिलने चल पड़ी। इस वक्त यहाँ कैसे खड़े हो ? कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई ? रास्ते-भर मेरा कलेजा धड़क रहा था।

कावसजी ने आश्वासन देते हुए कहा—मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ। तुमने क्या स्वप्न देखा ?

'मैंने देखा—जैसे तुमने एक रमणी को कुछ कहा है और वह तुम्हें बाँधकर घसीटे लिये जा रही है।'

'कितना बेहूदा स्वप्न है, और तुम्हे इस पर विश्वास भी आ गया। मैं तुमसे कितनी बार कह चुका कि स्वप्न केवल चिन्तित मन की क्रीड़ा है।'

'तुम मुझसे छिपा रहे हो। कोई-न-कोई बात हुई है ज़रूर। तुम्हारा चेहरा बोल रहा है। अच्छा, तुम इस वक्त यहाँ क्यों खड़े हो? यह तो तुम्हारे पढने का समय है।'

'यों ही, जरा घूमने चला आया था।'

'झूठ बोलते हो। खा जाओ मेरे सिर की कसम।'

'अब तुम्हें एतबार ही न आये तो क्या करूँ?'

'क़सम क्यों नहीं खाते?'

'कसम को मैं झूठ का अनुमोदक समझता हूँ।'

गुलशन ने फिर उनके मुख पर तीव्र दृष्टि डाली। फिर एक क्षण के बाद बोली—अच्छी बात है। चलो घर चलें।

कावसजी ने मुसकिराकर कहा—तुम फिर मुझसे लड़ाई करोगी?

'सरकार से लड़कर भी तुम सरकार की अमलदारी में रहते हो कि नहीं? मैं भी तुमसे लड़ूँगी, मगर तुम्हारे साथ रहूँगी।'

'हम इसे कब मानते हैं कि यह सरकार की अमलदारी है?'

'यह तो तुम मुँह से कहते हो। तुम्हारा रोआं रोआं इसे स्वीकार करता है। नहीं, तुम इस वक्त जेल में होते।'

'अच्छा चलो, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।'

'मैं अकेली नहीं जाने की। आखिर सुनूँ, तुम यहाँ क्या कर रहे हो?'

कावसजी ने बहुत कोशिश की कि गुलशन यहाँ से किसी तरह चली जाय; लेकिन वह जितना ही इस पर ज़ोर देते थे, उतना ही गुलशन का आग्रह भी बढता जाता था। आखिर मजबूर होकर कावसजी को शीरीं और शापूर के झगड़े का वृत्तान्त कहना ही पड़ा, यद्यपि इस नाटक में उनका अपना जो भाग था, उसे उन्होंने बड़ी होशियारी से छिपा देने की चेष्टा की।

गुलशन ने विचार करके कहा—तो तुम्हें भी यह सनक सवार हुई?

कावसजी ने तुरन्त प्रतिवाद किया—कैसी सनक! मैंने क्या किया? अब यह तो इंसानियत नहीं है कि एक मित्र की स्त्री मेरी सहायता मांगे और मैं बगलें झांकने लगूँ!

'झूठ बोलने के लिए बडो अक्ल की जरूरत होती है प्यारे, और वह तुममे नहीं है। समझे? चुपके से जाकर शीरीं बानू को सलाम करो और कहो कि आराम से अपने घर में बैठें। सुख कभी सम्पूर्ण नहीं मिलता। विधि इतना घोर पक्षपात नहीं कर सकता। गुलाब मे कांटे होते ही हैं। अगर सुख भोगना है तो उसे उसके दोषों के साथ भोगना पड़ेगा। अभी विज्ञान ने कोई ऐसा उपाय नहीं निकाला कि हम सुख के काँटों को अलग कर सकें। मुफ्त का माल उड़ानेवालों को ऐयाशी के सिवा और क्या सूझेगी? धन अगर सारी दुनिया का विलास न मोल लेना चाहे तो वह धन ही कैसा? शीरीं के लिए भी क्या वह द्वार नहीं खुले हैं, जो शापूरजी के लिए खुले हैं? उससे कहो—शापूर के घर में रहे, उनके धन को भोगे और भूल जाय कि वह शापूर की स्त्री है, उसी तरह जैसे शापूर भूल गया है कि वह शीरीं का पति है। जलना और कुढ़ना छोड़कर विलास का आनन्द लूटे। उसका धन एक-से-एक रूपवान् विद्वान् नवयुवकों को खींच लायेगा। तुमने ही एक बार मुझसे कहा था कि एक जमाने मे फ्रान्स में धनवान् विलासिनी महिलाओं का समाज पर आधिपत्य था। उनके पति सब कुछ देखते थे और मुँह खोलने का साहस न करते थे। और मुँह क्या खोलते। वे ख़ुद इसी धुन में मस्त थे। यही धन का प्रसाद है। तुमसे न बने, तो चलो, मैं शीरीं को समझा दूँ। ऐयाश मर्द की स्त्री अगर ऐयाश न हो, तो उसकी कायरता है—लतखोरपन है।'

कावसजी ने चकित होकर कहा—लेकिन तुम भी तो धन की उपासक हो?

गुलशन ने शर्मिन्दा होकर कहा—यही तो जीवन का शाप है। हम उसी चीज़ पर लपकते हैं, जिसमें हमारा अमगल है, सत्यानाश है। मैं बहुत दिनों पापा के इलाके मे रही हूँ। चारों तरफ किसान और मजूर रहते थे। बेचारे दिन-भर पसीना बहाते थे, शाम को घर जाते थे। ऐयाशी और बदमाशी का कहीं नाम न था। और यहाँ शहर मे देखती हूँ कि सभी बड़े घरो मे यही रोना है। सब-के-सब हथकडों से पैसे कमाते हैं और अस्वाभाविक जीवन बिताते हैं। आज तुम्हें कहीं से धन मिल जाय, तो तुम शापूर बन जाओगे, निश्चय।

'तब शायद तुम भी अपने बताये हुए मार्ग पर चलोगी, क्यों?'

'शायद नहीं, अवश्य।'

———

डामुल का क़ैदी

दस बजे रात का समय, एक विशाल भवन मे एक सजा हुआ कमरा, बिजली की अँगीठी, बिजली का प्रकाश। बड़ा दिन आ गया है।

सेठ खूबचन्दजी अफसरों को डालियाँ भेजने का सामान कर रहे हैं। फलों, मिठाइयों, मेवों, खिलौनों की छोटी-छोटी पहाड़ियाँ सामने खड़ी हैं। मुनीमजी अफसरों के नाम बोलते जाते है और सेठजी अपने हाथों यथा-सम्मान डालियाँ लगाते जाते है।

खूबचन्दजी एक मिल के मालिक है, बम्बई के बडे ठीकेदार। एक बार नगर के मेयर भी रह चुके हैं। इस वक्त भी कई व्यापारी-सभाओं के मत्री और व्यापार-मडल के सभापति हैं। इस धन, यश, मान की प्राप्ति मे डालियों का कितना भाग है, यह कौन कह सकता है. पर इस अवसर पर सेठजी के दस-पाँच हजार बिगड़ जाते थे। अगर कुछ लोग उन्हे खुशामदी, टोडी, जीहजूर कहते है, तो कहा करें। इससे सेठजी का क्या बिगड़ता है। सेठजी उन लोगो मे नहीं हैं, जो नेकी करके दरिया में डाल दें।

पुजारीजी ने आकर कहा—सरकार, बड़ा विलम्ब हो गया। ठाकुरजी का भोग तैयार है।

अन्य धनिकों की भाँति सेठजी ने भी एक मन्दिर बनवाया था। ठाकुरजी की पूजा करने के लिए एक पुजारी नौकर रख लिया था।

पुजारी को रोष-भरी आँखों से देखकर कहा—देखते नहीं हो, क्या कर रहा हूँ? यह भी एक काम है, खेल नहीं। तुम्हारे ठाकुरजी ही सब कुछ न दे देंगे। पेट भरने पर ही पूजा सूझती है। घटे-आध-घटे की देर हो जाने से ठाकुरजी भूखों न मर जायँगे।

पुजारीजी अपना-सा मुँह लेकर चले गये और सेठजी फिर डालियाँ सजाने मे मसरूफ हो गये।

सेठजी के जीवन का मुख्य काम धन कमाना था, और उसके साधनों की रक्षा करना उनका मुख्य कर्तव्य। उनके सारे व्यवहार इसी सिद्धान्त के अधीन थे। मित्रों से इसलिए मिलते थे कि उनसे धनोपार्जन में मदद मिलेगी। मनोरजन भी करते थे, तो व्यापार की दृष्टि से, दान बहुत देते थे, पर उसमें भी यही लक्ष्य सामने रहता था। सध्या और वन्दना उनके लिए पुरानी लकीर थी, जिसे पीटते रहने में स्वार्थ सिद्ध होता था मानो कोई बेगार हो। सब कामों से छुट्टी मिली, तो जाकर ठाकुरद्वारे मे खड़े हो गये, चरणामृत लिया और चले आये।

एक घटे के बाद पुजारीजी फिर सिर पर सवार हो गये। खूबचन्द उनका मुँह देखते ही झुँझला उठे। जिस पूजा में तत्काल फायदा होता था, उसमें कोई बार बार विघ्न डाले तो क्यों न बुरा लगे। बोले—कह दिया, अभी मुझे फ़ुरसत नहीं है। खोपड़ी पर सवार हो गये। मै पूजा का गुलाम नहीं हूँ। जब घर में पैसे होते हैं, तभी ठाकुरजी की पूजा भी होती है। घर में पैसे न होंगे, तो ठाकुरजी भी पूछने न आयेंगे।

पुजारी हताश होकर चला गया और सेठजी फिर अपने काम में लगे।

सहसा उनके मित्र केशवरामजी पधारे। सेठजी उठकर उनके गले से लिपट गये और बोले— किधर से? मैं तो अभी तुम्हें बुलवानेवाला था।

केशवराम ने मुसकिराकर कहा—इतनी रात गये तक डालियाँ ही लग रही हैं! अब तो समेटो। कल का सारा दिन पड़ा है, लगा लेना। तुम कैसे इतना काम करते हो, मुझे तो यही आश्चर्य होता है। आज क्या प्रोग्राम था, याद है?

सेठजी ने गर्दन उठाकर स्मरण करने की चेष्टा करके कहा—क्या कोई विशेष प्रोग्राम था? मुझे तो याद नहीं आता। (एकाएक स्मृति जाग उठती है) अच्छा वह बात! हाँ याद आ गया। अभी देर तो नहीं हुई। इस झमेले में ऐसा भूला कि ज़रा भी याद न रही।

'तो चलो फिर। मैंने तो समझा था, तुम वहाँ पहुँच गये होगे।'

'मेरे न जाने से लैला नाराज़ तो नहीं हुई?'

'यह तो वहाँ चलने पर मालूम होगा।'

'तुम मेरी ओर से क्षमा माँग लेना।'

'मुझे क्या ग़रज़ पड़ी है, जो आपकी ओर से क्षमा माँगूँ! वह तो त्योरियाँ

चढाये बैठी थी। कहने लगी—उन्हें मेरी परवाह नहीं, तो मुझे भी उनकी परवाह नहीं। मुझे आने ही न देती थी। मैंने शान्त तो कर दिया है, लेकिन कुछ बहाना करना ही पड़ेगा।

खूबचन्द ने आँखें मारकर कहा—मैं कह दूँगा, गवर्नर साहब ने ज़रूरी काम से बुला भेजा था।

'जी नहीं, यह बहाना वहाँ न चलेगा। कहेगी—तुम मुझसे पूछकर क्यो नहीं गये। वह अपने सामने गवर्नर को समझती ही क्या है। रूप और यौवन बड़ी चीज़ है भाई साहब, आप नहीं जानते।'

'तो फिर तुम्हीं बताओ, कौन-सा बहाना करूँ?'

'अजी बीस बहाने हैं। कहना, दोपहर से १०६ डिग्री का ज्वर था। अभी-अभी उठा हूँ।'

दोनो मित्र हँसे और लैला का मुजरा सुनने चले।

(२)

सेठ खूबचन्द का स्वदेशी-मिल देश के बहुत बड़े मिलो मे है। जबसे स्वदेशी-आन्दोलन चला है, मिल के माल की खपत दूनी हो गई है। सेठजी ने कपड़े की दर मे दो आने रुपये बढा दिये हैं। फिर भी बिक्री मे कोई कमी नहीं है, लेकिन इधर अनाज कुछ सस्ता हो गया है, इसलिए सेठजी ने मजूरी घटाने की सूचना दे दी है। कई दिन से मजूरों के प्रतिनिधियों और सेठजी मे बहस होती रही। सेठजी जौ-भर भी न दबना चाहते थे। जब उन्हे आधी मजूरी पर नये आदमी मिल सकते हैं, तब वह क्यो पुराने आदमियों को रखें। वास्तव मे यह चाल पुराने आदमियों को भगाने ही के लिए चली गई थी।

अन्त मे मजूरों ने यही निश्चय किया कि हड़ताल कर दी जाय।

प्रातःकाल का समय है। मिल के हाते मे मजूरों की भीड़ लगी हुई है। कुछ लोग चारदीवारी पर बैठे हैं, कुछ जमीन पर, कुछ इधर-उधर मटरगश्त कर रहे हैं। मिल के द्वार पर कान्स्टेबलों का पहरा है। मिल में पूरी हड़ताल है।

एक युवक को बाहर से आते देखकर सैकड़ो मजूर इधर-उधर से दौड़कर उसके चारो ओर जमा हो गये। हरेक पूछ रहा था—सेठजी ने क्या कहा?

यह लम्बा, दुबला, साँवला युवक मजूरों का प्रतिनिधि था। उसकी आकृति में कुछ ऐसी दृढ़ता, कुछ ऐसी निष्ठा, कुछ ऐसी गम्भीरता थी कि सभी मजूरों ने उसे नेता मान लिया था।

युवक के स्वर में निराशा थी, क्रोध था, आहत सम्मान का रुदन था।

'कुछ नहीं हुआ। सेठजी कुछ नहीं सुनते।'

चारों ओर से आवाज़ें आईं—तो हम भी उनकी ख़ुशामद नहीं करते।

युवक ने फिर कहा—वह मजूरी घटाने पर तुले हुए हैं, चाहे कोई काम करे या न करे। इस मिल से इस साल दस लाख का फ़ायदा हुआ है। यह हम लोगों ही की मेहनत का फल है, लेकिन फिर भी हमारी मजूरी काटी जा रही है। धनवानों का पेट कभी नहीं भरता। हम निर्बल हैं, निस्सहाय हैं, हमारी कौन सुनेगा। व्यापार-मण्डल उनकी ओर है, सरकार उनकी ओर है, मिल के हिस्सेदार उनकी ओर हैं, हमारा कौन है? हमारा उद्धार तो भगवान् ही करेंगे।

एक मजूर बोला—सेठजी भी भगवान् के बड़े भगत हैं।

युवक ने मुसकराकर कहा—हाँ, बहुत बड़े भक्त हैं। यहाँ किसी ठाकुरद्वारे में उनके ठाकुरद्वारे की-सी सजावट नहीं है, कहीं इतने विधिपूर्वक भोग नहीं लगता, कहीं इतने उत्सव नहीं होते, कहीं ऐसी झाँकी नहीं बनती। उसी भक्ति का प्रताप है कि आज नगर में इनका इतना सम्मान है। औरों का माल पड़ा सड़ता है, इनका माल गोदाम मे नहीं जाने पाता। वही भक्तराज हमारी मजूरी घटा रहे हैं। मिल में अगर घाटा हो तो हम आधी मजूरी पर काम करेंगे, लेकिन जब लाखों का लाभ हो रहा है, तो किस नीति से हमारी मजूरी घटाई जा रही है? हम अन्याय नहीं सह सकते। प्रण कर लो कि किसी बाहरी आदमी को मिल में घुसने न देंगे, चाहे वह अपने साथ फौज लेकर ही क्यों न आये। कुछ परवाह नहीं, हमारे ऊपर लाठियाँ बरसें, गोलियाँ चलें...

एक तरफ से आवाज़ आई—सेठजी!

सभी पीछे फिर फिरकर सेठजी की तरफ देखने लगे। सभी के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। कितने ही तो डरकर कांस्टेबलों से मिल के अन्दर जाने के लिए चिरौरी करने लगे, कुछ लोग रुई की गाँठों की आड़ में जा छिपे। थोड़े से आदमी कुछ सहमे हुए—पर जैसे जान हथेली पर लिये—युवक के साथ खड़े रहे।

सेठजी ने मोटर से उतरते हुए कास्टेबलों को बुलाकर कहा—इन आदमियों को मारकर बाहर निकाल दो, इसी दम।

मजूरों पर डण्डे पड़ने लगे। दस-पाँच तो गिर पड़े। बाकी अपनी-अपनी जान लेकर भागे। वह युवक दो आदमियों के साथ अभी तक डटा खड़ा था।

प्रभुता असहिष्णु होती है। सेठजी खुद आ जायँ, फिर भी ये लोग सामने खड़े रहे, यह तो खुला हुआ विद्रोह है। यह बेअदबी कौन सह सकता है। जरा इस लौंडे को देखो। देह पर साबित कपड़े नहीं है, मगर जमा खडा है, मानो मैं कुछ हूँ ही नहीं। समझता होगा, यह मेरा कर ही क्या सकते हैं।

सेठजी ने रिवाल्वर निकाल लिया और इस समूह के निकट आकर उसे निकल जाने का हुक्म दिया, पर वह समूह अचल खड़ा था। सेठजी उन्मत्त हो गये। यह हेकड़ी! तुरन्त हेड कास्टेबल को बुलाकर हुक्म दिया—इन आदमियों को गिरफ्तार कर लो।

कास्टेबलों ने इन तीनों आदमियों को रस्सियों से जकड़ दिया और उन्हे फाटक की ओर ले चले। इनका गिरफ्तार होना था कि एक हजार आदमियों का दल रेला मारकर मिल से निकल आया और कैदियों की तरफ लपका। कास्टेबलों ने देखा, बन्दूक चलाने पर भी जान न बचेगी, तो मुलजिमों को छोड़ दिया और भाग खड़े हुए। सेठजी को ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन सारे आदमियों को तोप पर उड़वा दें। क्रोध मे आत्म रक्षा की भी उन्हें परवाह न थी। कैदियों को सिपाहियो से छुड़ाकर वह जन-समूह सेठजी की ओर आ रहा था। सेठजी ने समझा—सब-के-सब मेरी जान लेने आ रहे हैं। अच्छा! वह लौण्डा गोपी सभी के आगे है! यही यहाँ भी इनका नेता बना हुआ है। मेरे सामने कैसा भीगी बिल्ली बना हुआ था, पर यहाँ सबसे आगे-आगे आ रहा है!

सेठजी अब भी समझौता कर सकते थे, पर यों दबकर विद्रोहियो से दान माँगना उन्हे असह्य था।

इतने मे क्या देखते हैं कि वह बढता हुआ समूह बीच ही में रुक गया। युवक ने उन आदमियों से कुछ सलाह की और, तब अकेला सेठजी की तरफ चला। सेठजी ने मन मे कहा—शायद मुझसे प्राण-दान की शर्तें तय करने आ रहा है। सभों ने आपस में यही सलाह की है। ज़रा देखो, कितने निश्शक भाव से चला आता है!

जैसे कोई विजयी सेनापति हो। यह कांस्टेबल कैसे दुम दबाकर भाग खड़े हुए; लेकिन तुम्हें तो नहीं छोड़ता बचा, जो कुछ हो, देखा जायगा, जब तक मेरे पास यह रिवाल्वर है, तुम मेरा क्या कर सकते हो। तुम्हारे सामने तो घुटना न टेकूँगा।

युवक समीप आ गया और कुछ बोला ही चाहता था कि सेठजी ने रिवाल्वर निकालकर फायर कर दिया। युवक भूमि पर गिर पड़ा और हाथ-पाँव फेकने लगा।

उसके गिरते ही मजूरो में उत्तेजना फैल गई। अभी तक उनमे हिंसाभाव न था, वे केवल सेठजी को यह दिखा देना चाहते थे कि तुम हमारी मजूरी काटकर शान्त नहीं बैठ सकते, किन्तु हिंसा ने हिंसा को उद्दीप्त कर दिया। सेठजी ने देखा, प्राण सकट में है और समतल भूमि पर वह रिवाल्वर से भी देर तक प्राण-रक्षा नहीं कर सकते, पर भागने का कहीं स्थान न था। जब कुछ न सूझा, तो वह रुई की गाँठ पर चढ गये और रिवाल्वर दिखा-दिखाकर नीचेवालों को ऊपर चढने से रोकने लगे। नीचे पाँच-छ. सौ आदमियों का घेरा था। ऊपर सेठजी अकेले रिवाल्वर लिये खड़े थे। कहीं से कोई मदद नहीं आ रही है और प्रतिक्षण प्राणो की आशा क्षीण होती जा रही है। कान्स्टेबलों ने भी अफसरों को यहाँ की परिस्थिति नहीं बतलाई, नहीं तो क्या अबतक कोई न आता! केवल पाँच गोलियों से कबतक जान बचेगी? एक क्षण मे यह सब समाप्त हो जायँगी। भूल हुई, मुझे बन्दूक और कारतूस लेकर आना चाहिए था। फिर देखता इनकी बहादुरी। एक-एक को भूनकर रख देता, मगर क्या जानता था, यहाँ इतनी भयकर परिस्थिति आ खड़ी होगी।

नीचे के एक आदमी ने कहा—लगा दो गाँठों मे आग, निकालो तो एक माचिस। रुई से धन कमाया है, रुई की चिता पर जले।

तुरन्त एक आदमी ने जेब से दियासलाई निकाली और आग लगाना ही चाहता था कि सहसा वही जख्मी युवक पीछे से आकर सामने खड़ा हो गया। उसके पाँव मे पट्टी बँधी हुई थी, फिर भी रक्त बह रहा था। उसका मुख पीला पड़ गया था और उसके तनाव से मालूम होता था कि युवक को असह्य वेदना हो रही है। उसे देखते ही लोगों ने चारों तरफ से आकर घेर लिया। उस हिंसा के उन्माद मे भी अपने नेता को जीता-जागता देखकर उनके हर्ष की सीमा न रही। जयघोष से आकाश गूँज उठा—गोपीनाथ की जय।

ज़ख्मी गोपीनाथ ने हाथ उठाकर समूह को शान्त हो जाने का सकेत करके

कहा—भाइयो, मैं तुमसे एक शब्द कहने आया हूँ। कह नहीं सकता, बचूँगा या नहीं। सम्भव है, तुमसे यह मेरा अन्तिम निवेदन हो। तुम क्या करने जा रहे हो? दरिद्र मे नारायण का निवास है, क्या इसे मिथ्या करना चाहते हो? धनी को अपने धन का मद हो सकता है। तुम्हे किस बात का अभिमान है? तुम्हारे झोपड़ो मे क्रोध और अहकार के लिए कहाँ स्थान है! मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, सब लोग यहाँ से हट जाओ, अगर तुम्हे मुझसे कुछ स्नेह है, अगर मैंने तुम्हारी कुछ सेवा की है, तो अपने घर जाओ और सेठजी को घर जाने दो।

चारो तरफ से आपत्तिजनक आवाज़ें आने लगीं, लेकिन गोपीनाथ का विरोध करने का किसी मे साहस न हुआ। धीरे-धीरे लोग वहाँ से हट गये। मैदान साफ हो गया, तो गोपीनाथ ने विनम्र भाव से सेठजी से कहा—सरकार, अब आप चले जायँ। मैं जानता हूँ, आपने मुझे धोखे से मारा। मैं केवल यही कहने आपके पास जा रहा था, जो अब कह रहा हूँ। मेरा दुर्भाग्य था कि आपको भ्रम हुआ। ईश्वर की यही इच्छा थी।

सेठजी को गोपीनाथ पर कुछ श्रद्धा होने लगी है। नीचे उतरने मे कुछ शका अवश्य है, पर ऊपर भी तो प्राण बचने की कोई आशा नहीं है। वह इधर-उधर सशक नेत्रों से ताकते हुए उतरते हैं। जन-समूह कुल दस गज़ के अन्तर पर खड़ा है। प्रत्येक मनुष्य की आँखों में विद्रोह और हिसा भरी हुई है। कुछ लोग दबी ज़बान से—पर सेठजी को सुनाकर—अशिष्ट आलोचनाएँ कर रहे हैं, पर किसी मे इतना साहस नहीं है कि उनके सामने आ सके। उस मरते हुए युवक के आदेश मे इतनी शक्ति है।

सेठजी मोटर पर बैठकर चले ही थे कि गोपी जमीन पर गिर पड़ा।

(३)

सेठजी की मोटर जितनी तेज़ी से जा रही थी, उतनी ही तेज़ी से उनकी आँखों के सामने आहत गोपी का छायाचित्र भी दौड़ रहा था। भाँति-भाँति की कल्पनाएँ मन मे आने लगीं। अपराधी भावनाएँ चित्त को आन्दोलित करने लगीं, अगर गोपी उनका शत्रु था, तो उसने क्यों उनकी जान बचाई—ऐसी दशा मे, जब वह स्वय मृत्यु के पजे मे था? इसका उनके पास कोई जवाब न था। निरपराध गोपी, जैसे हाथ बाँधे उनके सामने खड़ा कह रहा था—आपने मुझ बेगुनाह को क्यों मारा?

भोग-लिप्सा आदमी को स्वार्थान्ध बना देती है। फिर भी सेठजी की आत्मा अभी इतनी अभ्यस्त और कठोर न हुई थी कि एक निरपराध की हत्या करके उन्हे ग्लानि न होती। वह सौ-सौ युक्तियों से मन को समझाते थे, लेकिन न्याय-बुद्धि किसी युक्ति को स्वीकार न करती थी। जैसे यह धारणा उनके न्याय-द्वार पर बैठी सत्याग्रह कर रही थी और वरदान लेकर ही टलेगी। वह घर पहुँचे तो इतने दुखी और हताश थे, मानो हाथों मे हथकड़ियाँ पड़ी हों!

प्रमोला ने घबराई हुई आवाज़ मे पूछा—हड़ताल का क्या हुआ? अभी हो रही है या बन्द हो गई? मजूरों ने दगा-फसाद तो नहीं किया? मैं तो बहुत डर रही थी।

खूबचन्द ने आरामकुरसी पर लेटकर एक लम्बी साँस ली और बोले—कुछ न पूछो, किसी तरह जान बच गई, बस यही समझ लो। पुलिस के आदमी तो भाग खड़े हुए, मुझे लोगों ने घेर लिया। बारे किसी तरह जान लेकर भागा। जब मैं चारों तरफ से घिर गया, तो क्या करता, मैंने भी रिवाल्वर छोड़ दिया।

प्रमीला भयभीत होकर बोली—कोई जख्मी तो नहीं हुआ?

'वही गोपीनाथ जख्मी हुआ, जो मजूरों की तरफ से मेरे पास आया करता था। उसका गिरना था कि एक हज़ार आदमियों ने मुझे घेर लिया। मैं दौड़कर रूई की गाँठों पर चढ गया। जान बचने की कोई आशा न थी। मजूर गाँठों मे आग लगाने जा रहे थे।

प्रमीला काँप उठी।

'सहसा वही जख़्मी आदमी उठकर मजूरों के सामने आया और उन्हे समझाकर मेरी प्राण-रक्षा की। वह न आ जाता, तो मै किसी तरह जीता न बचता।'

'ईश्वर ने बड़ी कुशल की! इसी लिए मै मना कर रही थी कि अकेले न जाओ। उस आदमी को लोग अस्पताल ले गये होंगे?'

सेठजी ने शोक-भरे स्वर में कहा—मुझे भय है कि वह मर गया होगा। जब मै मोटर पर बैठा, तो मैंने देखा, वह गिर पड़ा और बहुत-से आदमी उसे घेरकर खड़े हो गये। न-जाने उसकी क्या दशा हुई।

प्रमीला उन देवियों मे थी, जिनकी नसों में रक्त की जगह श्रद्धा बहती है। स्नान,

पूजा, तप और व्रत यही उसके जीवन के आधार थे। सुख में, दुःख में, बीमारी में, आराम मे, उपासना ही उसकी कवच थी। इस समय भी उस पर संकट आ पड़ा है। ईश्वर के सिवा कौन उसका उद्धार करेगा! वह वहीं खड़ी द्वार की ओर ताक रही थी और उसका धर्म-निष्ठ मन ईश्वर के चरणो मे गिरकर क्षमा की भिक्षा माँग रहा था।

सेठजी बोले—यह मजूर उस जन्म का कोई महान् पुरुष था। नहीं तो जिस आदमी ने उसे मारा, उसी को प्राण-रक्षा के लिए क्यों इतनी तपस्या करता!

प्रमीला श्रद्धा-भाव से बोली—भगवान् की प्रेरणा, और क्या! भगवान् की दया होती है, तभी हमारे मन मे सद्‌विचार भी आते हैं।

सेठजी ने जिज्ञासा की—तो फिर बुरे विचार भी ईश्वर की प्रेरणा ही से आते होंगे?

प्रमीला तत्परता के साथ बोली—ईश्वर आनन्द-स्वरूप हैं। दीपक से कभी अन्धकार नहीं निकल सकता।

सेठजी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाहर शोर सुनकर चौंक पड़े। दोनो ने सड़क की तरफ की खिड़की खोलकर देखा, तो हज़ारों आदमी काली झण्डियाँ लिये दाहिनी तरफ से आते दिखाई दिये। झण्डियो के बाद एक अर्थी थी, जिस पर फूलों की वर्षा हो रही थी। अर्थी के पीछे जहां तक निगाह जाती थी, सिर-ही-सिर दिखाई देते थे। यह गोपीनाथ के जनाजे का जलूस था। सेठजी तो मोटर पर बैठकर मिल से घर की ओर चले, उधर मजूरो ने दूसरे मिलो मे इस हत्याकाण्ड की सूचना भेज दी। दम-के-दम में सारे शहर में यह खबर बिजली की तरह दौड़ गई और कई मिलों मे हड़ताल हो गई। नगर मे सनसनी फैल गई। किसी भीषण उपद्रव के भय से लोगो ने दुकानें बन्द कर दीं। यह जलूस नगर के मुख्य स्थानों का चक्कर लगाता हुआ सेठ खूबचन्द के द्वार पर आया है और गोपीनाथ के खून का बदला लेने पर तुला हुआ है। उधर पुलिस अधिकारियो ने सेठजी की रक्षा करने का निश्चय कर लिया है, चाहे खून की नदी ही क्यों न बह जाय। जलूस के पीछे सशस्त्र पुलिस के दो सौ जवान डबल मार्च से उपद्रवकारियों का दमन करने चले आ रहे हैं।

सेठजी अभी अपने कर्तव्य का निश्चय न कर पाये थे कि विद्रोहियो ने कोठी के दफ्तर मे घुसकर लेन-देन के बही-खातो को जलाना और तिजोरियों को तोड़ना शुरू कर दिया। मुनीम और अन्य कर्मचारी और चौकीदार सब-के-सब अपनी-अपनी जान

लेकर भागे। उसी वक्त बाईं ओर से पुलिस की दौड़ आ धमकी और पुलिस-कमिश्नर ने विद्रोहियों को पाँच मिनट के अन्दर यहाँ से भाग जाने का हुक्म दे दिया।

समूह ने एक स्वर से पुकारा—गोपीनाथ की जय!

एक घण्टा पहले अगर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई होती, तो सेठजी ने बड़ी निश्चिन्तता से उपद्रवकारियों को पुलिस की गोलियों का निशाना बनने दिया होता, लेकिन गोपीनाथ के उस देवोपम सौजन्य और आत्म-समर्पण ने, जैसे उनके मन:स्थित विकारों का शमन कर दिया था और अब साधारण औपधि भी उन पर रामबाण का-सा चमत्कार दिखाती थी।

उन्होंने प्रमीला से कहा—मैं जाकर सबके सामने अपना अपराध स्वीकार किये लेता हूँ। नहीं, मेरे पीछे न-जाने कितने घर मिट जायँगे।

प्रमीला ने काँपते हुए स्वर में कहा—यहीं खिड़की से आदमियों को क्यों नहीं समझा देते? वह जितनी मजूरी बढ़ाने को कहते हो, बढा दो।

'इस समय तो उन्हें मेरे रक्त की प्यास है। मजूरी बढाने का उन पर कोई असर न होगा।'

सजल नेत्रों से देखकर प्रमीला बोली—तब तो तुम्हारे ऊपर हत्या का अभियोग चल जायगा।

सेठजी ने धीरता से कहा—भगवान् की यही इच्छा है, तो हम क्या कर सकते हैं। एक आदमी का जीवन इतना मूल्यवान् नहीं है, कि उसके लिए असख्य जानें ली जायँ।

प्रमीला को मालूम हुआ, साक्षात् भगवान् सामने खड़े हैं। वह पति के गले से लिपटकर बोली—तो मुझे क्या कहे जाते हो?

सेठजी ने उसे गले लगाते हुए कहा—भगवान् तुम्हारी रक्षा करेंगे। उनके मुख से और कोई शब्द न निकला। प्रमीला की हिचकियाँ बँधी हुई थीं। उसे रोता छोड़कर सेठजी नीचे उतरे।

वह सारी सम्पत्ति, जिसके लिए उन्होंने जो कुछ करना चाहिए, वह भी किया; जो कुछ न करना चाहिए, वह भी किया; जिसके लिए खुशामद की, छल किया, अन्याय किये, जिसे वह अपने जीवन-तप का वरदान समझते थे, आज कदाचित् सदा के लिए उनके हाथ से निकली जाती थी; पर उन्हे ज़रा भी मोह न था, ज़रा भी

खेद न था। वह जानते थे, उन्हें डामुल की सजा होगी, यह सारा कारोबार चौपट हो जायगा, यह सम्पत्ति धूल में मिल जायगी, कौन जाने प्रमीला से फिर भेंट होगी या नहीं, कौन मरेगा, कौन जियेगा, कौन जानता है, मानो वह स्वेच्छा से यमदूतों का आवाहन कर रहे हों। और वही वेदनामय विवशता, जो हमें मृत्यु के समय दबा लेती है, उन्हें भी दबाये हुए थी।

प्रमीला उनके साथ-ही-साथ नीचे तक आई। वह उनके साथ उस समय तक रहना चाहती थी, जब तक जाब्ता उसे पृथक् न कर दे; लेकिन सेठजी उसे छोड़कर जल्दी से बाहर निकल गये और वह वहीं खड़ी रोती रह गई।

(४)

बलि पाते ही विद्रोह का पिशाच शान्त हो गया। सेठजी एक सप्ताह हवालात में रहे। फिर उन पर अभियोग चलने लगा। बम्बई के सबसे नामी बैरिस्टर गोपी की तरफ से पैरवी कर रहे थे। मजूरों ने चन्दे से अपार धन एकत्र किया था और यहाँ तक तुले हुए थे कि अगर अदालत से सेठजी बरी भी हो जायँ, तो उनकी हत्या कर दी जाय। नित्य इजलास में कई हजार कुली जमा रहते। अभियोग सिद्ध ही था। मुलज़िम ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। उसके वकीलों ने उसके अपराध को हलका करने की दलीलें पेश कीं। फैसला यह हुआ कि चौदह साल का काला पानी हो गया।

सेठजी के जाते ही मानो लक्ष्मी रूठ गई, जैसे उस विशालकाय वैभव की आत्मा निकल गई हो। साल भर के अन्दर उस वैभव का कंकाल-मात्र रह गया। मिल तो पहले ही बन्द हो चुकी थी। लेना-देना चुकाने पर कुछ न बचा। यहाँ तक कि रहने का घर भी हाथ से निकल गया। प्रमीला के पास लाखों के आभूषण थे। वह चाहती, तो उन्हें सुरक्षित रख सकती थी; पर त्याग की धुन में उन्हें भी निकाल फेंका। सातवें महीने में जब उनके पुत्र का जन्म हुआ, तो वह छोटे-से किराये के घर में थी। पुत्र-रत्न पाकर अपनी सारी विपत्ति भूल गई। कुछ दुःख था तो यही कि पतिदेव होते, तो इस समय कितने आनन्दित होते।

प्रमीला ने जिन कष्टों को झेलते हुए पुत्र का पालन किया, इसकी कथा लम्बी है। सब कुछ सहा; पर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। जिस तत्परता से उसने देने चुकाये थे, उससे लोगों की उस पर भक्ति हो गई थी। कई सज्जन तो

उसे कुछ मासिक सहायता देने पर तैयार थे ; लेकिन प्रमीला ने किसी का एहसान न लिया। भले घरों की महिलाओं से उसका परिचय था ही। वह घरों में स्वदेशो वस्तुओं का प्रचार करके गुजर-भर को कमा लेती थी। जब तक बच्चा दूध पीता था, उसे अपने काम मे बड़ी कठिनाई पड़ी ; लेकिन दूध छुड़ा देने के बाद वह बच्चे को दाई को सौंपकर आप काम करने चली जाती। दिन-भर के कठिन परिश्रम के बाद जब वह सन्ध्या-समय घर आकर बालक को गोद मे उठा लेती, तो उसका मन हर्ष से उन्मत्त होकर पति के पास उड जाता, जो न-जाने किस दशा मे काले कोसों पड़ा था। उसे अपनो सम्पत्ति के लुट जाने का लेशमात्र भी दु ख नहीं है। उसे केवल इतनी ही लालसा है कि स्वामी कुशल से लौट आयें और बालक को देखकर अपनी आँखें शीतल करें। फिर तो वह इस दरिद्रता में भी सुखी और सतुष्ट रहेगी। वह नित्य ईश्वर के चरणों मे सिर झुकाकर स्वामी के लिए प्रार्थना करती है। उसे विश्वास है, ईश्वर जो कुछ करेंगे, उससे उसका कल्याण ही होगा। ईश्वर-वन्दना मे वह अलौकिक धैर्य और साहस और जीवन का आभास पाती है। प्रार्थना ही अब उसकी आशाओं का आधार है।

(५)

पन्द्रह साल की विपत्ति के दिन आशा की छाँह मे कट गये।

सन्ध्या का समय है। किशोर कृष्णचन्द्र अपनी माता के पास मन मारे बैठा हुआ है। वह माँ-बाप दोनो मे से एक को भी नहीं पड़ा।

प्रमीला ने पूछा—क्यो बेटा, तुम्हारी परीक्षा तो समाप्त हो गई ?

बालक ने गिरे हुए मन से जवाब दिया—हाँ, अम्माँ, हो गई, लेकिन मेरे परचे अच्छे नहीं हुए। मेरा मन पढने मे नहीं लगता।

यह कहते-कहते उसकी आँखे डबडबा आई। प्रमीला ने स्नेह भरे स्वर मे कहा—यह तो अच्छी बात नहीं है बेटा, तुम्हें पढने मे मन लगाना चाहिए।

बालक सजल नेत्रों से माता को देखता हुआ बोला—मुझे बार-बार पिताजी की याद आती रहती है। वह तो अब बहुत बूढ हो गये होंगे। मै सोचा करता हूँ कि वह आयेंगे, तो तन मन से उनकी सेवा करूँगा। इतना बड़ा उत्सर्ग किसने किया होगा अम्माँ ! उस पर लोग उन्हे निर्दयी कहते हैं। मैंने गोपीनाथ के बाल-बच्चो का पता लगा लिया अम्माँ ! उनकी घरवाली है, माता है और एक लडकी है, जो मुझसे दो

साल बड़ी है। माँ-बेटी दोनों उसी मिल में काम करती हैं। दादी बहुत बूढ़ी हो गई है।

प्रमीला ने विस्मित होकर कहा—तुझे उनका पता कैसे चला बेटा ?

कृष्णचन्द्र प्रसन्नचित्त होकर बोला—मै आज उस मिल मे चला गया था। मैं उस स्थान को देखना चाहता था, जहाँ मजूरों ने पिताजी को घेरा और वह स्थान भी, जहाँ गोपीनाथ गोली खाकर गिरा था ; पर उन दोनों मे एक स्थान भी न रहा। वहाँ इमारतें बन गई हैं। मिल का काम बडे जोर से चल रहा है। मुझे देखते ही बहुत से आदमियों ने मुझे घेर लिया। सब यही कहते थे, तुम तो भैया गोपीनाथ का रूप धरकर आये हो। मजूरों ने वहाँ गोपीनाथ की एक तस्वीर लटका रखी है। मैं उसे देखकर चकित हो गया अम्माँ, जैसे मेरी ही तस्वीर हो , केवल मूँछों का अन्तर है। जब मैंने गोपी की स्त्री के बारे मे पूछा, तो एक आदमी दौड़कर उसकी स्त्री को बुला लाया। वह मुझे देखते ही रोने लगी। और न-जाने क्यों मुझे भी रोना आ गया। बेचारी स्त्रियाँ बडे कष्ट में हैं। मुझे तो उनके ऊपर ऐसी दया आती है कि उनकी कुछ मदद करूँ।

प्रमीला को शङ्का हुई, लड़का इन झगड़ों मे पड़कर पढना न छोड़ बैठे। बोली—अभी तुम उनकी क्या मदद कर सकते हो बेटा ? धन होता, तो कहती, दस-पाँच रुपये महीना दे दिया करो , लेकिन घर का हाल तो तुम जानते ही हो। अभी मन लगाकर पढो। जब तुम्हारे पिताजी आ जायँ, तो जो इच्छा हो, वह करना।

कृष्णचन्द्र ने उस समय कोई जवाब न दिया , लेकिन आज से उनका नियम हो गया कि स्कूल से लौटकर एक बार गोपी के परिवार को देखने अवश्य जाता। प्रमीला उसे जेब खर्च के लिए जो पैसे देती, उसे उन अनाथों ही पर खर्च करता। कभी कुछ फल ले लिये, कभी शाक-भाजी ले ली।

एक दिन कृष्णचन्द्र को घर आने मे देर हुई, तो प्रमीला बहुत घबराई। पता लगाती हुई विधवा के घर पहुँची, तो देखा—एक तंग गली मे, एक सीले, सडे हुए मकान मे गोपी की स्त्री एक खाट पर पडी है और कृष्णचन्द्र खड़ा उसे पखा झल रहा है। माता को देखते ही बोला—मैं अभी घर न आऊँगा अम्माँ ! देखो, काकी कितनी बीमार हैं। दादी को कुछ सूझता नहीं, विन्नी खाना पका रही है। इनके पास कौन बैठे ?

प्रमीला ने खिन्न होकर कहा — अब तो अँधेरा हो गया, तुम यहाँ कब तक बैठे रहोगे। अकेला घर मुझे भी तो अच्छा नहीं लगता। इस वक्त चलो। सबेरे फिर आ जाना।

रोगिणी ने प्रमीला की आवाज़ सुनकर आँखें खोल दीं और मन्द स्वर में बोली— आओ माताजी, बैठो। मैं तो भैया से कह रही थी, देर हो रही है, अब घर जाओ; पर यह गये ही नहीं। मुझ अभागिनी पर इन्हे न-जाने क्यों इतनी दया आती है। अपना लड़का भी इससे अधिक मेरी सेवा न कर सकता।

चारों तरफ से दुर्गन्ध आ रही थी। उमस ऐसी थी कि दम घुटा जाता था। उस बिल मे हवा किधर से आती; पर कृष्णचन्द ऐसा प्रसन्न था, मानो कोई परदेशी चारो ओर से ठोकरें खाकर अपने घर मे आ गया हो।

प्रमीला ने इधर-उधर निगाह दौड़ाई, तो एक दीवार पर उसे एक तस्वीर दिखाई दी। उसने समीप जाकर उसे देखा, तो उसकी छाती धक्-से हो गई। बेटे की ओर देखकर बोली—तूने यह चित्र कब खिचवाया बेटा?

कृष्णचन्द्र मुसकिराकर बोला—यह मेरा चित्र नहीं है अम्माँ, गोपीनाथ का चित्र है।

प्रमीला ने अविश्वास से कहा—चल, झूठा कहीं का।

रोगिणी ने कातर भाव से कहा— नहीं अम्माँजी, यह मेरे आदमी ही का चित्र है। भगवान् की लीला कोई नहीं जानता, पर भैया की सूरत इतनी मिलती है कि मुझे अचरज होता है। जब मेरा ब्याह हुआ था, तब उनकी यही उम्र थी, और सूरत भी बिलकुल यही। यही हँसी थी, यही बात-चीत, यही स्वभाव। क्या रहस्य है, मेरी समझ मे नही आता। माताजी, जबसे यह आने लगे हैं, कह नहीं सकती, मेरा जीवन कितना सुखी हो गया है। इस मुहल्ले मे सब हमारे ही जैसे मजूर रहते है। उन सभी के साथ यह लड़कों की तरह रहते है। सब इन्हे देखकर निहाल हो जाते हैं।

प्रमीला ने कोई जवाब न दिया। उसके मन पर एक अव्यक्त शका छाई हुई थी, मानो उसने कोई बुरा सपना देखा हो। उसके मन मे बार-बार एक प्रश्न उठ रहा था, जिसकी कल्पना ही से उसके रोयें खड़े हो जाते थे।

सहसा उसने कृष्णचन्द्र का हाथ पकड़ लिया और बलपूर्वक खींचती हुई द्वार की ओर चली, मानो कोई उसे उसके हाथों से छीन लिये जाता हो।

रोगिणी ने केवल इतना कहा—माताजी, कभी-कभी भैया को मेरे पास आने दिया करना, नहीं मैं मर जाऊँगी।

(६)

पन्द्रह साल के बाद भूतपूर्व सेठ खूबचन्द अपने नगर के स्टेशन पर पहुँचे। हरा-भरा वृक्ष ठूँठ होकर रह गया था। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई, सिर के बाल सन, दाढ़ी जगल की तरह बढ़ी हुई, दाँतों का कहीं नाम नहीं, कमर झुकी हुई। ठूँठ को देखकर कौन पहचान सकता है कि यह वही वृक्ष है, जो फल-फूल और पत्तियों से लदा रहता था, जिस पर पक्षी कलरव करते रहते थे।

स्टेशन के बाहर निकलकर वह सोचने लगे—कहाँ जायँ? अपना नाम लेते लज्जा आती थी। किससे पूछें, प्रमीला जीती है या मर गई? अगर है, तो कहाँ है? उन्हे देखकर वह प्रसन्न होगी, या उनकी उपेक्षा करेगी?

प्रमीला का पता लगाने मे ज्यादा देर न लगी। खूबचन्द की कोठी अभी तक खूबचन्द की कोठी कहलाती थी। दुनिया कानून के उलट-फेर क्या जाने। अपनी कोठी के सामने पहुँचकर उन्होंने एक तम्बोली से पूछा—क्यों भैया, यही तो सेठ खूबचन्द की कोठी है!

तम्बोली ने उनकी ओर कुतूहल से देखकर कहा—खूबचन्द की जब थी तब थी, अब तो लाला देशराज की है।

'अच्छा! मुझे यहाँ आये बहुत दिन हो गये। सेठजी के यहाँ नौकर था। सुना, सेठजी को कालापानी हो गया था?'

'हाँ, बेचारे भलमनसी मे मारे गये। चाहते तो बेदाग बच जाते। सारा घर मिट्टी मे मिल गया।'

'सेठानी तो होंगी?'

'हाँ, सेठानी क्यों नहीं हैं। उनका लड़का भी है।'

सेठजी के चेहरे पर जैसे जवानी की झलक आ गई। जीवन का वह आनन्द और उत्साह, जो आज पन्द्रह साल से कुम्भकरण की भाँति पड़ा सो रहा था, मानो नयी स्फूर्ति पाकर उठ बैठा और अब उस दुर्बल काया में समा नहीं रहा है।

उन्होंने इस तरह तम्बोली का हाथ पकड़ लिया, जैसे घनिष्ठ परिचय हो और बोले—अच्छा, उनके लड़का भी है ! कहाँ रहती हैं भाई, बता दो, तो जाकर सलाम कर आऊँ। बहुत दिनों उनका नमक खाया है।

तम्बोली ने प्रमीला के घर का पता बता दिया। प्रमीला इसी महल्ले मे रहती थी। सेठजी जैसे आकाश मे उड़ते हुए यहाँ से आगे चले।

वह थोड़ी दूर गये थे कि ठाकुरजी का एक मन्दिर दिखाई दिया। सेठजी ने मन्दिर मे जाकर प्रतिमा के चरणों पर सिर झुका दिया। उनके रोम-रोम से आस्था का स्रोत-सा बह रहा था। इस पन्द्रह वर्ष के कठिन प्रायश्चित्त मे उनकी सन्तप्त आत्मा को अगर कहीं आश्रय मिला था, तो वह अशरण-शरण भगवान् के चरण थे। उन पावन चरणों के ध्यान मे ही उन्हे शान्ति मिलती थी। दिन-भर ऊख के कोल्हू मे जुते रहने या फावड़े चलाने के बाद जब वह रात को पृथ्वी की गोद मे लेटते, तो पूर्व-स्मृतियाँ अपना अभिनय करने लगतीं। वह अपना विलासमय जीवन, जैसे रुदन करता हुआ उनकी आँखों के सामने आ जाता और उनके अन्त करण से वेदना मे डूबी हुई ध्वनि निकलती—ईश्वर, मुझ पर दया करो। इस दया-याचना मे उन्हे एक ऐसी अलौकिक शान्ति और स्थिरता प्राप्त होती थी, मानो बालक माता की गोद मे लेटा हो।

जब उनके पास सम्पत्ति थी, विलास के साधन थे, यौवन था, स्वास्थ्य था, अधिकार था, उन्हे आत्म-चिन्तन का अवकाश न मिलता था। मन प्रवृत्ति ही की ओर दौड़ता था, अब इन विभूतियों को खोकर इस दीनावस्था मे उनका मन ईश्वर की ओर झुका। पानी पर जब तक कोई आवरण है, उसमे सूर्य का प्रकाश कहाँ ?

वह मन्दिर से निकलते ही थे कि एक स्त्री ने मन्दिर मे प्रवेश किया। खूबचन्द का हृदय उछल पड़ा। वह कुछ कर्तव्य भ्रम से होकर एक स्तम्भ की आड़ में हो गये। यह प्रमीला थी।

इन पन्द्रह वर्षों मे एक दिन भी ऐसा नहीं गया, जब उन्हे प्रमीला की याद न आई हो। वह छाया उनकी आँखों मे बसी हुई थी। आज उन्हे उस छाया और इस सत्य मे कितना अन्तर दिखाई दिया। छाया पर समय का क्या असर हो सकता है। उस पर सुख-दु ख का बस नहीं चलता। सत्य तो इतना अभेद्य नहीं। उस छाया मे वह सदैव प्रमोद का रूप देखा करते थे—आभूषण और मुस्कान और लज्जा से रंजित। इस सत्य में उन्होने साधक का तेजस्वी रूप देखा, और अनुराग में डूबे हुए स्वर को

भाँति उनका हृदय थरथरा उठा। मन मे ऐसा उद्‌गार उठा कि इसके चरणों पर गिर पड़ूँ और कहूँ—देवी, इस पतित का उद्धार करो, किन्तु तुरन्त विचार आया—कहीं यह देवी मेरी उपेक्षा न करे। इस दशा मे उसके सामने जाते उन्हे लज्जा आई।

कुछ दूर चलने के बाद प्रमीला एक गली मे मुड़ी। सेठजी भी उसके पीछे चले जाते थे। आगे एक मंजिल की हवेली थी। सेठजी ने प्रमीला को उस चाल मे घुसते देखा, पर यह न देख सके कि वह किधर गई। द्वार पर खड़े-खडे सोचने लगे—किससे पूछूँ।

सहसा एक किशोर को भीतर से निकलते देखकर उन्होने उसे पुकारा। युवक ने उनकी ओर चुभती हुई आँख से देखा और तुरन्त उनके चरणो पर गिर पड़ा। सेठजी का कलेजा धक् से हो उठा। यह तो गोपी था, केवल उम्र में उससे कम। वही रूप था, वही डील था, मानो वह कोई नया जन्म लेकर आ गया हो। उनका सारा शरीर एक विचित्र भय से सिहर उठा।

कृष्णचन्द्र ने एक क्षण मे उठकर कहा—हम तो आज आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बन्दर पर जाने के लिए एक गाड़ी लेने जा रहा था। आपको तो यहाँ आने मे बड़ा कष्ट हुआ होगा। आइए, अन्दर आइए। मैं आपको देखते ही पहचान गया। कहीं भी देखकर पहचान जाता।

खूबचन्द उसके साथ भीतर चले तो, मगर उनका मन जैसे अतीत के काँटो मे उलझ रहा था। गोपी की सूरत क्या वह कभी भूल सकते थे? इस चेहरे को उन्होंने कितनी ही बार स्वप्न मे देखा था। वह कांड उनके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना था, और आज एक युग बीत जाने पर भी वह उनके पथ मे उसी भाँति अटल खड़ा था।

एकाएक कृष्णचन्द्र जीने के पास रुककर बोला—जाकर अम्माँ से कह आऊँ, दादा आ गये! आपके लिए नये-नये कपडे बने रखे हैं।

खूबचन्द ने पुत्र के मुख का इस तरह चुम्बन किया, जैसे वह शिशु हो और उसे गोद में उठा लिया। वह उसे लिये जीने पर चढे चले जाते थे। यह मनोल्लास की शक्ति थी।

(७)

तीस साल से व्याकुल पुत्र लालसा यह पदार्थ पाकर, जैसे उस पर न्योछावर हो जाना चाहती है। जीवन नयी-नयी अभिलाषाओ को लेकर उन्हे सम्मोहित कर रहा है,

इस रत्न के लिए वह ऐसी-ऐसी कितनी ही यातनाएँ सहर्ष झेल सकते थे। अपने जीवन में उन्होंने जो कुछ अनुभव के रूप में कमाया था, उसका तत्त्व वह अब कृष्णचन्द्र के मस्तिष्क मे भर देना चाहते हैं। उन्हे यह अरमान नहीं है कि कृष्णचन्द्र धन का स्वामी हो, चतुर हो, यशस्वी हो; बल्कि दयावान् हो, सेवाशील हो, नम्र हो, श्रद्धालु हो। ईश्वर की दया से अब उन्हे असीम विश्वास है, नहीं उन-जैसा अधम व्यक्ति क्या इस योग्य था कि इस कृपा का पात्र बनता? और प्रमीला तो साक्षात् लक्ष्मी है।

कृष्णचन्द्र भी पिता को पाकर निहाल हो गया है। अपनी सेवाओं से मानो उनके अतीत को भुला देना चाहता है। मानो पिता की सेवा ही के लिए उसका जन्म हुआ है। मानो वह पूर्वजन्म का कोई ऋण चुकाने के लिए ही ससार मे आया है।

आज सेठजी को आये सातवाँ दिन है। सन्ध्या का समय है। सेठजी सन्ध्या करने जा रहे हैं कि गोपीनाथ की लड़की बिन्नी ने आकर प्रमीला से कहा—माताजी, अम्माँ का जी अच्छा नहीं है। भैया को बुला रही हैं।

प्रमीला ने कहा—आज तो वह न जा सकेगा। उसके पिता आ गये हैं, उनसे बातें कर रहा है।

कृष्णचन्द्र ने दूसरे कमरे में से उसकी बाते सुन लीं। तुरन्त आकर बोला—नहीं अम्माँ, मैं दादा से पूछकर जरा देर के लिए चला जाऊँगा।

प्रमीला ने बिगड़कर कहा—तू वहाँ जाता है, तो तुझे घर की सुधि ही नहीं रहती। न-जाने उन सभों ने तुझे क्या बूटी सुँघा दी है।

'मैं बहुत जल्द चला आऊँगा अम्माँ, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।'

'तू भी कैसा लड़का है। वह बेचारे अकेले बैठे हुए हैं और तुझे वहाँ जाने की पड़ी हुई है।'

सेठजी ने भी यह बातें सुनीं। आकर बोले—क्या हरज है, जल्दी आने को कह रहे हैं तो जाने दो।

कृष्णचन्द्र प्रसन्नचित्त बिन्नी के साथ चला गया। एक क्षण के बाद प्रमीला ने कहा—जबसे मैंने गोपी की तस्वीर देखी है, मुझे नित्य शंका बनी रहती है कि न-जाने भगवान् क्या करनेवाले हैं। बस यही मालूम होता है ...।

सेठजी ने गभीर स्वर मे कहा—मैं भी तो पहली बार इसे देखकर चकित रह गया था। जान पड़ा गोपीनाथ ही खड़ा है।

'गोपी की घरवाली कहती है कि इसका स्वभाव भी गोपी ही का-सा है।'

सेठजी गूढ मुस्कान के साथ बोले—भगवान् की लीला है कि जिसकी मैंने हत्या की, वह मेरा पुत्र हो। मुझे तो विश्वास है, गोपीनाथ ने ही इसमें अवतार लिया है।

प्रमीला ने माथे पर हाथ रखकर कहा—यही सोचकर तो कभी-कभी मुझे न-जाने कैसी-कैसी शंका होने लगती है।

सेठजी ने श्रद्धा-भरी आँखों से देखकर कहा—भगवान् हमारे परम सुहृद् हैं। वह जो कुछ करते हैं, प्राणियों के कल्याण के लिए करते हैं। हम समझते है, हमारे साथ विधि ने अन्याय किया , पर यह हमारी मूर्खता है। ईश्वर अबोध बालक नहीं है, जो अपने ही सिरजे हुए खिलौनों को तोड़-फोड़कर आनन्दित होता हो। न वह हमारा शत्रु है, जो हमारा अहित करने मे सुख मानता है। वह परम दयालु है, मगल-रूप है। यही अवलम्ब था, जिसने निर्वासन-काल मे मुझे सर्वनाश से बचाया। इस आधार के बिना कह नहीं सकता, मेरी नौका कहाँ कहाँ भटकती और उसका क्या अन्त होता।

(८)

विन्नी ने दो क़दम चलने के बाद कहा, मैंने तुमसे झूठ-मूठ कहा कि अम्माँ बीमार हैं। अम्माँ तो अब बिलकुल अच्छी हैं। तुम कई दिन से गये नहीं , इसी लिए उन्होंने मुझसे कहा—इस बहाने से बुला लाना। तुमसे वह एक सलाह करेंगी।

कृष्णचन्द्र ने कुतूहल-भरी आँखों से देखा।

'मुझसे सलाह करेंगी! मैं भला क्या सलाह दूँगा? मेरे दादा आ गये, इसी लिए नहीं आ सका।'

'तुम्हारे दादा आ गये! तो उन्होंने पूछा होगा, यह कौन लड़की है?'

'नहीं, कुछ नहीं पूछा।'

'दिल में कहते होंगे, कैसी बेशरम लड़की है!'

'दादा ऐसे आदमी नहीं हैं। मालूम हो जाता, यह कौन है, तो बड़े प्रेम से बातें करते। मैं तो कभी-कभी डरा करता था कि न जाने उनका मिज़ाज कैसा हो। सुनता था, क़ैदी बड़े कठोर-हृदय हुआ करते हैं, लेकिन दादा तो दया के देवता हैं।'

दोनों कुछ दूर फिर चुपचाप चले गये। तब कृष्णचन्द्र ने पूछा—तुम्हारी अम्माँ मुझसे कैसी सलाह करेंगी ?

बिन्नी का ध्यान जैसे टूट गया।

'मैं क्या जानूँ, कैसी सलाह करेंगी। मैं जानती कि तुम्हारे दादा आये हैं, तो न जाती। मन में कहते होंगे, इतनी बड़ी लड़की, अकेली मारी-मारी फिरती है।'

कृष्णचन्द्र कहकहा मारकर बोला—हाँ, कहते तो होंगे। मैं जाकर और जड़ दूँगा।

बिन्नी बिगड़ गई।

'तुम क्या जड़ दोगे ? बताओ मैं कहाँ घूमती हूँ ? तुम्हारे घर के सिवा मैं और कहाँ जाती हूँ ?'

'मेरे जी में जो आयेगा वह कहूँगा। नहीं तो मुझे बता दो, कैसी सलाह है।'

'तो मैंने कब कहा था कि मैं नहीं बताऊँगी। कल हमारे मिल में फिर हड़ताल होनेवाली है। हमारा मनीजर इतना निर्दयी है कि किसी को पाँच मिनट की भी देर हो जाय, तो आधे दिन की तलब काट लेता है और दस मिनट देर हो जाय, तो दिन-भर की मजूरी गायब। कई बार सभों ने जाकर उससे कहा-सुना, मगर मानता ही नहीं। तुम हो तो जरा-से, पर अम्माँ को न-जाने तुम्हारे ऊपर क्यों इतना विश्वास है, और मजूर लोग भी तुम्हारे ऊपर बड़ा भरोसा रखते हैं। सबकी सलाह है कि तुम एक बार मनीजर के पास जाकर दो टूक बातें कर लो। हाँ या नहीं; अगर वह अपनी बात पर अड़ा रहे, तो फिर हम भी हड़ताल करेंगे।'

कृष्णचन्द्र विचारों में मग्न था। कुछ न बोला। बिन्नी ने फिर उद्दण्ड-भाव से कहा—यह कड़ाई इसी लिए तो है, कि मनीजर जानता है, हम बेबस हैं और हमारे लिए और कहीं ठिकाना नहीं है। तो हमें भी दिखा देना है कि हम चाहे भूखों मरेंगे; मगर अन्याय न सहेंगे।

कृष्णचन्द्र ने कहा—उपद्रव हो गया, तो गोलियाँ चलेंगी।

'तो चलने दो। हमारे दादा मर गये तो क्या हम लोग जिये नहीं ?'

दोनों घर पहुँचे, तो वहाँ द्वार पर बहुत-से मजूर जमा थे और इसी विषय पर बातें हो रही थीं।

कृष्णचन्द्र को देखते ही सभों ने चिल्लाकर कहा—लो, भैया आ गये।

(९)

वही मिल है, जहाँ सेठ खूबचद ने गोलियाँ चलाईं थीं। आज उन्हीं का पुत्र मजूरों का नेता बना हुआ गोलियों के सामने खडा है।

कृष्णचन्द्र और मैनेजर में बातें हो चुकीं। मैनेजर ने नियमों का नर्म करना स्वीकार न किया। हडताल की घोषणा कर दी गई। आज हडताल है। मजूर मिल के हाते में जमा है, और मैनेजर ने मिल की रक्षा के लिए फौजी गारद बुला लिया है। मिल के मजूर उपद्रव नहीं करना चाहते थे। हडताल केवल उनके असतोष का प्रदर्शन थी लेकिन फौजी गारद देखकर मजूरो को भी जोश आ गया। दोनो तरफ से तैयारी हो गई है। एक ओर गोलियाँ हैं, दूसरी ओर ईंट-पत्थर के टुकड़े।

युवक कृष्णचन्द्र ने कहा—आप लोग तैयार हैं, ? हमे मिल के अन्दर जाना है, चाहे सब मार डाले जायँ।

बहुत-सी आवाजें आईं—सब तैयार हैं।

'जिनके बाल-बच्चे हो, वह अपने घर चले जायँ'

बिन्नी पीछे खोड़-खडी बोली—बाल-बच्चे सबकी रक्षा भगवान् करता है।

कई मजूर घर लौटने का विचार कर रहे थे। इस वाक्य ने उन्हे स्थिर कर दिया। जय-जयकार हुई और एक हज़ार मजूरों का दल मिल-द्वार की ओर चला। फौजी गारद ने गोलियाँ चलाई। सबसे पहले कृष्णचन्द्र गिरा, फिर और कई आदमी गिर पड़े। लोगो के पांव उखडने लगे।

उसी वक्त सेठ खूबचन्द नगे सिर, नगे पाँव, हाते में पहुँचे और कृष्णचन्द्र को गिरते देखा। परिस्थिति उन्हे घर ही पर मालूम हो गई थी। उन्होंने उन्मत्त होकर कहा—श्रीकृष्णचन्द्र की जय! और दौड़कर आहत युवक को कठ से लगा लिया। मजूरो मे एक अद्भुत साहस और धैर्य का सचार हुआ।

'खूबचन्द!—इस नाम ने जादू का काम किया। इस १५ साल मे 'खूबचन्द' ने शहीद का ऊँचा पद प्राप्त कर लिया था। उन्हीं का पुत्र आज मजूरों का नेता है। धन्य है भगवान् की लीला! सेठजी ने पुत्र की लाश जमीन पर लेटा दी और अविचलित भाव से बोले—भाइयो, यह लडका मेरा पुत्र था। मैं पन्द्रह साल डामुल काटकर लौटा, तो भगवान् की कृपा से मुझे इसके दर्शन हुए। आज आठवाँ दिन है। आज फिर भगवान ने उसे अपनी शरण मे ले लिया। वह भी उन्हीं की कृपा थी।

यह भी उन्हीं की कृपा है। मैं जो मूर्ख अज्ञानी तब था, वही अब हूँ। हाँ, इस बात का मुझे गर्व है कि भगवान् ने मुझे ऐसा वीर बालक दिया। अब आप लोग मुझे बधाइयाँ दें। किसे ऐसी वीर-गति मिलती है। अन्याय के सामने जो छाती खोलकर खड़ा हो जाय, वही तो सच्चा वीर है; इसलिए बोलिए—वीर कृष्णचन्द्र की जय!

एक हज़ार गलों से जय-ध्वनि निकली और उसी के साथ सब-के-सब हल्ला मारकर दफ्तर के अन्दर घुस गये। गारद के जवानों ने एक बन्दूक भी न चलाई। इस विलक्षण काड ने इन्हें स्तम्भित कर दिया था।

मैनेजर ने पिस्तौल उठा ली और खड़ा हो गया। देखा, तो सामने सेठ खूबचन्द।

लज्जित होकर बोला—मुझे बड़ा दुःख है कि आज दैवगति से ऐसी दुर्घटना हो गई, पर आप खुद समझ सकते हैं, मैं क्या कर सकता था।

सेठजी ने शान्त स्वर मे कहा—ईश्वर जो कुछ करता है, हमारे कल्याण के लिए ही करता है। अगर इस बलिदान से मजूरों का कुछ हित हो, तो मुझे इसका ज़रा भी खेद न होगा।

मैनेजर सम्मान-भरे स्वर मे बोला—लेकिन इस धारणा से तो आदमी को सन्तोष नहीं होता। ज्ञानियों का मन भी चचल हो ही जाता है।

सेठजी ने इस प्रसग का अन्त कर देने के इरादे से कहा—तो अब आप क्या निश्चय कर रहे हैं?

मैनेजर सकुचाता हुआ बोला—मैं तो इस विषय मे स्वतन्त्र नहीं हूँ। स्वामियों की जो आज्ञा थी, उसका मैं पालन कर रहा था।

सेठजी कठोर स्वर मे बोले—अगर आप समझते हैं कि मजूरों के साथ अन्याय हो रहा है, तो आपका धर्म है कि उनका पक्ष लीजिए। अन्याय मे सहयोग करना अन्याय करने ही के समान है।

एक तरफ तो मजूर लोग कृष्णचन्द्र के दाह-सस्कार का आयोजन कर रहे थे, दूसरी तरफ दफ्तर में मिल के डाइरेक्टर और मैनेजर सेठ खूबचन्द के साथ बैठे कोई ऐसी व्यवस्था सोच रहे थे कि मजूरों के प्रति इस अन्याय का अन्त हो जाय।

दस बजे सेठजी ने बाहर निकलकर मजूरों को सूचना दी—मित्रो, ईश्वर को धन्यवाद दो कि उसने तुम्हारी विनय स्वीकार कर ली। तुम्हारी हाज़िरी के लिए अब नये नियम बनाये जायँगे और जुरमाने की वर्तमान प्रथा उठा दी जायगी।

मजूरों ने सुना, पर उन्हें वह आनन्द न हुआ, जो एक घंटा पहले होता। कृष्णचन्द्र को बलि देकर बड़ी-से-बड़ी रिआयत भी उनकी निगाहों में हेंच थी।

अभी अर्थी न उठने पाई थी कि प्रमीला लाल आँखें किये, उन्मत्त-सी दौडी आई और उस देह से चिपट गई, जिसे उसने अपने उदर से जन्म दिया और अपने रक्त से पाला था। चारों तरफ हाहाकार मच गया। मजूर और मालिक ऐसा कोई न था, जिसकी आँखों से आँसुओं की धारा न निकल रही हो।

सेठजी ने समीप जाकर प्रमीला के कन्धे पर हाथ रखा और बोले - क्या करती हो प्रमीला, जिसकी मृत्यु पर हँसना और ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए, उसकी मृत्यु पर रोती हो!

प्रमीला उसी तरह शव को हृदय से लगाये पडी रही। जिस निधि को पाकर उसने विपत्ति को सम्पत्ति समझा था, पति-वियोग के अन्धकारमय जीवन मे जिस दीपक से आशा, धैर्य और अवलम्ब पा रही थी, वह दीपक बुझ गया था। जिस विभूति को पाकर ईश्वर की निष्ठा और भक्ति उसके रोम-रोम मे व्याप्त हो गई थी, वह विभूति उससे छीन ली गई थी।

सहसा उसने पति को अस्थिर नेत्रो से देखकर कहा—तुम समझते होगे, ईश्वर जो कुछ करता है, हमारे कल्याण के लिए ही करता है। मैं ऐसा नहीं समझती। समझ ही नहीं सकती। कैसे समझूँ? हाय मेरे लाल! मेरे लाड़ले! मेरे राजा, मेरे सूर्य, मेरे चन्द्र, मेरे जीवन के आधार, मेरे सर्वस्व! तुझे खोकर कैसे चित्त को शान्त रखूँ? जिसे गोद मे देखकर मैंने अपने भाग्य को धन्य माना था, उसे आज धरती पर पड़ा देखकर हृदय को कैसे सँभालूँ? नहीं मानता! हाय, नहीं मानता!!

यह कहते हुए उसने जोर से छाती पीट ली।

उसी रात को शोकातुर माता ससार से प्रस्थान कर गई। पक्षी अपने बच्चे की खोज मे पिजरे से निकल गया।

(१०)

तीन साल बीत गये।

श्रमजीवियों के मुहल्ले मे आज कृष्णाष्टमी का उत्सव है, उन्होंने आपस मे चन्दा करके एक मन्दिर बनवाया है। मन्दिर आकार में तो बहुत सुन्दर और विशाल नहीं, पर जितनी भक्ति से यहाँ सिर झुकते हैं, वह बात इससे कहीं विशाल मन्दिरों

को प्राप्त नहीं। यहाँ लोग अपनी सम्पत्ति का प्रदर्शन करने नहीं, अपनी श्रद्धा की भेंट देने आते हैं।

मजूर-स्त्रियाँ गा रही हैं, बालक दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम कर रहे हैं। और पुरुष झाँकी के बनाव-शृंगार में लगे हुए हैं।

उसी वक्त सेठ खूबचन्द आये। स्त्रियाँ और बालक उन्हे देखते ही चारों ओर से दौड़कर जमा हो गये। यह मन्दिर उन्हींके सतत उद्योग का फल है। मजूर-परिवारो की सेवा ही अब उनके जीवन का उद्देश्य है। उनका छोटा-सा परिवार अब विराट्-रूप हो गया है। उनके सुख को वह अपना सुख और उनके दुःख को अपना दु ख मानते हैं। मजूरों में शराब, जुए और दुराचरण की वह कसरत नहीं रही। सेठजी की सहायता, सत्सग और सद्व्यवहार पशुओं को मनुष्य बना रहा है।

सेठजी ने बाल-रूप भगवान् के सामने जाकर सिर झुकाया और उनका मन अलौकिक आनन्द से खिल उठा। उस झाँकी में उन्हे कृष्णचन्द्र की झलक दिखाई दी। एक ही क्षण मे उसने जैसे गोपीनाथ का रूप धारण किया। दाहिनी ओर से देखते थे, तो कृष्णचन्द ; बाईं ओर से देखते थे, तो गोपीनाथ!

सेठजी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। भगवान् की व्यापक दया का रूप आज जीवन में पहली बार उन्हे दिखाई दिया। अब तक भगवान् की दया को वह सिद्धान्त-रूप से मानते थे। आज उन्होंने उसका प्रत्यक्ष रूप देखा। एक पथ-भ्रष्ट, पतनोन्मुखी आत्मा के उद्धार के लिए इतना दैवी विधान! इतनी अनवरत ईश्वरीय प्रेरणा! सेठजी के मानस-पट पर अपना सम्पूर्ण जीवन सिनेमा-चित्रों की भाँति दौड़ गया। उन्हें जान पड़ा, जैसे आज बीस वर्ष से ईश्वर की कृपा उन पर छाया किये हुए है। गोपीनाथ का बलिदान क्या था? विद्रोही मजूरों ने जिस समय उनका मकान घेर लिया था, उस समय उनका आत्म-समर्पण ईश्वर की दया के सिवा और क्या था? पन्द्रह साल के निर्वासित जीवन में, फिर कृष्णचन्द्र के रूप में, कौन उनकी आत्मा की रक्षा कर रहा था?

सेठजी के अन्तःकरण से भक्ति की विह्लता मे डूबी हुई जयध्वनि निकली—कृष्ण भगवान् की जय! और जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दया के प्रकाश से जगमगा उठा।

नेउर

आकाश में चाँदी के पहाड़ भाग रहे थे, टकरा रहे थे, गले मिल रहे थे, जैसे सूर्य-मेघ संग्राम छिड़ा हो। कभी छाया हो जाती थी, कभी तेज धूप चमक उठती थी। बरसात के दिन थे, उमस हो रही थी। हवा बन्द हो गई थी।

गाँव के बाहर कई मजूर एक खेत की मेंड़ बाँध रहे थे। नगे बदन, पसीने में तर, कछनी कसे हुए, सब-के-सब फावड़े से मिट्टी खोदकर मेंड़ पर रखते जाते थे। पानी से मिट्टी नरम हो गई थी।

गोबर ने अपनी कानी आँख मटकाकर कहा--अब तो हाथ नहीं चलता भाई! गोला भी छूट गया होगा, चबेना कर लें।

नेउर ने हँसकर कहा--यह मेंड़ तो पूरी कर लो, फिर चबेना कर लेना। मैं तो तुमसे पहले आया।

दोनों ने सिर पर झौवा उठाते हुए कहा--तुमने अपनी जवानी में जितना घी खाया होगा नेउर दादा, उतना तो अब हमें पानी भी नहीं मिलता।

नेउर छोटे डील का, गठीला, काला, फुर्तीला आदमी था। उम्र पचास से ऊपर थी, मगर अच्छे-अच्छे नौजवान उसके बराबर मेहनत न कर सकते थे। अभी दो-तीन साल पहले तक कुश्ती लड़ता था। जबसे गाय मर गई, कुश्ती लड़ना छोड़ दिया था।

गोबर—तुमसे बे तमाखू पिये कैसे रहा जाता है नेउर दादा! यहाँ तो चाहे रोटी न मिले, लेकिन तमाखू के बिना नहीं रहा जाता।

दीना—तो यहाँ से जाकर रोटी बनाओगे दादा? बुढ़िया कुछ नहीं करती। हमसे तो दादा ऐसी मेहरिया से एक दिन न पटे।

नेउर के पिचके, खिचड़ी मूँछों से ढके मुख पर हास्य की स्मित रेखा चमक उठी, जिसने उसकी कुरूपता को भी सुन्दर बना दिया। बोला—जवानी तो उसीके साथ कटी है बेटा, अब उससे कोई काम नहीं होता, तो क्या करूँ!

गोबर—तुमने उसे सिर चढा रखा है, नहीं काम क्यो न करती। मजे से खाट पर बैठी चिलम पीती रहती है और सारे गाँव से लड़ा करती है। तुम बूढे हो गये, लेकिन वह तो अब भी जवान बनी है।

दीना—जवान औरत उसकी क्या बराबरी करेगी। सेंदुर, टिकली, काजल, मेंहदी मे तो उसका मन बसता है। बिना किनारदार रगीन धोती के उसे कभी देखा ही नहीं, उस पर गहनो से भी जी नहीं भरता। तुम गऊ हो, इससे निबाह हो जाता है, नहीं तो अब तक गली-गली ठोकरें खाती होती।

गोबर—मुझे तो उसके बनाव-सिंगार पर गुस्सा आता है। काम कुछ न करेगी; पर खाने-पहनने को अच्छा ही चाहिए।

नेउर—तुम क्या जानो बेटा, जब वह आई थी, तो मेरे घर में सात हल की खेती होती थी। रानी बनी बैठी रहती थी। जमाना बदल गया, तो क्या हुआ, उसका मन तो वही है। घड़ी-भर चूल्हे के सामने बैठ जाती है, तो आँखें लाल हो जाती हैं और मूड़ थामकर पड़ जाती है। मुझसे तो यह नहीं देखा जाता। इसी दिन-रात के लिए तो आदमी शादी-ब्याह करता है, और इसमें क्या रखा है। यहाँ से जाकर रोटी बनाऊँगा, पानी लाऊँगा, तब दो कौर खायगी, नहीं मुझे क्या था, तुम्हारी तरह चार फकी मारकर एक लोटा पानी पी लेता। जबसे बिटिया मर गई, तबसे तो वह और भी लस्त हो गई। यह बड़ा भारी धक्का लगा। माँ की ममता हम-तुम क्या समझेंगे बेटा! पहले तो कभी-कभी डाँट भी देता था। अब किस मुह से डाटूँ?

दीना—तुम कल पेड़ पर काहे को चढे थे, अभी गूलर कौन पकी है?

नेउर—उस बकरी के लिए थोड़ी पत्ती तोड़ रहा था। बिटिया को दूध पिलाने को बकरी ली थी। अब बुढ़िया हो गई है; लेकिन थोड़ा दूध दे देती है। उसीका दूध और रोटी तो बुढिया का आधार है।

घर पहुँचकर नेउर ने लोटा और डोर उठया और नहाने चला कि स्त्री ने खाट पर लेटे-लेटे कहा—इतनी देर क्यों कर दिया करते हो? आदमी काम के पीछे परान थोड़े ही दे देता है। जब मजूरी सबके बराबर मिलती है, तो क्यों काम के पीछे मरते हो?

नेउर का अन्त.करण एक माधुर्य से सराबोर हो गया। उसके आत्म-समर्पण

से भरे हुए प्रेम मे 'मैं' की गन्ध भी तो नहीं थी । कितना स्नेह है ! और किसे उसके आराम की, उसके मरने-जीने की चिन्ता है । फिर वह क्यों न अपनी बुढ़िया के लिए मरे । बोला — तू उस जनम मे कोई देवी रही होगी बुधिया, सच ।

'अच्छा रहने दो यह चापलूसी । हमारे आगे अब कौन बैठा हुआ है, जिसके लिए इतना हाय-हाय करते हो ?'

नेउर गज-भर की छाती किये स्नान करने चला गया। लौटकर उसने मोटी-मोटी रोटियाँ बनाई । आलू चूल्हे मे डाल दिये थे। उनका भुरता बनाया ; फिर बुधिया और वह दोनों साथ खाने बैठे ।

बुधिया—मेरी जात से तुम्हे कोई सुख न मिला । पडे-पडे खाती हूँ और तुम्हे तग करती हूँ। इससे तो कहीं अच्छा था कि भगवान् मुझे उठा लेते ।

'भगवान् आयेंगे तो मैं कहूँगा, पहले मुझे ले चलो । तब इस सूनी झोपड़ी में कौन रहेगा।'

'तुम न रहोगे, तो मेरी क्या दसा होगी, यह सोचकर मेरी आँखों में अँधेरा आ जाता है। मैंने कोई बड़ा पुन किया था कि तुम्हें पाया। किसी और के साथ मेरा भला क्या निवाह होता !'

ऐसे मीठे सतोष के लिए नेउर क्या नहीं कर डालना चाहता था । आलसिन, लोभिन, स्वार्थिन बुधिया अपनी जीभ पर केवल मिठास रखकर नेउर को नचाती रहती थी, जैसे कोई शिकारी कँटिये में चारा लगाकर मछली को खेलाता है ।

पहले कौन मरे, इस विषय पर आज यह पहली बार बातचीत न हुई थी । इसके पहले भी कितनी ही बार यह प्रश्न उठा था और यों ही छोड़ दिया गया था , लेकिन न-जाने क्यों नेउर ने अपनी डिग्री कर ली थी और उसे निश्चय था कि पहले मैं जाऊँगा । उसके पीछे भी बुधिया जब तक रहे, आराम से रहे, किसीके सामने हाथ न फैलाये, इसी लिए वह मरता रहता था, जिसमें हाथ में चार पैसे जमा हो जायँ । कठिन-से-कठिन काम, जिसे कोई न कर सके, नेउर करता । दिन-भर फावड़े-कुदाल का काम करने के बाद रात को वह ऊख के दिनों में किसी की ऊख पेरता, या खेतो की रखवाली करता ; लेकिन दिन निकलते जाते थे और जो कुछ कमाता था, वह भी निकलता जाता था। बुधिया के बग़ैर यह जीवन····· नहीं, इसकी वह कल्पना ही न कर सकता था ।

लेकिन आज की बातों ने नेउर को सशंक कर दिया। जल में एक बूँद रंग की भाँति यह शंका उसके मन मे समाकर अतिरंजित होने लगी।

(२)

गाँव में नेउर को काम की कमी न थी; पर मजूरी तो वही मिलती थी, जो अब तक मिलती आई थी। इस मन्दी में वह मजूरी भी नहीं रह गई थी। एकाएक गाँव में एक साधु कहीं से घूमते-फिरते आ निकले और नेउर के घर के सामने ही पीपल की छाँह में उनकी धूनी जल गई। गाँववालों ने अपना धन्य भाग्य समझा। बाबाजी का सेवा-सत्कार करने के लिए सभी जमा हो गये। कहीं से लकड़ी आ गई, कहीं से बिछाने को कम्बल, कहीं से आटा-दाल। नेउर के पास क्या था? बाबाजी के लिए भोजन बनाने की सेवा उसने ली। चरस आ गई, दम लगने लगा।

दो-तीन दिन में ही बाबाजी की कीर्ति फैलने लगी। वह आत्मदर्शी हैं, भूत-भविष्य सब बता देते हैं। लोभ तो छू नहीं गया। पैसा हाथ से नहीं छूते, और भोजन भी क्या करते हैं! आठ पहर मे एक-दो बाटियाँ खा लीं, लेकिन मुख दीपक की तरह दमक रहा है। कितनी मीठी बानी है! सरल हृदय नेउर बाबाजी का सबसे बड़ा भक्त था। उस पर कहीं बाबाजी की दया हो गई, तो पारस ही हो जायगा। सारा दुख-दलिद्दर मिट जायगा।

भक्तजन एक-एक करके चले गये थे। खूब कड़ाके की ठंढ पड रही थी। केवल नेउर बैठा बाबाजी के पाँव दबा रहा था।

बाबाजी ने कहा—बच्चा, संसार माया है, इसमे क्यों फँसे हो?

नेउर ने नत-मस्तक होकर कहा—अज्ञानी हूँ महाराज, क्या करूँ! स्त्री है, उसे किस पर छोड़ूँ!

'तू समझता है, तू स्त्री का पालन करता है?'

'और कौन सहारा है उसे बाबाजी?'

'ईश्वर कुछ नहीं है, तू ही सब कुछ है?'

नेउर के मन में जैसे ज्ञान उदय हो गया। तू इतना अभिमानी हो गया है! तेरा इतना दिमाग़। मजूरी करते-करते जान जाती है और तू समझता है, मैं ही बुधिया का सब कुछ हूँ। प्रभु, जो सारे संसार का पालन करते हैं, तू उनके काम में

दखल देने का दावा करता है। उसके सरल, ग्रामीण हृदय मे आस्था की एक ध्वनि-सी उठकर उसे धिक्कारने लगी। बोला—अज्ञानी हूँ, महाराज !

इससे ज्यादा वह और कुछ न कह सका। आँखों से दीन विषाद के आँसू गिरने लगे।

बाबाजी ने तेजस्विता से कहा—देखना चाहता है ईश्वर का चमत्कार ! वह चाहे तो क्षण-भर मे तुझे लखपती कर दे। क्षण-भर में तेरी सारी चिन्ताएँ हर ले ! मैं उसका एक तुच्छ भक्त हूँ काकविष्ठा ; लेकिन मुझमें भी इतनी शक्ति है कि तुझे पारस बना दूँ। तू साफ दिल का, सच्चा, ईमानदार आदमी है। मुझे तुझ पर दया आती है। मैंने इस गांव मे सबको ध्यान से देखा। किसीमें भक्ति नहीं, विश्वास नहीं। तुझमें मैंने भक्त का हृदय पाया। तेरे पास कुछ चाँदी है ?

नेउर को जान पड़ रहा था कि सामने स्वर्ग का द्वार है।

'दस-पांच रुपये होंगे महाराज !'

'कुछ चाँदी के टूटे-फूटे गहने नहीं हैं ?'

'घरवाली के पास कुछ गहने हैं।'

'कल रात को जितनी चाँदी मिल सके, यहाँ ला और ईश्वर की प्रभुता देख। तेरे सामने मैं चाँदी को हांड़ी में रखकर इसी धूनी मे रख दूँगा। प्रात काल आकर हांड़ी निकाल लेना , मगर इतना याद रखना कि उन अशर्फियों को अगर शराब पीने में, जुआ खेलने में या किसी दूसरे बुरे काम में खर्च किया, तो कोढी हो जायगा। अब जा, सो रह। हां, इतना और सुन ले , इसकी चर्चा किसी से मत करना। घर-वाली से भी नहीं।'

नेउर घर चला, तो ऐसा प्रसन्न था, मानो ईश्वर का हाथ उसके सिर पर है। रात-भर उसे नींद नहीं आई। सबेरे उसने कई आदमियों से दो-दो, चार-चार रुपये उधार लेकर पचास रुपये जोड़े। लोग उसका विश्वास करते थे। कभी किसीका एक पैसा भी न दबाता था। वादे का पक्का, नीयत का साफ। रुपये मिलने मे दिक्कत न हुई। पचीस रुपये उसके पास थे। बुधिया से गहने कैसे ले ? चाल चली। तेरे गहने बहुत मैले हो गये हैं। खटाई से साफ कर ले। रात-भर खटाई में रहने से नये हो जायँगे। बुधिया चकमे में आ गई। हांड़ी में खटाई डालकर गहने भिगो दिये। जब रात को वह सो गई, तो नेउर ने रुपये भी उसी हांड़ी मे डाल दिये और

बाबा के पास पहुँचा। बाबाजी ने कुछ मन्त्र पढा। हाँड़ी को धूनी की राख में रखा और नेउर को आशीर्वाद देकर विदा किया।

रात-भर करवटें बदलने के बाद नेउर मुँह-अँधेरे बाबा के दर्शन करने गए; मगर बाबा का वहाँ पता न था। अधीर होकर उसने धूनी की जलती हुई राख टटोली। हाँड़ी गायब थी। छाती धक्-धक् करने लगी। बदहवास होकर बाबा को खोजने लगा। हार की तरफ गया। तालाब की ओर पहुँचा। दस मिनट, बीस मिनट, आध घण्टा! बाबा का कहीं निशान नहीं। भक्त आने लगे। बाबा कहाँ गये? कम्बल भी नहीं, बरतन भी नहीं!

एक भक्त ने कहा—रमते साधुओं का क्या ठिकाना! आज यहाँ, कल वहाँ, एक जगह रहे, तो साधु कैसे! लोगों से हेल-मेल हो जाय, बन्धन में पड़ जायँ।

'सिद्ध थे।'

'लोभ तो छू नहीं गया था।'

'नेउर कहाँ है? उस पर बड़ी दया करते थे। उससे कह गये होंगे।'

नेउर की तलाश होने लगी, कहीं पता नहीं। इतने मे बुधिया नेउर को पुकारती हुई घर में से निकली। फिर कोलाहल मच गया। बुधिया रोती थी और नेउर को गालियाँ देती थी।

नेउर खेतों की मेड़ों से बेतहाशा भागता चला जाता था, मानो इस पापी ससार से निकल जायगा।

एक आदमी ने कहा—नेउर ने कल मुझसे पाँच रुपये लिये थे। आज साँझ को देने कहा था।

दूसरा—हमसे भी दो रुपये आज ही के वादे पर लिये थे।

बुधिया रोई—डाढ़ीजार मेरे सारे गहने ले गया। पचीस रुपये रखे थे, वह भी उठा ले गया।

लोग समझ गये, बाबा कोई धूर्त्त था। नेउर को झाँसा दे गया। ऐसे-ऐसे ठग पड़े हैं ससार में! नेउर के बारे मे किसीको ऐसा सन्देह नहीं था। बेचारा सीधा आदमी, आ गया पट्टी मे। मारे लाज के कहीं छिपा बैठा होगा।

(३)

तीन महीने गुजर गये।

झाँसी ज़िले में धसान नदी के किनारे, एक छोटा-सा गाँव है काशीपुर। नदी के

किनारे एक पहाड़ी टीला है। उसी पर कई दिन से एक साधु ने अपना आसन जमाया है। नाटे कद का आदमी है, काले तवे का सा रग, देह गठी हुई है। यह नेउर है, जो साधु-वेश मे दुनिया को धोखा दे रहा है—वही सरल, निष्कपट नेउर, जिसने कभी पराये माल की ओर आँख नहीं उठाई, जो पसीना की रोटी खाकर मगन था। घर और गाँव की और बुधिया की याद एक क्षण भी उसे नहीं भूलती, इस जीवन में फिर कोई दिन आयेगा कि वह अपने घर पहुँचेगा और फिर उस ससार मे हँसता-खेलता अपनी छोटी-छोटी चिन्ताओं और छोटी-छोटी आशाओं के बीच आनन्द से रहेगा! वह जीवन कितना सुखमय था! जितने थे, सब अपने थे, सभी आदर करते थे, सहानुभूति रखते थे। दिन भर की मजूरी थोड़ा-सा अनाज या थोड़े-से पैसे लेकर घर आता था, तो बुधिया कितने मीठे स्नेह से उसका स्वागत करती थी। वह सारी मेहनत, सारी थकावट जैसे उस मिठास मे सनकर और मीठी हो जाती थी। हाय! वह दिन फिर कब आयेंगे? न जाने बुधिया कैसे रहती होगी। कौन उसे पान की तरह फेरेगा, कौन उसे पकाकर खिलायेगा। घर में पैसा भी तो नहीं छोड़ा, गहने तक डुबा दिये। तव उसे क्रोध आता कि उस बाबा को पा जाय, तो कच्चा ही खा जाय। हाय लोभ! लोभ!

उसके अनन्य भक्तों मे एक सुन्दरी युवती भी थी, जिसके पति ने उसे त्याग दिया था। उसका बाप फौजी पेंशनर था। एक पढ़े-लिखे आदमी से लड़की का विवाह किया, लेकिन लड़का माँ के कहने में था और युवती की अपनी सास से न पटती थी। वह चाहती थी, शौहर के साथ सास से अलग रहे, शौहर अपनी माँ से अलग होने पर राजी न हुआ। वह रूठकर मैके चली आई। तबसे तीन साल हो गये थे और ससुराल से एक बार भी बुलावा न आया, न पतिदेव ही आये। युवती किसी तरह पति को अपने वश मे कर लेना चाहती थी। महात्माओं के लिए किसीका दिल फेर देना ऐसा क्या मुश्किल है। हाँ, उनकी दया चाहिए।

एक दिन उसने एकान्त मे बाबाजी से अपनी विपत्ति कह सुनाई। नेउर को जिस शिकार की टोह थी, वह आज मिलता हुआ जान पड़ा। गम्भीर भाव से बोला—बेटी, मैं न सिद्ध हूँ, न महात्मा, न मैं ससार के झमेले मे पड़ता हूँ, पर तेरी सरधा और परेम देखकर तुझ पर दया आती है। भगवान् ने चाहा, तो तेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।

'आप समर्थ हैं और मुझे आपके ऊपर विश्वास है।'

'भगवान् की जो इच्छा होगी, वही होगा।'

'इस अभागिनी का डोगा आप ही पार लगा सकते हैं।'

'भगवान् पर भरोसा रखो।'

'मेरे भगवान् तो आप ही हो।'

नेउर ने मानो धर्म-संकट में पड़कर कहा—लेकिन बेटी, उस काम में बड़ा अनुष्ठान करना पड़ेगा, और अनुष्ठान मे सैकड़ों-हजारो का खर्च है। उस पर भी तेरा काज सिद्ध होगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। हाँ, मुझसे जो कुछ हो सकेगा, वह मैं कर दूँगा, पर सब कुछ भगवान् के हाथ में है। मैं माया को हाथ से नहीं छूता; लेकिन तेरा दुःख नहीं देखा जाता।

उसी रात को युवती ने अपने सोने के गहनों की पेटारी लाकर बाबाजी के चरणों पर रख दी। बाबाजी ने काँपते हुए हाथो से पेटारी खोली और चन्द्रमा के उज्ज्वल प्रकाश में आभूषणों को देखा। उनकी आँखे झपक गईं। यह सारी माया उनको है। वह उनके सामने हाथ बांधे खडी कह रही है—मुझे अगीकार कीजिए। कुछ भी तो करना नहीं है; केवल पेटारी लेकर अपने सिरहाने रख लेना है और युवती को आशीर्वाद देकर बिदा कर देना है। प्रातःकाल वह आयेगी। उस वक्त वह उतनी दूर होंगे, जहाँ तक उनकी टाँगें ले जायँगी। ऐसा आशातीत सौभाग्य! जब वह रुपयों से भरी थैलियाँ लिये गाँव में पहुँचेंगे और बुधिया के सामने रख देंगे। ओह! इससे बड़े आनन्द की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकते।

लेकिन न-जाने क्यों इतना ज़रा-सा काम भी उससे नहीं हो सकता। वह पेटारी को उठाकर अपने सिरहाने, कबल के नीचे दबाकर नहीं रख सकता। है कुछ नहीं, पर उसके लिए असूझ है, असाध्य है। वह उस पेटारी की ओर हाथ भी नहीं बढ़ा सकता। हाथों पर उसका कोई बस नहीं। जाने दो हाथ, ज़बान से तो कह सकता है। इतना कहने में कौन-सी दुनिया उलटी जाती है कि बेटी, इसे उठाकर इस कबल के नीचे रख दे। जबान कट तो न जायगी, मगर अब उसे मालूम होता है कि ज़बान पर भी उसका काबू नहीं है। आँखो के इशारे से भी यह काम हो सकता है, लेकिन इस समय आँखें भी बग़ावत कर रही हैं। मन का राजा इतने मन्त्रियों और सामन्तों के होते हुए भी अशक्त है, निरीह है। लाख रुपये की थैली सामने रखी

हो, नगी तलवार हाथ में हो , गाय मज़बूत रस्सी से सामने बँधी हो, क्या उस गाय की गरदन पर उसके हाथ उठेंगे ? कभी नहीं । कोई उसकी गरदन भले ही काट ले । वह गऊ की हत्या नहीं कर सकता । वह परित्यक्ता उसे उसी गऊ की तरह लग रही थी । जिस अवसर को वह तीन महीने से खोज रहा है, उसे पाकर आज उसकी आत्मा काँप रही है । तृष्णा किसी वन्य जन्तु की भाँति अपने सस्कारो से आखेटप्रिय है , लेकिन जजीर में बँधे-बँधे उसके नख गिर गये हैं और दाँत कमजोर हो गये हैं ।

उसने रोते हुए कहा—बेटी, पेटारी को उठा ले जाओ । मैं तुम्हारी परीक्षा कर रहा था । तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जायगा ।

चाँद नदी के उस पार वृक्षों की गोद में विश्राम कर चुका था । नेउर धीरे से उठा और धसान मे स्नान करके एक ओर चल दिया । भभूत और तिलक से उसे घृणा हो रही थी । उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह घर से निकला ही कैसे । थोड़े-से उपहास के भय से ! उसे अपने अन्दर एक विचित्र उल्लास का अनुभव हो रहा था, मानो वह बेड़ियों से मुक्त हो गया हो, कोई बहुत बड़ी विजय प्राप्त की हो !

(४)

आठवें दिन नेउर अपने गाँव पहुँच गया । लड़कों ने दौड़कर, उछल-कूदकर, उसकी लकड़ी उसके हाथ से छीनकर, उसका स्वागत किया ।

एक लड़के ने कहा—काकी तो मर गई दादा !

नेउर के पाँव जैसे बँध गये । मुँह के दोनो कोने नीचे झुक गये । दीन विषाद आँखों में चमक उठा । कुछ बोला नहीं, कुछ पूछा भी नहीं । पलभर जैसे निस्सग खड़ा रहा, फिर बड़ी तेजी से अपनी झोपड़ी की ओर चला । बालकवृन्द भी उसके पीछे दौड़े , मगर उनकी शरारत और चचलता भाग गई थी ।

झोपड़ी खुली पड़ी थी । बुधिया की चारपाई जहाँ-की-तहाँ थी । उसकी चिलम और नारियल ज्यों-के-त्यों धरे हुए थे । एक कोने मे दो-चार मिट्टी और पीतल के बरतन पड़े हुए थे । लड़के बाहर ही खड़े रह गये । झोपड़ी के अन्दर कैसे जायँ, वहाँ बुधिया बैठी है ।

गाँव में भगदड़ मच गई । नेउर दादा आ गये । झोपड़ी के द्वार पर भीड़ लग गई । प्रश्नों का ताँता बँध गया—तुम इतने दिन कहाँ थे दादा ? तुम्हारे जाने के बाद

तीसरे ही दिन काकी चल बसी। रात-दिन तुम्हे गालियाँ देती थी। मरते-मरते तुम्हें गरियाती ही रही। तीसरे दिन आये, तो मरी पड़ी थी। तुम इतने दिन कहाँ रहे?

नेउर ने कोई जवाब न दिया। केवल शून्य, निराश, करुण, आहत नेत्रों से लोगों को ओर देखता रहा, मानो उसकी वाणी हर गई है। उस दिन से किसीने उसे बोलते या रोते या हँसते नहीं देखा।

गाँव से आध मील पर पक्की सड़क है। अच्छी आमद-रफ्त है। नेउर बड़े सबेरे जाकर सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ जाता है। किसीसे कुछ माँगता नहीं; पर राहगीर कुछ न-कुछ दे ही देते हैं—चबेना, अनाज, पैसे! सध्या समय वह अपनी झोपड़ी में आ जाता है, चिराग़ जलाता है, भोजन बनाता है, खाता है और उसी खाट पर पड़ रहता है। उसके जीवन मे जो एक सचालक-शक्ति थी, वह लुप्त हो गई है। वह अब केवल जीवधारी है। कितनी गहरी मनोव्यथा है! गाँव में प्लेग आया। लोग घर छोड़ छोड़कर भागने लगे। नेउर को अब किसीको परवा न थी। न किसीको उससे भय था, न प्रेम। सारा गाँव भाग गया, नेउर ने अपनी झोपड़ी न छोड़ी, तब होली आई, सबने खुशियाँ मनाईं, नेउर अपनी झोपड़ी से न निकला; और आज भी वह उसी पेड के नीचे, सड़क के किनारे, उसी तरह मौन बैठा हुआ नजर आता है, निश्चेष्ट, निर्जीव!

गृह-नीति

जब माँ बेटे से बहू की शिकायतों का दफ्तर खोल देती है और यह सिलसिला किसी तरह खत्म होते नजर नहीं आता, तो बेटा उकता जाता है और दिन-भर की थकान के कारण कुछ झुँझलाकर माँ से कहता है—तो आखिर तुम मुझे क्या करने को कहती हो अम्माँ? मेरा काम स्त्री को शिक्षा देना तो नहीं है। यह तो तुम्हारा काम है! तुम उसे डाँटो, मारो, जो सज़ा चाहे दो। मेरे लिए इससे ज़्यादा ख़ुशी की और क्या बात हो सकती है कि तुम्हारे प्रयत्न से वह आदमी बन जाय। मुझसे मत कहो कि उसे सलीक़ा नहीं है, तमीज नहीं है, बे-अदब है। उसे डाँटकर सिखाओ।

माँ—वाह, मुँह से बात निकालने नहीं देती, डाँटूँ तो मुझे ही नोच खाय। उसके सामने आबरू बचाती फिरती हूँ कि किसीके मुँह पर मुझे कोई अनुचित शब्द न कह बैठे।

बेटा—तो फिर इसमें मेरी क्या खता है, मैं तो उसे सिखा नहीं देता कि तुमसे बे-अदबी करे!

माँ—तो और कौन सिखाता है?

बेटा—तुम तो अंधेर करती हो अम्माँ!

माँ—अंधेर नहीं करती, सत्य कहती हूँ। तुम्हारी ही शह पाकर उसका दिमाग़ बढ गया है। जब वह तुम्हारे पास आकर टिसवे बहाने लगती है, तो कभी तुमने उसे डाँटा, कभी समझाया कि तुझे अम्माँ का अदब करना चाहिए? तुम तो खुद उसके गुलाम हो गये हो। वह भी समझती है, मेरा पति कमाता है, फिर मैं क्यों न रानी बनूँ, क्यों किसीसे दबूँ। मर्द जब तक शह न दे, औरत का इतना गुर्दा हो ही नहीं सकता।

बेटा—तो क्या मैं उससे कह दूँ कि मैं कुछ नहीं कमाता, बिलकुल निखट्टू हूँ?

क्या तुम समझती हो, तब वह मुझे ज़लील न समझेगी ? हरएक पुरुष चाहता कि उसकी स्त्री उसे कमाऊ, योग्य, तेजस्वी समझे और सामान्यतः वह जितना है, उससे बढ़कर अपने को दिखाता है। मैंने कभी नादानी नहीं की, कभी स्त्री के सामने डींग नहीं मारी, लेकिन स्त्री की दृष्टि में अपना सम्मान खोना तो कोई भी न चाहेगा।

माँ—तुम कान लगाकर और ध्यान देकर और मीठी मुसकिराहट के साथ उसकी बातें सुनोगे, तो वह क्यों न शेर होगी ? तुम खुद चाहते हो कि स्त्री के हाथों मेरा अपमान कराओ। मालूम नहीं, मेरे किन पापों का तुम मुझे यह दंड दे रहे हो। किन अरमानों से, कैसे-कैसे कष्ट झेलकर मैंने तुम्हें पाला। खुद नहीं पहना, तुम्हें पहनाया, खुद नहीं खाया, तुम्हे खिलाया। मेरे लिए तुम उस मरनेवाले की निशानी थे और मेरी सारी अभिलाषाओं के केन्द्र। तुम्हारी शिक्षा पर मैंने अपने हज़ारों के आभूषण होम कर दिये! विधवा के पास दूसरी कौन-सी निधि थी। इसका तुम मुझे यह पुरस्कार दे रहे हो!

बेटा—मेरी समझ में नहीं आता कि आप मुझसे चाहती क्या हैं। आपके उपकारों को मैं कब मेट सकता हूँ। आपने मुझे केवल शिक्षा नहीं दिलाई, मुझे जीवन-दान दिया, मेरी सृष्टि की। अपने गहने ही नहीं होम किये, अपना रक्त तक पिलाया, अगर मैं सौ बार अवतार लूँ, तो भी इसका बदला नहीं चुका सकता। मैं अपनी जान में आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करता, यथासाध्य आपकी सेवा में कोई बात उठा नहीं रखता, जो कुछ पाता हूँ, लाकर आपके हाथों पर रख देता हूँ; और आप मुझसे क्या चाहती हैं, और मैं कर ही क्या सकता हूँ ? ईश्वर ने हमें और आपको और सारे संसार को पैदा किया। उसका हम उसे क्या बदला दे सकते हैं ? उसका नाम भी तो नहीं लेते। उसका यश भी तो नहीं गाते। इससे क्या उसके उपकारों का भार कुछ कम हो जाता है ? माँ के बलिदानों का प्रतिशोध कोई बेटा नहीं कर सकता, चाहे वह भू-मण्डल का स्वामी ही क्यों न हो। ज्यादा-से-ज्यादा मैं आपकी दिलजोई ही तो कर सकता हूँ, और मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी आपको असन्तुष्ट किया हो।

माँ—तुम मेरी दिलजोई करते हो ? तुम्हारे घर में मैं इस तरह रहती हूँ जैसे कोई लौंडी। तुम्हारी बीबी कभी मेरी बात भी नहीं पूछती। मैं भी कभी बहू थी। रात को घंटे-भर सास की देह दबाकर, उनके सिर में तेल डालकर, उन्हें दूध पिला-

कर तब बिस्तर पर जाती थी। तुम्हारी स्त्री नौ बजे अपनी किताबें लेकर अपनी सहचरी मे जा बैठती है, दोनों खिड़कियाँ खोल लेती है और मज़े से हवा खाती है। मैं मरूँ या जीऊँ, उससे मतलब नहीं, इसी लिए मैंने तुम्हे पाला था?

बेटा—तुमने मुझे पाला था, तो यह सारी सेवा मुझसे लेनी चाहिए थी; मगर तुमने मुझसे कभी नहीं कहा। मेरे अन्य मित्र भी हैं। उनमें भी मैं किसीको माँ की देह में मुकियाँ लगाते नहीं देखता। आप मेरे कर्तव्य का भार मेरी स्त्री पर क्यों डालती हैं? यों अगर वह आपकी सेवा करे, तो मुझसे ज़्यादा प्रसन्न और कोई न होगा। मेरी आँखों मे उसकी इज्ज़त दूनी हो जायगी। शायद उससे और ज़्यादा प्रेम करने लगूँ, लेकिन अगर वह आपकी सेवा नहीं करती, तो आपको उसमे अप्रसन्न होने का कोई कारण नहीं है। शायद उसकी जगह मैं होता, तो मैं भी ऐसा ही करता। सास मुझे अपनी लड़की की तरह प्यार करती, तो मैं भी उसके तलुए सहलाता, इसलिए नहीं कि वह मेरे पति की माँ होती, बल्कि इसलिए कि वह मुझसे मातृवत् स्नेह करती; मगर मुझे खुद यह बुरा लगता है कि वहू सास के पाँव दबाये। कुछ दिन पहले स्त्रियाँ पति के पाँव दबाती थीं। आज भी उस प्रथा का लोप नहीं हुआ है, लेकिन मेरी पत्नी मेरे पाँव दबाये, तो मुझे ग्लानि होगी। मैं उससे कोई ऐसी खिदमत नहीं लेना चाहता, जो मैं उसकी भी न कर सकूँ। यह रस्म उस ज़माने की यादगार है, जब स्त्री पति की लौंडी समझी जाती थी। अब पत्नी और पति दोनों बराबर हैं। कम-से-कम मैं ऐसा ही समझता हूँ।

माँ—वही तो मैं कहती हूँ कि तुम्हीं ने उसे ऐसी-ऐसी बातें पढाकर शेर कर दिया है। तुम्हीं मुझसे वैर साध रहे हो। ऐसी निर्लज्ज, ऐसी बदज़बान, ऐसी टर्री, फूहड़ छोकड़ी ससार में न होगी। घर मे अक्सर महल्ले की बहनें मिलने आती रहती हैं। यह राजा की बेटी न-जाने किन गँवारों मे पली है कि किसीका भी आदर-सत्कार नहीं करती। कमरे से निकलती तक नहीं। कभी कभी जब वह खुद उसके कमरे में चली जाती हैं, तो भी यह गधी चारपाई से नहीं उठती। प्रणाम तक नहीं करती, चरण छूना तो दूर की बात है।

बेटा—वह देवियाँ तुमसे मिलने आती होंगी। तुम्हारे और उनके में बीच न-जाने क्या बातें होती हों; अगर तुम्हारी बहू बीच मे आ कूदे, तो मैं उसे बदतमीज़ कहूँगा। कम-से-कम मैं तो कभी पसन्द न करूँगा कि जब मैं अपने मित्रों से बातें

कर रहा हूँ, तो तुम या तुम्हारी बहू वहाँ जाकर खड़ी हो जाय। स्त्री भी अपनी सहेलियों के साथ बैठी हो, तो मैं वहाँ बिना बुलाये न जाऊँगा। यह तो आजकल का शिष्टाचार है।

माँ—तुम तो हर बात में उसीका पच्छ करते हो बेटा, न-जाने उसने कौन-सी जड़ी सुँघा दी है तुम्हें। यह कौन कहता है कि वह हम लोगों के बीच में आ कूदे, लेकिन बड़ों का उसे कुछ तो आदर-सत्कार करना ही चाहिए।

बेटा—किस तरह?

माँ—जाकर अञ्चल से उनके चरण छुए, प्रणाम करे, पान खिलाये, पङ्खा झले। इन्हीं बातों से बहू का आदर होता है। लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। नहीं सब-की-सब यही कहती होंगी कि बहू को घमंड हो गया है, किसीसे सीधे मुँह बात तक नहीं करती।

बेटा—(विचार करके) हाँ, यह अवश्य उसका दोष है। मैं उसे समझा दूँगा।

माँ—(प्रसन्न होकर) तुमसे सच कहती हूँ बेटा, चारपाई से उठती तक नहीं, सब औरतें थुड़ी-थुड़ी करती हैं, मगर उसे तो शर्म जैसे छू ही नहीं गई, और मैं हूँ कि मारे शर्म के मरी जाती हूँ।

बेटा—यही मेरी समझ में नहीं आता, तुम हर बात में अपने को उसके कामों का ज़िम्मेदार क्यों समझ लेती हो। मुझ पर दफ्तर में न-जाने कितनी घुड़कियाँ पड़ती हैं, रोज ही तो जवाब-तलब होता है, लेकिन तुम्हें मेरे साथ सहानुभूति होती है? क्या तुम समझती हो, अफसरों को मुझसे कोई वैर है, जो अनायास ही मेरे पीछे पड़े रहते हैं, या उन्हें उन्माद हो गया है, जो अकारण ही मुझे काटने दौड़ते हैं? नहीं, इसका कारण यही है कि मैं अपने काम में चौकस नहीं हूँ। गलतियाँ करता हूँ, सुस्ती करता हूँ, लापरवाही करता हूँ। जहाँ अफसर सामने से टला कि लगे समाचार-पत्र पढ़ने या ताश खेलने। क्या उस वक्त हमें यह खयाल नहीं रहता कि काम पड़ा हुआ है और यह ताश खेलने का अवसर नहीं है; लेकिन कौन परवाह करता है। सोचते हैं, साहब डाँट ही तो बतायेंगे, सिर झुकाकर सुन लेंगे, बाधा टल जायगी। पर तुम मुझे दोषी समझकर भी मेरा पक्ष लेती हो और तुम्हारा बस चले, तो हमारे बड़े बाबू को मुझसे जवाब-तलब करने के अभियोग में कालेपानी भेज दो।

माँ—(खिलकर) मेरे लड़के को कोई सजा देगा, तो क्या मैं पान-फूल से उसको पूजा करूँगी ?

बेटा—हरेक बेटा अपनी माता से इसी तरह की कृपा की आशा रखता है और सभी माताएँ अपने लड़कों के ऐबों पर पर्दा डालती हैं। फिर बहुओं की ओर से क्यों उनका हृदय इतना कठोर हो जाता है, यह मेरी समझ मे नहीं आता। तुम्हारी बहू पर जब दूसरी स्त्रियाँ चोट करें, तो तुम्हारे मातृस्नेह का यह धर्म है कि तुम उसकी तरफ से क्षमा माँगो, कोई बहाना कर दो, उनकी नजरों में उसे उठाने की चेष्टा करो। इस तिरस्कार मे तुम क्यों उनसे सहयोग करती हो ? तुम्हे क्यों उसके अपमान मे मज़ा आता है। मैं भी तो हरेक ब्राह्मण या बड़े-बूढे का आदर-सत्कार नहीं करता। मैं किसी ऐसे व्यक्ति के सामने सिर झुका ही नहीं सकता, जिससे मुझे हार्दिक श्रद्धा न हो। केवल सफेद बाल और सिकुड़ी हुई खाल और पोपला मुँह और झुकी हुई कमर किसीको आदर का पात्र नहीं बना देती, और न जनेऊ या तिलक या पण्डित और शर्मा की उपाधि ही भक्ति की वस्तु है। मैं लकीर-पीट्ट सम्मान को नैतिक अपराध समझता हूँ। मैं तो उसीका सम्मान करूँगा, जो मनसा-वाचा-कर्मणा हर पहलू से सम्मान के योग्य है। जिसे मैं जानता हूँ कि मक्कारी और स्वार्थ-साधन और निन्दा के सिवा और कुछ नहीं करता, जिसे मैं जानता हूँ कि रिशवत और सूद तथा ख़ुशामद की कमाई खाता है, अगर वह ब्रह्मा की आयु लेकर भी मेरे सामने आये, तो मैं उसे सलाम न करूँ। इसे तुम मेरा अहङ्कार कह सकती हो, लेकिन मैं मजबूर हूँ, जब तक मेरा दिल न झुके, मेरा सिर भी न झुकेगा। मुमकिन है, तुम्हारी बहू के मन में भी उन देवियों की ओर से अश्रद्धा के भाव हो। उनमे से दो-चार को मैं भी जानता हूँ। हैं वह सब बड़े घर की ; लेकिन सबके दिल छोटे, विचार छोटे। कोई निन्दा की पुतली है, तो कोई खुशामद में यकता, कोई गाली गलौज मे अनुपम। सभी रूढियों की गुलाम, ईर्ष्या-द्वेष से जलनेवाली। एक भी ऐसी नहीं, जिसने अपने घर को नरक का नमूना न बना रखा हो, अगर तुम्हारी बहू ऐसी औरतों के आगे सिर नहीं झुकाती, तो मैं उसे दोषी नहीं समझता।

माँ—अच्छा, अब चुप रहो बेटा, देख लेना तुम्हारी यह रानी एक दिन तुमसे चूल्हा न जलवाये और झाड़ू न लगवाये, तो सही। औरतों को बहुत सिर चढाना

अच्छा नहीं होता। इस निर्लज्जता की भी कोई हद है, कि बूढी सास तो खाना पकाये और जवान बहू बैठी उपन्यास पढ़ती रहे।

बेटा—बेशक यह बुरी बात है और मैं हर्गिज नहीं चाहता कि तुम ख़ाना पकाओ और वह उपन्यास पढे, चाहे वह उपन्यास प्रेमचन्द ही के क्यों न हों, लेकिन यह भी तो देखना होगा कि उसने अपने घर कभी खाना नहीं पकाया। वहाँ रसोइया महाराज है। और जब चूल्हे के सामने जाने से उसके सिर मे दर्द होने लगता है, तो उसे खाना पकाने के लिए मजबूर करना उस पर अत्याचार करना है। मैं तो समझता हूँ, ज्यों-ज्यों हमारे घर की दशा का उसे ज्ञान होगा, उसके व्यवहार में आप-ही-आप इसलाह होती जायगी। यह उसके घरवालों की ग़लती है, कि उन्होंने उसकी शादी किसी धनी घर में नहीं की। हमने भी यह शरारत की कि अपनी असली हालत उनसे छिपाई और यह प्रकट किया कि हम पुराने रईस हैं। अब हम किस मुँह से यह कह सकते हैं कि तू खाना पका, या बरतन माँज या झाड़ू लगा। हमने उन लोगों से छल किया है और उसका फल हमें चखना पड़ेगा। अब तो हमारी कुशल इसीमें है कि अपनी दुर्दशा को नम्रता, विनय और सहानुभूति से ढांकें, और उसे अपने दिल को यह तसल्ली देने का अवसर दें कि बला से धन नहीं मिला, घर के आदमी तो अच्छे मिले। अगर यह तसल्ली भी हमने उससे छीन ली, तो तुम्हीं सोचो, उसको कितनी विदारक वेदना होगी। शायद वह हम लोगों की सूरत से घृणा करने लगे।

माँ—उसके घरवालों को सौ दफे गरज़ थी, तब हमारे यहाँ ब्याह किया। हम कुछ उनसे भीख माँगने गये थे!

बेटा—उनको अगर लड़के की ग़रज थी, तो हमे धन और कन्या दोनों की ग़रज़ थी।

माँ—यहाँ के बड़े बड़े रईस हमसे नाता करने को मुँह फैलाए हुए थे।

बेटा—इसीलिए कि हमने रईसों का स्वाँग बना रखा है। घर की असली हालत खुल जाय, तो कोई बात भी न पूछे।

माँ—तो तुम्हारे ससुरालवाले ऐसे कहाँ के रईस हैं। इधर जरा वकालत चल गई, तो रईस हो गये, नहीं तुम्हारे ससुर के बाप मेरे सामने चपरासगीरी करते थे। और लड़की का यह दिमाग कि खाना पकाने से सिर मे दर्द होता है। अच्छे-अच्छे

घरों की लड़कियाँ ग़रीबों के घर आती हैं और घर की हालत देखकर वैसा ही वर्ताव करती हैं। यह नहीं कि बैठी अपने भाग्य को कोसा करें। इस छोकरी ने हमारे घर को अपना समझा ही नहीं।

बेटा—जब तुम समझने भी दो। जिस घर में घुड़कियों, गालियों और कटुताओं के सिवा और कुछ न मिले, उसे अपना घर कौन समझे। घर तो वह है, जहाँ स्नेह और प्यार मिले। कोई लड़की डोली से उतरते ही सास को अपनी माँ नहीं समझती। माँ तभी समझेगी, जब सास पहले उसके साथ माँ का बर्ताव करे, बल्कि अपनी लड़की से ज्यादा प्रिय समझे।

माँ—अच्छा, अब चुप रहो। जी न जलाओ। यह ज़माना ही ऐसा है कि लड़कों ने स्त्री का मुँह देखा और उसके गुलाम हुए। ये सब न-जाने कौन-सा मन्तर सीखकर आती हैं। यह बहू बेटों के लच्छन हैं-कि पहर दिन चढ़े सोकर उठें। ऐसी कुलच्छनी बहू का तो मुँह न देखे।

बेटा—मैं भी तो देर में सोकर उठता हूँ, अम्माँ। मुझे तो तुमने कभी नहीं कोसा।

माँ—तुम हर बात में उससे अपनी बराबरी करते हो।

बेटा—जो उसके साथ घोर अन्याय है ; क्योंकि जब तक वह इस घर को अपना नहीं समझती, तब तक उसकी हैसियत मेहमान की है, और मेहमान की हम खातिर करते हैं, उसके ऐब नहीं देखते।

माँ—ईश्वर न करे किसीको ऐसी बहू मिले।

बेटा—तो वह तुम्हारे घर में रह चुकी।

माँ—क्या संसार में औरतों की कमी है ?

बेटा—औरतों की कमी तो नहीं ; मगर देवियों की कमी ज़रूर है।

माँ—नीज ऐसी औरत। सोने लगती है, तो बच्चा चाहे रोते-रोते बेदम हो जाय, मिनकती तक नहीं। फूल-सा बच्चा लेकर मैके गई थी, तीन महीने में लौटी, तो बच्चा आधा भी नहीं है।

बेटा—तो क्या मैं यह मान लूँ कि तुम्हें उसके लड़के से जितना प्रेम है, उतना उसे नहीं है ? यह तो प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। और मान लो, वह निरमोहिन ही है, तो यह उसका दोष है। तुम क्यों उसकी जिम्मेदारी अपने सिर लेती हो ?

उसे पूरी स्वतन्त्रता है, जैसे चाहे अपने बच्चे को पाले। अगर वह तुमसे कोई सलाह पूछे, तो प्रसन्न-मुख से दे दो, न पूछे तो समझ लो, उसे तुम्हारी मदद की ज़रूरत नहीं है। सभी माताएँ अपने बच्चे को प्यार करती हैं और वह अपवाद नहीं हो सकती।

माँ—तो मैं सब कुछ देखूँ और मुँह न खोलूँ। घर में आग लगते देखूँ और चुपचाप मुँह मे कालिख लगाये खड़ी रहूँ?

बेटा—तुम इस घर को जल्द छोड़नेवाली हो, उसे बहुत दिन रहना है। घर की हानि लाभ की जितनी चिन्ता उसे हो सकती है, तुम्हे नहीं हो सकती। फिर मैं कर ही क्या सकता हूँ? ज्यादा-से-ज्यादा उसे डाँट बता सकता हूँ; लेकिन वह डाँट की परवाह न करे और तुर्की-बतुर्की जवाब दे, तो मेरे पास ऐसा कौन-सा साधन है, जिससे मैं उसे ताड़ना दे सकूँ?

माँ—तुम दो दिन न बोलो, तो देवता सीधे हो जायँ, सामने नाक रगड़े।

बेटा—मुझे इसका विश्वास नही है। मैं उससे न बोलूँगा, वह भी मुझसे न बोलेगी। ज्यादा पीछे पड़ूँगा, तो अपने घर चली जायगी।

माँ—ईश्वर वह दिन लाये। मैं तुम्हारे लिए नयी बहू लाऊँ।

बेटा—सम्भव है, वह इसकी भी चाची हो।

[सहसा बहू आकर खड़ी हो जाती है। माँ और बेटा दोनों स्तम्भित हो जाते हैं, मानो कोई बम-गोला आ गिरा हो। रूपवती, नाज़ुक मिज़ाज, गर्वीली रमणी है, जो मानो शासन करने के लिए ही बनी है। कपोल तमतमाये हुए हैं; पर अधरों पर विष-भरी मुस्कान है और आँखों में व्यंग्य-मिला परिहास।]

माँ—(अपनी झेंप छिपाकर) तुम्हें कौन बुलाने गया था?

बहू—क्यों, यहाँ जो तमाशा हो रहा है, उसका आनन्द मैं न उठाऊँ?

बेटा—माँ-बेटे के बीच में तुम्हे दखल देने का कोई हक नहीं।

(बहू की मुद्रा सहसा कठोर हो जाती है।)

बहू—अच्छा, आप ज़बान बन्द रखिए। जो पति अपनी स्त्री की निन्दा सुनता रहे, वह पति बनने के योग्य नहीं। वह पतिधर्म का क, ख, ग भी नहीं जानता। मुझसे अगर कोई तुम्हारी बुराई करता, चाहे वह मेरी प्यारी माँ ही क्यों न होती, तो मैं उसकी ज़बान पकड़ लेती। तुम मेरे घर जाते हो, तो वहाँ तो जिसे देखती

हूँ, तुम्हारी प्रशंसा ही करता है। छोटे-से बड़े तक गुलामों की तरह दौड़ते फिरते हैं; अगर उनके बस में हो, तो तुम्हारे लिए स्वर्ग के तारे तोड़ लावें और उसका जवाब मुझे यहाँ यह मिलता है कि बात-बात पर ताने-मेहने, तिरस्कार, बहिष्कार। मेरे घर तो तुमसे कोई नहीं कहता कि तुम देर में क्यों उठे, तुमने अमुक महोदय को सलाम क्यों नहीं किया, अमुक के चरणों पर सिर क्यों नहीं पटका। मेरे बाबूजी कभी गवारा न करेंगे कि तुम उनकी देह पर मुक्कियाँ लगाओ, या उनकी धोती धोओ या उन्हें खाना पकाकर खिलाओ। मेरे साथ यहाँ यह बर्ताव क्यों ? मैं यहाँ लौंडी बनकर नहीं आई हूँ, तुम्हारी जीवन-संगिनी बनकर आई हूँ। मगर जीवन-संगिनी का यह अर्थ तो नहीं कि तुम मेरे ऊपर सवार होकर मुझे चलाओ। यह मेरा काम कि जिस जिस तरह चाहूँ तुम्हारे साथ अपने कर्तव्य का पालन करूँ। उसकी प्रेरणा मेरी आत्मा-से होनी चाहिए, ताड़ना या तिरस्कार से नहीं। अगर कोई मुझे कुछ सिखाना चाहता है, तो माँ की तरह प्रेम से सिखावे, मैं सीखूँगी, लेकिन कोई ज़बरदस्ती, मेरी छाती पर चढ़कर, अमृत भी मेरे कण्ठ में ठूँसना चाहे, तो मैं ओठ बन्द कर लूँगी। मैं अब कब की इस घर को अपना समझ चुकी होती, अपनी सेवा और कर्तव्य का निश्चय कर चुकी होती, मगर यहाँ तो हर घड़ी, हर पल, मेरी देह में सुई चुभाकर मुझे याद दिलाया जाता है कि तू इस घर की लौंडी है, तेरा इस घर से कोई नाता नहीं, तू सिर्फ गुलामी करने के लिए यहाँ लाई गई है, और मेरा रक्त खौलकर रह जाता है, अगर यही हाल रहा, तो एक दिन तुम दोनों मेरी जान लेकर रहोगे।

माँ—सुन रहे हो अपनी चहेती रानी की बातें। वह यहाँ लौंडी बनकर नहीं, रानी बनकर आई है। हम दोनों उसकी टहल करने के लिए हैं, उसका काम हमारे ऊपर शासन करना है, उसे कोई कुछ काम करने को न कहे, मैं खुद मरा करूँ। और तुम उसकी बातें कान लगाकर सुनते हो। तुम्हारा मुँह कभी नहीं खुलता कि उसे डाँटो या समझाओ। थरथर काँपते रहते हो।

बेटा—अच्छा अम्माँ, ठण्ढे दिल से सोचो। मैं इसकी बातें न सुनूँ, तो कौन सुने ? क्या तुम इसके साथ इतनी हमदर्दी भी नहीं देखना चाहती ? आखिर बाबूजी जीवित थे, तब वह तुम्हारी बातें सुनते थे या नहीं ? तुम्हें प्यार करते थे या नहीं ? फिर मैं अपनी बीवी की बातें सुनता हूँ तो, कौन-सी नयी बात करता हूँ, और तुम्हारे बुरा मानने की कौन बात है ?

माँ—हाय बेटा, तुम अपनी स्त्री के सामने मेरा अपमान कर रहे हो। इसी दिन के लिए मैंने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया था? क्यों मेरी छाती नहीं फट जाती?

[वह आँसू पोंछती, आपे से बाहर, कमरे से निकल जाती है। स्त्री-पुरुष दोनों कौतुक-भरी आँखों से उसे देखते हैं, जो बहुत जल्द हमदर्दी में बदल जाती है।]

पति—माँ का हृदय·······

स्त्री—माँ का हृदय नहीं, स्त्री का हृदय . ···

पति—अर्थात्?

स्त्री—जो अन्त तक पुरुष का सहारा चाहता है, स्नेह चाहता है, और उस पर किसी दूसरी स्त्री का असर देखकर ईर्ष्या से जल उठता है?

पति—क्या पगली की-सी बातें करती हो?

स्त्री—यथार्थ कहती हूँ।

पति—तुम्हारा दृष्टिकोण बिलकुल ग़लत है और इसका तजरबा तुम्हें तब होगा, जब तुम खुद सास होगी।

स्त्री—मुझे सास बनना ही नहीं है। लड़का अपने हाथ-पाँव का हो जाय, ब्याह करे और अपना घर सँभाले। मुझे बहू से क्या सरोकार।

पति—तुम्हे यह अरमान बिलकुल नहीं है कि तुम्हारा लड़का योग्य हो, तुम्हारी बहू लक्ष्मी हो, और दोनों का जीवन सुख से कटे?

स्त्री—क्या मैं माँ नहीं हूँ?

पति—माँ और सास मे क्या कोई अन्तर है?

स्त्री—उतना ही जितना ज़मीन और आसमान में है। माँ प्यार करती है, सास शासन करती है। कितनी ही दयालु, सहनशील सतगुणी स्त्री हो, सास बनते ही मानो ब्याई हुई गाय हो जाती है। जिसे पुत्र से जितना ही ज्यादा प्रेम है, वह बहू पर उतनी ही निर्दयता से शासन करती है। मुझे भी अपने ऊपर विश्वास नहीं है। अधिकार पाकर किसे मद नहीं हो जाता। मैंने तय कर लिया है, सास बनूँगी ही नहीं। औरत की गुलामी सासों के बल पर कायम है। जिस दिन सासें न रहेंगी, औरत की गुलामी का अन्त हो जायगा।

पति—मेरा खयाल है, तुम ज़रा भी सहज बुद्धि से काम लो, तो तुम अम्माँ पर ही शासन कर सकती हो। तुमने हमारी बातें कुछ सुनीं?

स्त्री—बिना सुने ही मैंने समझ लिया क्या बातें हो रही होंगी। वही बहू का रोना ..

पति—नहीं, नहीं। तुमने बिलकुल ग़लत समझा। अम्मा के मिजाज में आज मैंने विस्मयकारी अन्तर देखा, बिलकुल अभूतपूर्व। आज वह जैसे अपनी कटुताओं पर लज्जित हो रही थीं। हाँ, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, संकेत रूप से। अब तक वह तुमसे इसलिए नाराज रहती थीं कि तुम देर में उठती हो। अब शायद उन्हें यह चिन्ता हो रही है कि कहीं सबेरे उठने से तुम्हें ठण्ड न लग जाय। तुम्हारे लिए पानी गर्म करने को कह रही थीं।

स्त्री—(प्रसन्न होकर) सच !

पति—हाँ, मुझे तो सुनकर आश्चर्य हुआ।

स्त्री—तो अब मैं मुँह-अँधेरे उठूँगी। ऐसी ठण्ड क्या लग जायगी; लेकिन तुम मुझे चकमा तो नहीं दे रहे हो ?

पति—अब इस बदगुमानी का क्या इलाज। आदमी को कभी-कभी अपने न्याय पर खेद तो होता ही है।

स्त्री—तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर। अब मैं गजरदम उठूँगी। वह बेचारी मेरे लिए क्यों पानी गर्म करेंगी। मैं खुद गर्म कर लूँगी। आदमी करना चाहे तो क्या नहीं कर सकता।

पति—मुझे उनकी बात सुन-सुनकर ऐसा लगता था, जैसे किसी दैवी आदेश ने उनकी आत्मा को जगा दिया हो। तुम्हारे अल्हड़पन और चपलता पर कितना भन्नाती हैं। चाहती थीं कि घर में कोई बड़ी-बूढी आ जाय, तो तुम उसके चरण छुओ, लेकिन शायद अब उन्हें मालूम होने लगा है कि इस उम्र में सभी थोड़े बहुत अल्हड़ होते हैं। शायद उन्हें अपनी जवानी याद आ रही है। कहती थीं, यही तो शौक-सिंगार, पहनने-ओढने, खाने-खेलने के दिन थे। बुढियों का तो दिन-भर ताँता लगा रहता है, कोई कहाँ तक उनके चरण छुए और क्यों छुए। ऐसी कहाँ की बड़ी देवियाँ हैं।

स्त्री—मुझे तो हर्षोन्माद हुआ चाहता है।

पति—मुझे तो विश्वास ही न आता था। स्वप्न देखने का सन्देह हो रहा था।

स्त्री—अब आई हैं राह पर।

पति—कोई दैवी प्रेरणा समझो।

स्त्री—मैं कल से ठेठ बहू बन जाऊँगी। किसी को खबर भी न होगी कि कब अपना मेक-अप करती हूँ। सिनेमा के लिए भी सप्ताह में एक दिन काफी है। बूढ़ियों के पाँव छू लेने में ही क्या हरज है। वह देवियाँ न सही, चुड़ैलें सही, मुझे आशीर्वाद तो देंगी, मेरा गुण तो गायेंगी।

पति—सिनेमा का तो उन्होंने नाम भी नहीं लिया।

स्त्री—तुमको जो इसका शौक है। अब तुम्हे भी न जाने दूँगी।

पति—लेकिन सोचो, तुमने कितनी ऊँची शिक्षा पाई है, किस कुल की हो, इन खूसट बुढ़ियों के पाँव पर सिर रखना तुम्हे बिलकुल शोभा न देगा।

स्त्री—तो क्या ऊँची शिक्षा के यह मानी हैं कि हम दूसरों को नीचा समझें? बुड्ढे कितने ही मूर्ख हों, लेकिन दुनिया का तजरबा तो रखते हैं। कुल की प्रतिष्ठा भी नम्रता और सद्व्यहार से होती है, हेकड़ी और रुखाई से नहीं।

पति—मुझे तो यही ताज्जुब होता है कि इतनी जल्द इनकी काया पलट कैसे हो गई। अब इन्हे बहुओं का सास के पाँव दबाना या उनकी साड़ी धोना, या उनकी देह में मुक्कियाँ लगाना बुरा लगने लगा है। कहती थीं, बहू कोई लौंडी थोड़े ही है कि बैठी सास का पाँव दबाये।

स्त्री—मेरी कसम?

पति—हाँ जी, सच कहता हूँ। और तो और, अब वह तुम्हे खाना भी न पकाने देंगी। कहती थीं, जब बहू के सिर मे दर्द होता है, तो क्यों उसे सताया जाय, कोई महाराज रख लो।

स्त्री—(फूली न समाकर) मैं तो आकाश में उड़ी जा रही हूँ। ऐसी सास के तो चरण धो-धोकर पिये, मगर तुमने पूछा नहीं, अब तक तुम क्यों उसे मार-मारकर हकीम बनाने पर तुली रहती थी।

पति—पूछा क्यों नहीं, भला मैं छोड़नेवाला था। बोलीं, मैं अच्छी हो गई थी, मैंने हमेशा खाना पकाया है, फिर वह क्यों न पकाये। लेकिन अब उनकी समझ मे आया है कि वह निर्धन बाप की बेटी थीं, तुम सम्पन्न कुल की कन्या हो।

स्त्री—अम्माँजी दिल की साफ है।

पति—लेकिन तुमको उनकी पुरानी आदतों का ध्यान तो रखना ही होगा।

स्त्री—इसे मैं क्षमा के योग्य समझती हूँ। जिस जल-वायु मे हम पलते हैं, उसे

एकबारगी नहीं बदल सकते। जिन रुढ़ियों और परम्पराओं मे उनका जीवन बीता है, उन्हें तुरन्त त्याग देना उनके लिए कठिन है। वह क्या, कोई भी नहीं छोड़ सकता। वह तो फिर भी बहुत उदार हैं। तुम अभी महाराज मत रखो। ख्वामख्वाह ज़ेरबार क्यों होगे, जब तरक्की हो जाय, तो महाराज रख लेना। अभी मैं खुद पका लिया करूँगी। तीन-चार प्राणियों का खाना ही क्या। मेरी ज़ात से कुछ तो अम्माँ को आराम मिले। मैं जानती हूँ सब कुछ, लेकिन कोई रोब जमाना चाहे, तो मुझसे बुरा कोई नहीं।

पति—मगर यह तो मुझे बुरा लगेगा, कि तुम रात को अम्माँ के पाँव दबाने बैठो।

स्त्री—बुरा लगने की कौन बात है, जब उन्हें मेरा इतना खयाल है, तो मुझे भी उनका लिहाज करना ही चाहिए। जिस दिन मैं उनके पाँव दबाने बैठूँगी, वह मुझ पर प्राण देने लगेंगी। आखिर बहू-बेटे का कुछ सुख उन्हे भी तो हो। बड़ों की सेवा करने मे हेठी नहीं होती। बुरा जब लगता है, जब वह शासन करते हैं, और अम्माँ मुझसे पाँव दबवायेंगी थोड़े ही। सेंत का यश मिलेगा!

पति—अब तो अम्माँ को तुम्हारी फज़ूलखर्ची भी बुरी नहीं लगती। कहती थी, रुपये-पैसे बहू के हाथ मे दे दिया करो।

स्त्री—चिढ़कर तो नहीं कहती थीं?

पति—नहीं-नहीं, प्रम से कह रही थीं। उन्हे अब भय हो रहा है, कि उन के हाथ मे पैसे रहने से तुम्हे असुविधा होती होगी। तुम बार-बार उनसे माँगते लजाती भी होगी और डरती भी होगी और तुम्हे अपनी ज़रूरतों को रोकना पड़ता होगा।

स्त्री—ना भैया, मैं यह जजाल अभी अपने सिर न लूँगी। तुम्हारी थोड़ी-सी तो आमदनी है, कहीं जल्दी से खर्च हो जाय, तो महीना कटना मुश्किल हो जाय। थोड़े मे निर्वाह करने की विद्या उन्हीं को आती है। मेरी ऐसी जरूरतें ही क्या है। मैं तो केवल अम्माँजी को चिढाने के लिए उनसे बार-बार रुपये माँगती थी। मेरे पास तो खुद सौ-पचास रुपये पड़े रहते हैं। बाबूजी का पत्र आता है, तो उसमें दस-बीस के नोट जरूर होते है, लेकिन अब मुझे हाथ रोकना पड़ेगा। आखिर बाबूजी कब तक देते चले जायेंगे और यह कौन-सी अच्छी बात है, कि मैं हमेशा उनपर टैक्स लगाती रहूँ।

पति—देख लेना, अम्माँ अब तुम्हे कितना प्यार करती हैं।

स्त्री—तुम भी देख लेना मैं उनकी कितनी सेवा करती हूँ।

पति—मगर शुरू तो उन्हीं ने किया ?

स्त्री—केवल विचार में। व्यवहार मे आरम्भ मेरी ही ओर से होगा। भोजन पकाने का समय आ गया। चलती हूँ। आज कोई खास चीज़ तो न खाओगे ?

पति—तुम्हारे हाथों की रूखी रोटियाँ भी पकवान का मजा देंगी।

स्त्री—अब तुम नटखटी करने लगे।

क़ानूनी कुमार

मि॰ क़ानूनी कुमार, एम्॰ एल्॰ ए॰ अपने आफिस मे समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, रिपोर्टों का एक ढेर लिए बैठे हैं। देश की चिन्ताओं से उनकी देह स्थूल हो गई है, सदैव देशोद्धार की फिक्र में पड़े रहते हैं। सामने पार्क है। उसमे कई लड़के खेल रहे हैं। कुछ परदेवाली स्त्रियाँ भी है, फेंसिग के सामने बहुत-से भिखमगे बैठे हुए हैं, एक चायवाला एक वृक्ष के नीचे चाय बेच रहा है।

क़ानूनी कुमार—(आप-ही-आप) देश की दशा कितनी खराब होती चली जाती है। गवर्नमेंट कुछ नहीं करती। बस, दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम है। (पार्क की ओर देखकर) आह ! यह कोमल कुमार सिगरेट पी रहे हैं। शोक, महाशोक ! कोई कुछ नहीं कहता, कोई इसके रोकने की कोशिश नहीं करता। तम्बाकू कितनी ज़हरीली चीज़ है। बालकों को इससे कितनी हानि होती है, यह कोई नहीं जानता। (तम्बाकू की रिपोर्ट देखकर) ओफ ! रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जितने बालक अपराधी होते है, उनमें ७५ प्रति सैकड़े सिगरेटबाज होते हैं। बड़ी भयकर दशा है। हम क्या करें ! लाख स्पीचें दो, कोई सुनता ही नहीं। इसको कानून से रोकना चाहिए, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। (काग़ज़ पर नोट करता है) तम्बाकू बहिष्कार-बिल पेश करूँगा। कौंसिल खुलते ही यह बिल पेश कर देना चाहिए।

(एक क्षण के बाद फिर पार्क की ओर ताकता है, और परदेदार महिलाओं को घास पर बैठे देखकर लम्बी साँस लेता है।)

ग़ज़ब है, कितना घोर अन्याय ! कितना पाशविक व्यवहार ! यह कोमलांगी सुन्दरियाँ चादर में लिपटी हुई कितनी भद्दी, कितनी फूहड़ मालूम होती हैं। अभी तो देश का यह हाल हो रहा है। (रिपोर्ट देखकर) स्त्रियों की मृत्यु-सख्या बढ रही है। तपेदिक उछलता चला आता है, प्रसूति की बीमारी आंधी की तरह चढी आती है, और हम हैं कि आँखें बन्द किये पड़े हैं। बहुत जल्द ऋषियों की

यह भूमि, यह वीर-प्रसविनी जननी रसातल को चली जायगी, इसका कहीं निशान भी न रहेगा। गवर्नमेंट को क्या फिक्र! लोग कितने पाषाण हो गये हैं। आँखों के सामने यह अत्याचार देखते हैं, और ज़रा भी नहीं चौंकते। यह मृत्यु का शैथिल्य है। यहाँ भी कानून की ज़रूरत है। एक ऐसा क़ानून बनना चाहिए, जिससे कोई स्त्री परदे में न रह सके। अब समय आ गया है कि इस विषय में सरकार कदम बढ़ावे। क़ानून की मदद के बगैर कोई सुधार नहीं हो सकता, और यहाँ क़ानूनी मदद की जितनी जरूरत है उतनी और कहाँ हो सकती है। माताओं पर देश का भविष्य अवलम्बित है। परदा-हटाव-बिल पेश होना चाहिये। जानता हूँ बड़ा विरोध होगा; लेकिन गवर्नमेंट को साहस से काम लेना चाहिए, ऐसे नपुँसक विरोध के भय से उद्धार के कार्य में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। (कागज पर नोट करता है) यह बिल भी असेम्बली में खुलते ही पेश कर देना होगा। बहुत विलम्ब हो चुका, अब विलंब की गुन्जाइश नहीं है। वरना मरीज़ का अन्त हो जायगा।

(मसौदा बनाने लगता है—हेतु और उद्देश्य—· · · ·

सहसा एक भिक्षुक सामने आकर पुकारता है—जय हो सरकार की, लक्ष्मी फूलें फलें, · · · · ·

कानूनी—हट जाओ, यू सुअर, कोई काम क्यों नहीं करता?

भिक्षुक—बड़ा धर्म होगा सरकार, मारे भूख के आँखों-तले अँधेरा· · · · · ·)

कानूनी—चुप रहो सूअर, हट जाओ सामने से, अभी निकल जाओ, बहुत दूर निकल जाओ।

(मसौदा छोड़कर फिर आप-ही-आप)

यह ऋषियों की भूमि आज भिक्षुकों की भूमि हो रही है, जहाँ देखिए, वहाँ रेवड़-के-रेवड़ और दल-के-दल भिखारी! यह गवर्नमेंट की लापरवाही की बरकत है। इङ्गलेंड में कोई भिक्षुक भीख नहीं माँग सकता! पुलिस पकड़कर काल-कोठरी में बन्द कर दे। किसी सभ्य देश में इतने भिखमगे नहीं हैं। यह पराधीन, गुलाम भारत है, जहाँ ऐसी बातें इन बीसवीं सदी में भी सम्भव हैं। उफ! कितना शक्ति का अपव्यय हो रहा है। (रिपोर्ट निकालकर) ओह! ५० लाख! ५० लाख आदमी केवल भिक्षा माँगकर गुज़र करते हैं और क्या ठीक है कि संख्या इसकी दुगुनी न हो। यह पेशा लिखाना कौन पसन्द करता है। एक करोड़ से कम भिखारी इस देश में नहीं

हैं। यह तो भिखारियों की बात हुई, जो द्वार-द्वार झोली लिए घूमते है। इसके उपरान्त टीकाधारी, कोपीनधारी और जटाधारी समुदाय भी तो है, जिसकी सख्या कम से-कम दो करोड़ होगी। जिस देश मे इतने हरामखोर, मुफ्त का माल उडाने-वाले, दूसरों को कमाई पर मोटे होनेवाले प्राणी हों, उनकी दशा क्यों न इतनी हीन हो। आश्चर्य यही है कि अबतक यह देश जीवित कैसे है! (नोट करता है) एक बिल की सख्त जरूरत है, तुरन्त पेश करना चाहिए—नाम हो 'भिखमगा-बहिष्कार बिल!' खूब जूतियाँ चलेंगी, धर्म के सूत्रधार खूब नाचेंगे, खूब गालियाँ देंगे, गवर्नमेंट भी कन्नी काटेगी, मगर सुधार का मार्ग तो कटकाकीर्ण है ही। तीनों बिल मेरे ही नाम से हो, फिर देखिए कैसी खलबली मचती है।

(आवाज़ आती है—चाय गरम! चाय गरम!! मगर ग्राहकों की सख्या बहुत कम है। कानूनी कुमार का ध्यान चायवाले की ओर आकर्षित हो जाता है।)

कानूनी—(आप-ही-आप) चायवाले की दूकान पर एक भी ग्राहक नहीं, क्या मूर्ख देश है। इतनी बलवर्द्धक वस्तु और ग्राहक कोई नहीं। सभ्य देशों मे पानी की जगह चाय पी जाती है। (रिपोर्ट देखकर) इङ्गलैंड मे पाँच करोड़ पौण्ड की चाय जाती है। इङ्गलैंडवाले मूर्ख नहीं हैं। उनका आज ससार पर आधिपत्य है, इसमें चाय का कितना बड़ा भाग है, कौन इसका अनुमान कर सकता है। और यहाँ बेचारा चायवाला खड़ा है, और कोई उसके पास नहीं फटकता। चीनवाले चाय पी-पीकर स्वाधीन हो गये, मगर हम चाय न पीयेंगे। क्या अकल है। गवर्नमेंट का सारा दोष है। कीटों से भरे हुए दूध के लिए इतना शोर मचता है, मगर चाय को कोई नहीं पूछता, जो कीटों से खाली, उत्तेजक और पुष्टिकारक है! सारे देश की मति मारी गई है। (नोट करता है) गवर्नमेंट से प्रश्न करना चाहिए। असेम्बली खुलते ही प्रश्नों का तांता बाँध दूँगा।

प्रश्न—क्या गवर्नमेंट बताएगी कि गत पाँच सालों मे भारतवर्ष में चाय की खपत कितनी बढ़ी है, और उसका सर्वसाधारण में प्रचार करने के लिए गवर्नमेंट ने क्या क़दम लिये हैं?

(एक रमणी का प्रवेश। कटे हुए केश, आड़ी माँग, पारसी रेशमी साड़ी, कलाई पर घड़ी, आँखों पर ऐनक, पाँव मे ऊँची एड़ी की लेडी शू, हाथ मे एक बटुवा लटकाये हुए, साड़ी में ब्रूच है, गले में मोतियों का हार।)

क़ानूनी—(हाथ बढाकर) हल्लो मिसेज़ बोस ! आप खूब आईं, कहिए, किधर की सैर हो रही है। अबकी तो 'आलोक' में आपकी कविता बड़ी सुन्दर थी। मैं तो पढ़कर मस्त हो गया। इस नन्हें-से हृदय में इतने भाव कहाँ से आ जाते हैं, मुझे आश्चर्य होता है। शब्द-विन्यास की तो आप रानी हैं। ऐसे-ऐसे चोट करनेवाले भाव आपको कैसे सूझ जाते हैं ?

मिसेज़ बोस—दिल जलता है, तो उसमें आप-से-आप धुएँ के बादल निकलते हैं। जब तक स्त्री-समाज पर पुरुषों का यह अत्याचार रहेगा, ऐसे भावों की कमी न रहेगी।

कानूनी—क्या इधर कोई नयी बात हो गई ?

बोस—रोज़ ही होती रहती है। मेरे लिए डाक्टर बोस की आज्ञा नहीं कि किसी से मिलने जाओ, या कहीं सैर करने जाओ। अबकी कैसी गरमी पड़ी है कि सारा रक्त जल गया ; पर मैं पहाड़ों पर न जा सकी। मुझसे यह अत्याचार, यह गुलामी नहीं सही जाती।

क़ानूनी—डाक्टर बोस खुद भी तो पहाड़ों पर नहीं गये।

बोस—वह न जायँ, उन्हें धन की हाय-हाय पड़ी है। मुझे क्यों अपने साथ लिये मरते हैं ? वह क्लब नहीं जाना चाहते, उनका समय रुपये उगलता है, मुझे क्यों रोकते हैं ? वह खद्दर पहनें, मुझे क्यों अपने पसन्द के कपड़े पहनने से रोकते हैं ? वह अपनी माता और भाइयों के गुलाम बने रहें, मुझे क्यों उनके साथ रो-रोकर दिन काटने पर मजबूर करते हैं ? मुझसे यह बरदाश्त नहीं हो सकता। अमेरिका में एक कटु वचन कहने पर सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। पुरुष ज़रा देर से घर आया और स्त्री ने तलाक दिया। वह स्वाधीनता का देश है, वहाँ लोगों के विचार स्वाधीन हैं। यह गुलामों का देश है, यहाँ हरएक बात में उसी गुलामी की छाप है। मैं अब डाक्टर बोस के साथ नहीं रह सकती। नाकों दम आ गया। इसका उत्तरदायित्व उन्हीं लोगों पर है, जो समाज के नेता और व्यवस्थापक बनते हैं ; अगर आप चाहते हैं कि स्त्रियों को गुलाम बनाकर स्वाधीन हो जायँ, तो यह अनहोनी बात है। जब तक तलाक का क़ानून न जारी होगा, आपका स्वराज्य आकाश-कुसुम ही रहेगा। डाक्टर बोस को आप जानते हैं, धर्म में उनकी कितनी श्रद्धा है ! सच कहिए। मुझे धर्म के नाम से घृणा है। इसी धर्म ने स्त्री-जाति को पुरुष की दासी

बना दिया है। मेरा वस चले, तो मैं सारे धर्म की पोथियो को उठाकर परनाले में फेंक दूँ।

(मिसेज ऐयर का प्रवेश। गोरा रग, ऊँचा कद, ऊँचा गाउन, गोल हाँड़ी की-सी टोपी, आँखो पर ऐनक, चेहरे पर पाउडर, गालों और ओठों पर सुर्ख पेंट, रेशमी जुर्राबें और ऊँची एड़ी के जूते।)

कानूनी—(हाथ बढाकर) हल्लो मिसेज ऐयर, आप खूब आईं, कहिए, किधर की सैर हो रही है? 'आलोक' मे अबकी आपका लेख अत्यन्त सुन्दर था, मैं तो पढकर दग रह गया।

मिसेज ऐयर—(मिसेज़ बोस की ओर मुसकिराकर) दग ही तो रह गये, या कुछ किया भी? हम स्त्रियाँ अपना कलेजा निकालकर रख दें; लेकिन पुरुषों का दिल न पसीजेगा।

बोस—सत्य! बिलकुल सत्य।

ऐयर—मगर इस पुरुष राज का बहुत जल्द अन्त हुआ जाता है। स्त्रियाँ अब कैद मे नहीं रह सकतीं। मि० ऐयर की सूरत मैं नहीं देखना चाहती।

(मिसेज बोस मुँह फेर लेती हैं।)

कानूनी—(मुसकिराकर) मि० ऐयर तो खूबसूरत आदमी हैं।

लेडी ऐयर—उनकी सूरत उन्हे मुबारक रहे। मैं खूबसूरत पराधीनता नहीं चाहती, बदसूरत स्वाधीनता चाहती हूँ। वह मुझे अबकी ज़बरदस्ती पहाड़ पर ले गये। वहाँ की शीत मुझसे नहीं सही जाती, कितना कहा कि मुझे मत ले जाओ, मगर किसी तरह न माना। मैं किसी के पीछे-पीछे कुतिया की तरह नहीं चलना चाहती।

(मिसेज़ बोस उठकर खिड़की के पास चली जाती हैं।)

कानूनी—अब मुझे मालूम हो गया कि तलाक का बिल असेम्बली में पेश करना पड़ेगा।

ऐयर—ख़ैर, आपको मालूम तो हुआ, मगर शायद क़यामत में?

कानूनी—नहीं मिसेज़ ऐयर, अबकी छुट्टियों के बाद ही यह बिल पेश होगा; और धूमधाम के साथ पेश होगा। बेशक पुरुषों का अत्याचार बढ रहा है। जिस प्रथा का विरोध आप दोनो महिलाएँ कर रही हों, वह अवश्य हिन्दू-समाज के लिए

घातक है। अगर हमें सभ्य बनना है, तो सभ्य देशों के पद-चिन्हों पर चलना पड़ेगा। धर्म के ठीकेदार चिल्ल-पों मचायेंगे, कोई परवाह नहीं। उनकी खबर लेना आप दोनों महिलाओं का काम होगा। ऐसा बनाना कि मुँह न दिखा सकें।

लेडी ऐयर—पेशगी धन्यवाद देती हूँ। (हाथ मिलाकर चली जाती है।)

मसेज़ बोस—(खिड़की के पास से आकर) आज इसके घर में घी का चिराग़ जलेगा। यहाँ से सीधे बोस के पास गई होगी। मैं भी जाती हूँ।

(चली जाती है।)

क़ानूनी कुमार एक क़ानून की किताब उठाकर उसमें तलाक की व्यवस्था देखने लगता है, कि मि० आचार्या आते हैं। मुँह साफ, एक आँख पर ऐनक, खाकी आधे बाँह का शर्ट, निकर, ऊनी मोजे, लम्बे बूट। पीछे एक छोटा टेरियर कुत्ता भी है।

क़ानूनी—हल्लो मि० आचार्य, आप ख़ूब आये, आज किधर की सैर हो रही है? होटल का क्या हाल है?

आचार्या—कुत्ते की मौत मर रहा है। इतना बढ़िया भोजन, इतना साफ-सुथरा मकान, ऐसी रोशनी, इतना आराम, फिर भी मेहमानों का दुर्भिक्ष। समझ में नहीं आता, अब कितना निर्ख घटाऊँ। इन दामों अलग घर में मोटा खाना भी नसीब नहीं हो सकता। उस पर सारे ज़माने की झंझट, कभी नौकर का रोना, कभी दूध वाले का रोना, कभी धोबी का रोना, कभी मेहतर का रोना; यहाँ सारे जंजाल से मुक्ति हो जाती है। फिर भी आधे कमरे खाली पड़े हैं।

कानूनी—यह तो आपने बुरी खबर सुनाई।

आचार्या—पच्छिम में क्यों इतना सुख और शान्ति है, क्यों इतना प्रकाश और धन है, क्यों इतनी स्वाधीनता और बल है। इन्हीं होटलों के प्रसाद से। होटल पश्चिमी गौरव का मुख्य अंग है, पश्चिमी सभ्यता का प्राण है, अगर आप भारत को उन्नति के शिखर पर देखना चाहते हैं, तो होटल जीवन का प्रचार कीजिए। इसके सिवाय दूसरा उपाय नहीं है। जब तक छोटी-छोटी घरेलू चिन्ताओं से मुक्त न हो जायँगे, आप उन्नति कर ही नहीं सकते। राजों, रईसों को अलग घरों में रहने दीजिए, वह एक की जगह दस खर्च कर सकते हैं। मध्यम श्रेणीवालों के लिए होटल के प्रचार में ही सब कुछ है। हम अपने सारे मेहमानों की फिक्र अपने सिर

लेने को तैयार हैं, फिर भी जनता की आँखें नहीं खुलतीं। इन मूर्खों की आँखें उस वक्त तक न खुलेंगी, जब तक .कानून न बन जायगा।

.कानूनी—(गम्भीर भाव से) हाँ, मैं भी सोच रहा हूँ। ज़रूर .कानून से मदद लेनी चाहिए। एक ऐसा .कानून बन जाय, कि जिन लोगों की आय ५००) से कम हो, वह होटलों में रहें। क्यों?

आचार्या—आप अगर यह .कानून बनवा दें, तो आनेवाली सन्तान आपको अपना मुक्तिदाता समझेगी। आप एक कदम में देश को ५०० वर्ष की मंजिल तय करा देंगे।

कानूनी—तो लो, अबकी यह .कानून भी असेम्बली खुलते ही पेश कर दूँगा। बड़ा शोर मचेगा। लोग देश-द्रोही और जाने क्या-क्या कहेंगे, पर इसके लिए तैयार हूँ। कितना दुःख होता है, जब लोगों को अहीर के द्वार पर लुटिया लिये खड़ा देखता हूँ। स्त्रियों का जीवन तो नरक-तुल्य हो रहा है। सुबह से दस-बारह बजे रात तक घर के धन्धों से फ़ुरसत नहीं। कभी बरतन माँजो, कभी भोजन बनाओ, कभी झाड़ू लगाओ। फिर स्वास्थ्य कैसे बने, जीवन कैसे सुखी हो, सैर कैसे करें, जीवन के आमोद-प्रमोद का आनन्द कैसे उठावें, अध्ययन कैसे करें। आपने खूब कहा, एक कदम में ५०० सालों की मंजिल पूरी हुई जाती है।

आचार्या—तो अबकी बिल पेश कर दीजिएगा?

कानूनी—अवश्य!

(आचार्या हाथ मिलाकर चला जाता है)

कानूनी कुमार खिड़की के सामने खड़ा होकर 'होटल-प्रचार-बिल' का मसविदा सोच रहा है। सहसा पार्क में एक स्त्री सामने से गुजरती है। उसकी गोद में एक बच्चा है, दो बच्चे पीछे-पीछे चल रहे हैं, और उदर के उभार से मालूम होता है कि गर्भवती भी है। उसका कृश शरीर, पीला मुख और मन्द गति देखकर अनुमान होता है कि उसका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ है, और इस भार का वहन करना उसे कष्टप्रद है।

क़ानूनी कुमार—(आप ही-आप) इस समाज का, इस देश का और इस जीवन का सत्यानाश हो, जहाँ रमणियों को केवल बच्चा जनने की मशीन समझा जाता है। इस बेचारी को जीवन का क्या सुख! कितनी ही ऐसी बहनें इसी जंजाल

में फँसकर २०, २५ की अवस्था मे, जब कि वास्तव में जीवन को सुखी होना चाहिए, रुग्ण होकर ससार-यात्रा समाप्त कर देती हैं। हा भारत ! यह विपत्ति तेरे से कब टलेगी ! ससार में ऐसे-ऐसे पाषाण-हृदय मनुष्य पडे हुए हैं, जिन्हे इन दुखियारियों पर ज़रा भी दया नहीं आती। ऐसे अन्धे, ऐसे पाषाण, ऐसे पाखडी समाज को, जो स्त्री को अपने वासनाओ की वेदी पर बलिदान करता है, क़ानून के सिवा और किस विधि से सचेत किया जाय। और कोई उपाय नहीं है। नर-हत्या का जो दण्ड है, वही दड ऐसे मनुष्यों को मिलना चाहिए। मुबारक होगा वह दिन, जब भारत मे इस नाशिनी प्रथा का अन्त हो जायगा --स्त्री का मरण, बच्चो का मरण और जिस समाज का जीवन ऐसी संतानों पर आधारित हो उसका मरण ! ऐसे बदमाशो को क्यों न दण्ड दिया जाय ? कितने अन्धे लोग हैं। बेकारी का यह हाल कि आधी जन सख्या मक्खियाँ मार रही हैं, आमदनी का यह हाल कि भर-पेट किसीको रोटियाँ नहीं मिलती, बच्चों को दूध स्वप्न मे भी नहीं मिलता, और यह अन्धे हैं कि बच्चे-पर-बच्चे पैदा करते जाते हैं। 'सतान-निग्रह-बिल' की जितनी ज़रूरत है, इस समय देश को उतनी और किसी क़ानून की नहीं। असेंबली खुलते ही यह बिल पेश करूँगा। प्रलय हो जायगा, यह जानता हूँ; पर और उपाय ही क्या है। दो बच्चों से ज्यादा जिसके हों, उसे कम-से-कम पाँच वर्ष की क़ैद, उसमे पाँच महीने से कम काल-कोठरी न हो। जिसकी आमदनी सौ रुपये से कम हो, उसे संतानोत्पत्ति का अधिकार ही न हो (मन में उस बिल के बाद की अवस्था का आनन्द लेकर) कितना सुखमय जीवन हो जायगा ! हाँ, एक दफा यह भी रहे कि एक सतान के बाद कम-से-कम सात वर्ष तक दूसरी सतान न आने पावे। तब इस देश में सुख और सतोष का साम्राज्य होगा, तब स्त्रियों और बच्चों के मुँह पर खून की सुर्खी नज़र आयेगी, तब मजबूत हाथ-पाँव और मजबूत दिल और जिगर के पुरुष उत्पन्न होंगे।

(मिसेज़ कानूनी कुमार का प्रवेश)

कानूनी कुमार जल्दी से रिपोर्टों और पत्रों को समेट देता है, और एक उपन्यास खोलकर बैठ जाता है।

मिसेज़—क्या कर रहे हो ? वही धुन !

क़ानूनी—एक उपन्यास पढ रहा हूँ।

मिसेज़—तुम सारी दुनिया के लिए कानून बनाते हो, एक कानून मेरे लिए भी

बना दो, इससे देश का जितना बड़ा उपकार होगा, उतना और किसी क़ानून से न होगा। तुम्हारा नाम अमर हो जायगा और घर-घर तुम्हारी पूजा होगी!

क़ानूनी— अगर तुम्हारा ख़्याल है कि मैं नाम और यश के लिए देश की सेवा कर रहा हूँ, तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि तुमने मुझे रत्ती-भर भी नहीं समझा।

मिसेज—नाम के लिए कोई बुरा काम नहीं है, और तुम्हे यश की आकांक्षा हो, तो मैं उसकी निन्दा न करूँगी, भूलकर भी नहीं। मैं तुम्हे एक ही ऐसी तदबीर बता दूँगी, जिससे तुम्हे इतना यश मिलेगा कि तुम ऊब जाओगे। फूलों की इतनी वर्षा होगी कि तुम उसके नीचे दब जाओगे। गले में इतने हार पड़ेंगे कि तुम सीधा न कर सकोगे।

कानूनी—(उत्सुकता को छिपाकर)--कोई मज़ाक़ की बात होगी। देखो मिसेज़ काम करनेवाले आदमी के लिए इससे बड़ी दूसरी बाधा नहीं है कि उसके घरवाले उसके काम की निन्दा करते हों। मैं तुम्हारे इस व्यवहार से निराश हो जाता हूँ।

मिसेज--तलाक़ का कानून तो बनाने जा रहे हो, अब क्या डर है।

कानूनी—फिर वही मज़ाक! मै चाहता हूँ, तुम इन प्रश्नो पर गम्भीर विचार करो।

मिसेज़—मैं बहुत गम्भीर विचार करती हूँ। सच मानो। मुझे इसका दु:ख है कि तुम मेरे भावों को नहीं समझते। मैं इस वक्त तुमसे जो बात कहने जा रही हूँ, उसे मैं देश की उन्नति के लिए आवश्यक ही नहीं, परमावश्यक समझती हूँ। मुझे इसका पक्का विश्वास है।

क़ानूनी--पूछने की हिम्मत तो नहीं पड़ती। (अपनी झेंप मिटाने के लिए हँसता है।)

मिसेज—मैं तो खुद ही कहने आई हूँ। हमारा वैवाहिक-जीवन कितना लज्जास्पद है, तुम खूब जानते हो। रात-दिन रगड़ा-झगड़ा मचा रहता है। कहीं पुरुष स्त्री पर हाथ साफ कर लेता है, कहीं स्त्री पुरुष की मूँछो के बाल नोचती है। हमेशा एक-न-एक गुल खिला ही करता है। कहीं एक मुँह फुलाये बैठा है, कहीं दूसरा घर छोड़कर भाग जाने की धमकी दे रहा है। कारण जानते हो क्या है? कभी सोचा है? पुरुषों की रसिकता और कृपणता! यही दोनों ऐब मनुष्यों के जीवन को नरक-तुल्य बनाये हुए हैं। जिधर देखो, अशान्ति है, विद्रोह है, बाधा है। साल में लाख

हत्याएँ इन्हीं बुराइयों के कारण हो जाती हैं, लाखों स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं, पुरुष मद्य-सेवन करने लगते हैं, यह बात है या नहीं ?

क़ानूनी—बहुत-सी बुराइयाँ ऐसी हैं, जिन्हें कानून नहीं रोक सकता।

मिसेज़—(कहक़हा मारकर) अच्छा, क्या आप भी कानून की अक्षमता स्वीकार करते हैं ? मैं यह न समझती थी। मैं तो कानून को ईश्वर से ज्यादा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् समझती हूँ।

क़ानूनी—फिर तुमने मज़ाक शुरू किया।

मिसेज़—अच्छा, लो कान पकड़ती हूँ। अब न हँसूँगी। मैंने उन बुराइयों को रोकने का एक कानून सोचा है। उसका नाम होगा—'दम्पति-सुख-शान्ति-बिल'। उसकी दो मुख्य धाराएँ होंगी और क़ानूनी बारीकियाँ तुम ठीक कर लेना। एक धारा होगी कि पुरुष अपनी आमदनी का आधा बिना कान-पूँछ हिलाये स्त्री को दे दे। अगर न दे, तो पाँच साल कठिन कारावास और पाँच महीने काल-कोठरी। दूसरी धारा होगी, पन्द्रह से पचास तक के पुरुष घर से बाहर न निकलने पावें; अगर कोई निकले, तो दस साल कारावास और दस महीने कालकोठरी। बोलो, मंजूर है ?

क़ानूनी—(गम्भीर होकर) असम्भव, तुम प्रकृति को पलट देना चाहती हो। कोई पुरुष घर में क़ैदी बनकर रहना स्वीकार न करेगा।

मिसेज़—वह करेगा और उसका बाप करेगा। पुलिस डंडे के ज़ोर से करायेगी। न करेगा, तो चक्की पीसनी पड़ेगी। करेगा कैसे नहीं ? अपनी स्त्री को घर की मुर्गी समझना, और दूसरी स्त्रियों के पीछे दौड़ना क्या खालाजी का घर है ? तुम अभी इस क़ानून को अस्वाभाविक समझते हो। मत घबड़ाओ, स्त्रियों का अधिकार होने दो। यह पहला कानून न बन जाय, तो कहना, कोई कहता था। स्त्री एक-एक पैसे के लिए तरसे, और आप गुलछर्रे उड़ायें। दिल्लगी है ! आधी आमदनी स्त्री को दे देनी पड़ेगी, जिसका उससे कोई हिसाब न पूछा जा सकेगा।

क़ानूनी—तुम मानव-समाज को मिट्टी का खिलौना समझती हो।

मिसेज़—कदापि नहीं। मैं यही समझती हूँ, कि कानून सब कुछ कर सकता है। मनुष्य का स्वभाव भी बदल सकता है।

क़ानूनी—कानून यह नहीं कर सकता।

मिसेज़—कर सकता है।

क़ानूनी—नहीं कर सकता ।

मिसेज़—कर सकता है , अगर वह ज़बरदस्ती लड़कों को स्कूल भेज सकता है; अगर वह ज़बरदस्ती विवाह की उम्र नियत कर सकता है , अगर वह ज़बरदस्ती बच्चों को टीका लगवा सकता है, तो वह जबरदस्ती पुरुषों को घर में बन्द भी कर सकता है, उनकी आमदनी का आधा स्त्रियों को दिला भी सकता है । तुम कहोगे, पुरुष को कष्ट होगा । ज़बरदस्ती जो काम कराया जाता है, उसमे करनेवाले को कष्ट होता है। तुम उस कष्ट का अनुभव नहीं करते; इसीलिए वह तुम्हें नहीं अखरता । मैं यह नहीं कहती कि सुधार ज़रूरी नहीं है । मैं भी शिक्षा का प्रचार चाहती हूँ, मैं भी बाल-विवाह बंद करना चाहती हूँ, मैं भी चाहती हूँ, बीमारियाँ न फैलें , लेकिन क़ानून बनाकर ; ज़बरदस्ती यह सुधार नहीं करना चाहती । लोगों मे शिक्षा और जागृति फैलाओ, जिसमें कानूनी भय के बगैर यह सुधार हो जाय । आपसे कुरसी तो छोड़ी जाती नहीं, घर से निकला जाता नही , शहरों की विलासिता को एक दिन के लिए भी नहीं त्याग सकते और सुधार करने चले हैं आप देश का । इस तरह सुधार न होगा , हाँ, पराधीनता की बेड़ी और कठोर हो जायगी ।

(मिसेज़ कुमार चली जाती है, और क़ानूनी कुमार अव्यवस्थित-चित्त-सा कमरे में टहलने लगता है ।)

लॉटरी

जल्दी से मालदार हो जाने की हवस किसे नहीं होती ? उन दिनों जब लॉटरी के टिकट आये, तो मेरे दोस्त विक्रम के पिता, चाचा, अम्माँ और भाई सभी ने एक-एक टिकट खरीद लिया। कौन जाने, किसकी तक़दीर जोर करे ? किसी के नाम आये, रुपया रहेगा, तो घर में ही।

मगर विक्रम को सब्र न हुआ। औरों के नाम रुपये आयेंगे, फिर उसे कौन पूछता है। बहुत होगा दस-पाँच हजार उसे दे देंगे। इतने रुपयों में उसका क्या होगा ? उसकी जिन्दगी में बड़े-बड़े मसूबे थे। पहले तो उसे सम्पूर्ण जगत् की यात्रा करनी थी, एक-एक कोने की। पीरू और ब्राज़ील और टिम्बकटू और होनोलूल, यह सब उसके प्रोग्राम में थे। वह आँधी की तरह महीने दो-महीने उड़कर लौट आनेवालों में न था। वह एक-एक स्थान में कई-कई दिन ठहरकर वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज़ आदि का अध्ययन करना और संसार-यात्रा का एक वृहद् ग्रन्थ लिखना चाहता था। फिर उसे एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाना था, जिसमें दुनिया-भर की उत्तम रचनाएँ जमा की जायँ। पुस्तकालय के लिये वह दो लाख खर्च करने को तैयार था, और बँगला और कार और फर्निचर तो मामूली बातें थीं। पिता या चचा के नाम रुपये आये, तो पाँच हज़ार से ज्यादा का डौल नहीं ; अम्माँ के नाम आये, तो बीस हजार मिल जायँगे ; लेकिन भाई साहब के नाम आ गये, तो उसके हाथ धेला भी न लगेगा। वह आत्माभिमानी था। घरवालों से भी खैरात या पुरस्कार के रूप में कुछ लेने की बात उसे अपमान-सी लगती थी। कहा करता था—भाई, किसीके सामने हाथ फैलाने से तो किसी गड्ढे में डूब मरना अच्छा है। जब आदमी अपने लिए संसार में कोई स्थान न निकाल सके, तो यहाँ से प्रस्थान कर जाय!

वह बहुत बेकरार था। घर में लाटरी-टिकट के लिए उसे कौन रुपये देगा और वह माँगे भी तो कैसे। उसने बहुत सोच-विचारकर कहा—क्यों न हम-तुम साझे में एक टिकट ले लें।

तजवीज मुझे भी पसद आई। मैं उन दिनों स्कूल-मास्टर था। बीस रुपये मिलते थे। उनमे बडी मुश्किल से गुज़र होती थी। दस रुपये का टिकट खरीदना मेरे लिए सुफेद हाथी खरीदना था। हाँ, एक महीना दूध और घी ओर जलपान और ऊपर के सारे खर्च तोडकर पाँच रुपये की गुजाइश निकल सकती थी। फिर भी जी डरता था। कहीं से कोई बालाई रकम मिल जाय, तो कुछ हिम्मत बढे।

विक्रम ने कहा—कहो तो अपनी अँगूठी बेच डालूँ? कह दूँगा, उँगली से फिसल पड़ी।

अँगूठी दस रुपये से कम की न थी। उसमें पूरा टिकट आ सकता था; अगर कुछ खर्च किये बिना ही टिकट मे आधा-साझा हुआ जाता है, तो क्या बुरा है।

सहसा विक्रम फिर बोला—लेकिन भई, तुम्हे नकद देने पडेगे। मैं पाँच रुपये नक़द लिए बगैर साझा न करूँगा।

अब मुझे औचित्य का ध्यान आ गया। बोला—नहीं दोस्त, यह बुरी बात है। चोरी खुल जायगी, तो शर्मिन्दा होना पड़ेगा, और तुम्हारे साथ मुझ पर भी डाँट पड़ेगी।

आखिर यह तय हुआ कि पुरानी किताबें किसी सेकेण्ड हैंड किताबों की दूकान पर बेच डाली जायँ और उस रुपये से टिकट लिया जाय। किताबो से ज्यादा बेज़रूरत हमारे पास और कोई चीज़ न थी। हम दोनों साथ ही मैट्रिक पास हुए थे और यह देखकर कि जिन्होने डिग्रियाँ लीं, और आँखें फोड़ीं, और घर के रुपये बरबाद किये, वह भी जूतियाँ चटका रहे हैं, हमने वहीं हाल्ट कर दिया। मै स्कूल-मास्टर हो गया और विक्रम मटरगश्त करने लगा। हमारी पुरानी पुस्तकें अब दीमको के सिवा हमारे किसी काम की न थीं। हमसे जितना चाटते बना चाटा, उनका सत्त निकाल लिया, अब चूहे चाटें या दीमक, हमें परवाह न थी। आज हम दोनो ने उन्हे कूड़ेखाने से निकाला और झाड-पोछकर एक बड़ा-सा गट्ठर बाँधा। मैं मास्टर था, किसी बुकसेलर की दूकान पर किताब बेचते हुए झेंपता था। मुझे सभी पहचानते थे, इसलिए यह खिद-मत विक्रम के सुपुर्द हुई और वह आध घटे मे दस रुपये का एक नोट लिये उछलता कूदता आ पहुँचा। मैंने उसे इतना प्रसन्न कभी न देखा था। किताबें चालीस रुपये से कम की न थीं, पर यह दस रुपये उस वक्त हमे जैसे पडे हुए मिले। अब टिकट

में आधा-साझा होगा। दस लाख की रक़म मिलेगी। पाँच लाख मेरे हिस्से मे आयेंगे, पाँच विक्रम के। हम अपने इसी में मगन थे।

मैंने सतोप का भाव दिखाकर कहा—पाँच लाख भी कुछ कम नहीं होते जी।

विक्रम इतना संतोषी न था। बोला—पाँच लाख क्या, हमारे लिए तो इस वक्त पाँच सौ भी बहुत है भाई, मगर ज़िन्दगी का प्रोग्राम तो बदलना पड़ गया। मेरी यात्रावाली स्कीम तो टल नहीं सकती। हाँ, पुस्कालय गायब हो गया।

मैंने आपत्ति की—आखिर यात्रा में तुम दो लाख से ज्यादा तो न खर्च करोगे?

'जी नहीं, उसका बजट है साढे तीन लाख का। सात वर्ष का प्रोग्राम है। पचास हज़ार रुपये साल ही तो हुए?'

'चार हज़ार महीना कहो। मैं समझता हूँ, दो हज़ार मे तुम बड़े आराम से रह सकते हो।'

विक्रम ने गर्म होकर कहा—मैं शान से रहना चाहता हूँ, भिखारियों की तरह नहीं।

'दो हज़ार में भी तुम शान से रह सकते हो।

'जब तक आप अपने हिस्से मे से दो लाख मुझे न देंगे, पुस्तकालय न बन सकेगा।'

'कोई जरूरी नहीं कि तुम्हारा पुस्कालय शहर मे बेजोड़ हो।'

'मैं तो बेजोड़ ही बनवाऊँगा।'

'इसका तुम्हे अख़्तियार है, लेकिन मेरे रुपयों में से तुम्हे कुछ न मिल सकेगा। मेरी जरूरतें देखो। तुम्हारे घर मे काफी जायदाद है। तुम्हारे सिर कोई बोझ नहीं, मेरे सिर तो सारी गृहस्थी का बोझ है। दो बहनो का विवाह है, दो भाइयो की शिक्षा है, नया मकान बनवाना है। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि सब रुपये सीधे बैंक मे जमा कर दूँगा। उनके सूद से काम चलाऊँगा। कुछ ऐसी शर्तें लगा दूँगा, कि मेरे बाद भी कोई इस रकम मे हाथ न लगा सके।

विक्रम ने सहानुभूति के भाव से कहा—हाँ, ऐसी दशा में तुमसे कुछ माँगना अन्याय है। खैर, मैं ही तकलीफ उठा लूँगा, लेकिन बैंक के सूद का दर तो बहुत गिर गया है।

हमने कई बैंकों के सूद का दर देखा, स्थायी कोप का भी, सेविंग बैंक का भी। बेशक दर बहुत कम था। दो ढाई रुपये सैकड़े ब्याज पर जमा करना व्यर्थ है। क्यों न लेन देन का कारोबार शुरू किया जाय। विक्रम भी अभी यात्रा पर न जायगा। दोनों

के साझे मे कोठी चलेगी। जब कुछ धन जमा हो जायगा, तब वह यात्रा करेगा। लेन-देन मे सूद भी अच्छा मिलेगा और अपना रोब दाब भी रहेगा। हाँ, जब तक अच्छी जमानत न हो, किसीको रुपया न देना चाहिए, चाहे असामी कितना ही मातबर क्यों न हो। और ज़मानत पर रुपये दे ही क्यों। जायदाद रेहन लिखाकर रुपये देंगे। फिर तो कोई खटका न रहेगा।

यह मज़िल भी तय हुई। अब यह प्रश्न उठा कि टिकट पर किसका नाम रहे। विक्रम ने अपना नाम रखने के लिए बड़ा आग्रह किया, अगर उसका नाम न रहा, तो वह टिकट ही न लेगा। मैंने कोई उपाय न देखकर मजूर कर लिया, और बिना किसी लिखा-पढी के, जिससे आगे चलकर मुझे बड़ी परेशानी हुई।

(२)

एक-एक करके इन्तजार के दिन कटने लगे। भोर होते ही हमारी आँखें कैलेंडर पर जाती। मेरा मकान विक्रम के मकान से मिला हुआ था। स्कूल जाने के पहले और स्कूल से आने के बाद हम दोनों साथ बैठकर अपने-अपने मसूबे बाँधा करते और इस तरह साँय-साँय कि कोई सुन न ले। हम अपने टिकट खरीदने का रहस्य छिपाये रखना चाहते थे। यह रहस्य जब सत्य का रूप धारण कर लेगा, उस वक्त लोगों को कितना विस्मय होगा! उस दृश्य का नाटकीय आनन्द हम नहीं छोड़ना चाहते थे।

एक दिन बातो बात में विवाह का ज़िक्र आ गया। विक्रम ने दार्शनिक गम्भीरता से कहा—भई, शादी-वादी का जजाल तो मैं नहीं पालना चाहता। व्यर्थ की चिंता और हाय-हाय। पत्नी की नाज़बरदारी मे ही बहुत-से रुपये उड़ जायँगे।

मैंने इसका विरोध किया—हाँ, यह तो ठीक है, लेकिन जब तक जीवन के सुख-दुःख का कोई साथी न हो, जीवन का आनन्द ही क्या। मैं तो विवाहित जीवन से इतना विरक्त नहीं हूँ। हाँ, साथी ऐसा चाहता हूँ, जो अन्त तक साथ रहे और ऐसा साथी पत्नी के सिवा दूसरा नहीं हो सकता।

विक्रम ज़रूरत से ज्यादा तुनुकमिज़ाजी से बोला—खैर, अपना-अपना दृष्टिकोण है। आपको बीबी मुबारक और कुत्तों की तरह उसके पीछे-पीछे चलना और बच्चों को संसार की सबसे बड़ी विभूति और ईश्वर की सबसे बड़ी दया समझना मुबारक। बन्दा तो आज़ाद रहेगा, अपने मज़े से चाहा और जब चाहा उड़ गये और जब चाहा घर

आ गये यह नहीं कि हर वक्त एक चौकीदार आपके सिर पर सवार हो। ज़रा-सी देर हुई घर आने में और फौरन् जवाब तलब हुआ, कहाँ थे अब तक? आप कहीं बाहर निकले और फ़ौरन् सवाल हुआ, कहाँ जाते हो? और जो कहीं दुर्भाग्य से पत्नीजी भी साथ हो गई, तब तो डूब मरने के सिवा आपके लिए कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। ना भैया, मुझे आपसे जरा भी सहानुभूति नहीं। बच्चे को ज़रा-सा जुकाम हुआ और आप बेतहाशा दौड़े चले जा रहे हैं होमियोपैथिक डाक्टर के पास। जरा उम्र खिसकी और लौंडे मनाने लगे कि कब आप प्रस्थान करें और वह गुलछर्रे उड़ायें। मौका मिला तो आपको ज़हर खिला दिया और मशहूर किया कि आपको कालरा हो गया था। मैं इस जंजाल में नहीं पड़ता।

कुन्ती आ गई। विक्रम की छोटी बहन थी, कोई ग्यारह साल की। छठे मे पढती थी और बराबर फेल होती थी। बड़ी चिबिल्ली, बड़ी शोख। इतने धमाके से द्वार खोले कि हम दोनों चौंककर उठ खड़े हुए।

विक्रम ने बिगड़कर कहा—तू बड़ी शैतान है कुन्ती, किसने तुझे बुलाया यहाँ?

कुन्ती ने खुफिया पुलिस की तरह कमरे में नजर दौड़ाकर कहा—तुम लोग हरदम यहाँ किवाड बन्द किये बैठे क्या बातें किया करते हो? जब देखो, यहीं बैठे हो। न कहीं घूमने जाते हो, न तमाशा देखने, कोई जादू-मन्तर जगाते होगे?

विक्रम ने उसकी गरदन पकड़कर हिलाते हुए कहा—हाँ, एक मन्तर जगा रहे हैं, जिसमें तुझे ऐसा दूल्हा मिले, जो रोज गिनकर पांच हण्टर जमाये सड़ासड़!

कुन्ती उसकी पीठ पर बैठकर बोली—मैं ऐसे दूल्हे से ब्याह करूँगी, जो मेरे सामने खड़ा पूँछ हिलाता रहेगा। मैं मिठाई के दोने फेंक दूँगी और वह चाटेगा। ज़रा भी चीं-चपड़ करेगा, तो कान गर्म कर दूँगी। अम्माँ के लाटरी के रुपये मिलेंगे, तो पचास हजार मुझे दे देंगी। बस, चैन करूँगी। मैं दोनो वक्त ठाकुरजी से अम्माँ के लिए प्रार्थना करती हूँ। अम्माँ कहती है, क्वाँरी लड़कियो की दुआ कभी निष्फल नहीं होती। मेरा मन तो कहता है, अम्माँ को ज़रूर रुपये मिलेंगे।

मुझे याद आया, एक बार मैं अपने ननिहाल देहात मे गया था, तो सूखा पड़ा हुआ था। भादो का महीना आ गया था, मगर पानी की बूँद नहीं। तब लोगों ने चन्दा करके गाँव की सब क्वाँरी लड़कियों की दावत की थी। और उसके तीसरे ही दिन मूसलाधार वर्षा हुई थी। अवश्य ही क्वाँरियों की दुआ मे असर होता है।

मैंने विक्रम को अर्थपूर्ण आँखों से देखा, विक्रम ने मुझे। आँखों ही मे हमने सलाह कर ली और निश्चय भी कर लिया। विक्रम ने कुन्ती से कहा—अच्छा, तुझसे एक बात कहें, किसी से कहेगी तो नहीं ? नहीं, तू तो बड़ी अच्छी लड़की है, किसी से न कहेगी! मैं अबकी तुझे खूब पढ़ाऊँगा और पास करा दूँगा। बात यह है कि हम दोनों ने भी लाटरी का टिकट लिया है। हम लोगों के लिए भी ईश्वर से प्रार्थना किया कर, अगर हमें रुपये मिले, तो तेरे लिए अच्छे-अच्छे गहने बनवा देंगे। सच!

कुन्ती को विश्वास न आया। हमने कसमें खाई। वह नखरे करने लगी। जब हमने उसे सिर से पाँव तक सोने और हीरे मढ देने की प्रतिज्ञा की, तब वह हमारे लिए दुआ करने पर राजी हुई।

लेकिन उसके पेट मे मनों मिठाई पच सकती थी, वह जरा-सी बात न पची। सीधे अन्दर भागी और एक क्षण मे सारे घर में यह खबर फैल गई। अब जिसे देखिए, विक्रम को डाँट रहा है, अम्माँ भी, चचा भी, पिता भी, केवल विक्रम की शुभ-कामना से या और किसी भाव से, कौन जाने—बैठे-बैठे तुम्हे हिमाकत ही सूझती है। रुपये लेकर पानी मे फेंक दिये। घर मे इतने आदमियो ने तो टिकट लिया ही था, तुम्हे लेने की क्या ज़रूरत थी, क्या तुम्हें उसमे से कुछ न मिलते ? और तुम भी मास्टर साहब, बिलकुल घोंघा हो। लड़के को अच्छी बातें क्या सिखाओगे, और उसे चौपट किये डालते हो।

विक्रम तो लाड़ला बेटा था। उसे और क्या कहते। कहीं रूठकर एक-दो जून खाना न खाय, तो आफत ही आ जाय। मुझपर सारा गुस्सा उतरा। इसकी सोहबत मे लड़का बिगड़ा जाता है।

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली कहावत मेरी आँखो के सामने थी। मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आई। होली का दिन था। शराब की एक बोतल मँगवाई थी। मेरे मामूँ साहब उन दिनों आये हुए थे। मैंने चुपके से कोठरी मे जाकर ग्लास में एक घूँट शराब ढाली और पी गया। अभी गला जल ही रहा था और आँखें लाल ही थीं, कि मामूँ साहब कोठरी मे आ गये और मुझे मानो सेंध मे गिरफ्तार कर लिया और इतना बिगड़े—इतना बिगड़े कि मेरा कलेजा सूखकर छुहारा हो गया। अम्माँ ने भी डाँटा, पिताजी ने भी डाँटा, मुझे आँसुओं से उनकी क्रोधाग्नि शान्त करनी पड़ी, और दोपहर ही को मामूँ साहब नशे से पागल होकर गाने लगे,

फिर रोये, फिर अम्मां को गालियां दीं, दादा को मना करने पर मारने दौड़े और आखिर में कै करके ज़मीन पर बेसुध पड़े नजर आये।

(३)

विक्रम के पिता बड़े ठाकुर साहब, और ताऊ छोटे ठाकुर साहब दोनों जड़वादी थे, पूजा-पाठ की हँसी उड़ानेवाले, पूरे नास्तिक; मगर अब दोनों बड़े निष्ठावान् और ईश्वर-भक्त हो गये थे। बड़े ठाकुर साहब तो प्रातःकाल गंगा-स्नान करने जाते और मन्दिरों के चक्कर लगाते हुए दोपहर को सारी देह में चन्दन लपेटे घर लौटते। छोटे ठाकुर साहब घर पर ही गर्म पानी से स्नान करते और गठिया से ग्रस्त होने पर भी राम-नाम लिखना शुरू कर देते। धूप निकल आने पर पार्क की ओर निकल जाते और चींटियों को आटा खिलाते। शाम होते ही भाई अपने ठाकुरद्वारे में जा बैठते और आधी रात तक भागवत् की कथा तन्मय होकर सुनते। विक्रम के बड़े भाई प्रकाश को साधु-महात्माओं पर अधिक विश्वास था। वह मठों और साधुओं के अखाड़ों और कुटियों की खाक छानते, और माताजी को तो भोर से आधी रात तक स्नान, पूजा और व्रत के सिवा दूसरा काम ही न था। इस उम्र में भी उन्हें सिंगार का शौक था, पर आजकल पूरी तपस्विनी बनी हुई थीं। लोग नाहक लालसा को बुरा कहते हैं। मैं तो समझता हूँ, हममें जो यह भक्ति और निष्ठा और धर्म-प्रेम है, वह केवल हमारी लालसा, हमारी हवस के कारण। हमारा धर्म हमारे स्वार्थ के बल पर टिका हुआ है। हवस मनुष्य के मन और बुद्धि का इतना संस्कार कर सकती है, यह मेरे लिए बिलकुल नया अनुभव था। हम दोनों भी ज्योतिषियों और पण्डितों से प्रश्न करके अपने को कभी दुखी कर लिया करते थे।

ज्यों-ज्यों लाटरी का दिन समीप आता जाता था, हमारे चित्त की शान्ति उड़ती जाती थी। हमेशा उसी ओर मन टँगा रहता। मुझे आप-ही-आप अकारण संदेह होने लगा, कि कहीं विक्रम मुझे हिस्सा देने से इनकार कर दे, तो मैं क्या करूँ। साफ इनकार कर जाय कि तुमने टिकट में साझा किया ही नहीं। न कोई तहरीर है, न कोई दूसरा सबूत। सब कुछ विक्रम की नीयत पर है। उसकी नीयत ज़रा भी डाँवाडोल हुई और मेरा काम तमाम। कहीं फरियाद नहीं कर सकता, मुँह तक नहीं खोल सकता। अब अगर कुछ कहूँ भी तो कोई लाभ नहीं। अगर उसकी नीयत में फितूर

आ गया है, तब तो वह अभी से इनकार कर देगा ; अगर नहीं आया है, तो इस सन्देह से उसे मर्मान्तिक वेदना होगी। आदमी ऐसा तो नहीं है ; मगर भई, दौलत पाकर ईमान सलामत रखना कठिन है। अभी तो रुपये नहीं मिले हैं। इस वक्त ईमानदार बनने में क्या खर्च होता है। परीक्षा का समय तो तब आयेगा, जब दस लाख रुपये हाथ में होंगे। मैंने अपने अन्त करण को टटोला—अगर टिकट मेरे नाम का होता और मुझे दस लाख मिल जाते, तो क्या मैं आधे रुपये बिना कान-पूँछ हिलाये विक्रम के हवाले कर देता ? कौन कह सकता है, मगर अधिक सम्भव यही था कि मैं हीले हवाले करता, कहता—तुमने मुझे पाँच रुपये उधार दिये थे। उसके दस ले लो, सौ ले लो, और क्या करोगे, मगर नहीं, मुझसे इतनी बद-दियानती न होती।

दूसरे दिन हम दोनों अखबार देख रहे थे कि सहसा विक्रम ने कहा—कहीं हमारा टिकट निकल आये, तो मुझे अफसोस होगा, कि नाहक तुमसे साझा किया !

वह सरल भाव से मुसकिराया, मगर यह थी उसके आत्मा की झलक जिसे वह विनोद की आड़ में छिपाना चाहता था।

मैंने चौंककर कहा—सच ! लेकिन इसी तरह मुझे भी तो अफसोस हो सकता है ?

'लेकिन टिकट तो मेरे नाम का है ?'

'इससे क्या।'

'अच्छा, मान लो, मैं तुम्हारे साझे से इनकार कर जाऊ ?'

मेरा ख़ून सर्द हो गया। आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

'मैं तुम्हें इतना बदनीयत नहीं समझता।'

'मगर है बहुत सम्भव। पाँच लाख ! सोचो, दिमाग़ चकरा जाता है !'

'तो भई, अभी से कुशल है, लिखा-पढी कर लो। यह सशय रहे ही क्यो ?'

विक्रम ने हँसकर कहा—तुम बड़े शक्की हो यार ! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। भला, ऐसा कहीं हो सकता है। पाँच लाख क्या, पाँच करोड़ भी हों, तब भी ईश्वर चाहेगा, तो नीयत में खलल न आने दूँगा।

किन्तु मुझे उसके इन आश्वासनों पर बिलकुल विश्वास न आया। मन में एक सशय पैठ गया।

मैंने कहा—यह तो मैं जानता हूँ, तुम्हारी नीयत कभी विचलित नहीं हो सकती, लेकिन लिखा-पढी कर लेने में क्या हरज है ?

'फजूल है।'

'फजूल ही सही।'

'तो पक्के कागज़ पर लिखना पडेगा। दस लाख की कोर्ट-फीस ही साढे सात हजार हो जायगी। किस भ्रम मे हैं आप !'

मैंने सोचा, बला से, सादी लिखा-पढी के बल पर कोई कानूनी कारवाई न कर सकूँगा ? पर इन्हे लज्जित करने का, इन्हे जलील करने का, इन्हें सबके सामने बेईमान सिद्ध करने का अवसर तो मेरे हाथ आयेगा, और दुनिया मे बदनामी का भय न हो, तो आदमी न-जाने क्या करे। अपमान का भय कानून के भय से किसी तरह कम क्रियाशील नहीं होता। बोला—मुझे सादे कागज़ पर ही विश्वास आ जायगा।

विक्रम ने लापरवाही से कहा—जिस कागज़ का कोई क़ानूनी महत्त्व नहीं, उसे लिखकर क्यों समय नष्ट करें।

मुझे निश्चय हो गया, विक्रम की नीयत मे अभी से फितूर आ गया। नहीं तो सादा कागज लिखने मे क्या बाधा हो सकती है। बिगड़कर कहा—तुम्हारी नीयत तो अभी से खराब हो गई।

उसने निर्लज्जता से कहा—तो क्या तुम यह साबित करना चाहते हो, कि ऐसी दशा में तुम्हारी नीयत न बदलती ?

'मेरी नीयत इतनी कमजोर नहीं है।'

'रहने भी दो। बड़ी नीयतवाले ! अच्छे-अच्छों को देखा है।'

'तुम्हें इसी वक्त लेख-बद्ध होना पड़ेगा। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं रहा।'

'अगर तुम्हे मेरे ऊपर विश्वास नहीं है, तो मैं भी नहीं लिखता।'

'तो क्या तुम समझते हो, तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे ?'

'किसके रुपये और कैसे रुपये।'

'मैं कहे देता हूँ विक्रम, हमारी दोस्ती का अन्त हो जायगा। बल्कि इससे कहीं भयकर परिणाम होगा।'

हिंसा की एक ज्वाला-सी मेरे अन्दर दहक उठी।

सहसा दीवानखाने में झड़प की आवाज सुनकर मेरा ध्यान उधर चला गया। यहाँ दोनों ठाकुर बैठा करते थे। उनमें ऐसी मैत्री थी, जो आदर्श भाइयों मे हो सकती है। राम और लक्ष्मण मे भी इतनी ही रही होगी। झड़प की तो बात ही क्या, मैंने उनमे कभी विवाद होते भी न सुना था। बड़े ठाकुर जो कह दें, वह छोटे ठाकुर के लिए कानून था और छोटे ठाकुर की इच्छा देखकर ही बड़े ठाकुर कोई बात कहते थे। हम दोनों को आश्चर्य हुआ। दीवानखाने के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। दोनों भाई अपनी-अपनी कुरसियों से उठकर खड़े हो गये थे, एक-एक कदम आगे भी बढ आये थे, आँखें लाल, मुख विकृत, त्योरियाँ चढी हुईं, मुट्ठियाँ बँधी हुईं। मालूम होता था, बस हाथा-पाई हुआ ही चाहती है।

छोटे ठाकुर ने हमें देखकर पीछे हटते हुए कहा—सम्मिलित परिवार मे जो कुछ भी और कहीं से भी और किसी के नाम भी आये, वह सबका है, बराबर।

बड़े ठाकुर ने विक्रम को देखकर एक कदम आगे बढाया—

हरगिज नहीं, अगर मैं कोई जुर्म करूँ, तो मैं पकड़ा जाऊँगा, सम्मिलित परिवार नहीं। मुझे सज़ा मिलेगी, सम्मिलित परिवार को नहीं। यह वैयक्तिक प्रश्न है।

'इसका फैसला अदालत से होगा।'

'शौक से अदालत जाइए, अगर मेरे लड़के, मेरी बीवी, या मेरे नाम लाटरी निकली, तो आपका उससे कोई सम्बन्ध न होगा, उसी तरह जैसे आपके लाटरी निकले, तो मुझसे, मेरी बीवी से या मेरे लड़के से उससे कोई सम्बन्ध न होगा।'

'अगर मैं जानता आपकी ऐसी नीयत है, तो मैं भी बीवी-बच्चो के नाम से टिकट ले सकता था।'

'यह आपकी गलती है।'

'इसीलिए कि मुझे विश्वास था, आप भाई हैं।'

'यह जुआ है, आपको समझ लेना चाहिए। जुए की हार-जीत का खानदान पर कोई असर नहीं पड़ सकता, अगर आप कल को दस-पाँच हज़ार रेस में हार आयें, तो खानदान उसका जिम्मेदार न होगा।'

'मगर भाई का हक दबाकर आप सुखी नहीं रह सकते।'

'आप न ब्रह्मा हैं, न ईश्वर, न कोई महात्मा।

विक्रम की माता ने सुना कि दोनों भाइयों में ठनी हुई है और मल्लयुद्ध हुआ चाहता है, तो दौड़ी हुई बाहर आईं और दोनों को समझाने लगी।

छोटे ठाकुर ने बिगड़कर कहा—आप मुझे क्या समझाती हैं, उन्हें समझाइए, जो चार-चार टिकट लिए बैठे हुए हैं। मेरे पास क्या है, एक टिकट। उसका क्या भरोसा। मेरी अपेक्षा जिन्हें रुपये मिलने का चौगुना चांस है, उनकी नीयत बिगड़ जाय, तो लज्जा और दुःख की बात है।

ठकुराइन ने देवर को दिलासा देते हुए कहा—अच्छा, मेरे रुपये में से आधे तुम्हारे। अब तो खुश हो।

बड़े ठाकुर ने बीवी की जबान पकड़ी—क्यों आधे ले लेंगे? मैं एक धेला भी न दूँगा। हम मुरौवत और सुहृदयता से काम लें, फिर भी इन्हें पाँचवें हिस्से से ज़्यादा किसी तरह न मिलेगा। आधे का दावा किस नियम से हो सकता है, न बौद्धिक, न धार्मिक, न नैतिक।

छोटे ठाकुर ने खिसियाकर कहा—सारी दुनियाँ का कानून आप ही तो जानते हैं!

'जानते ही हैं, तीस साल तक वकालत नहीं की है?'

'यह वकालत निकल जायगी, जब सामने कलकत्ते का बैरिस्टर खड़ा कर दूँगा।'

'बैरिस्टर की ऐसी-तैसी, चाहे वह कलकत्ते का हो या लन्दन का।'

'मैं आधा लूँगा, उसी तरह जैसे घर की जायदाद में मेरा आधा है।'

इतने में विक्रम के बड़े भाई साहब सिर और हाथ में पट्टी बाँधे, लँगड़ाते हुए, कपड़ों पर ताज़ा खून के दाग़ लगाये, प्रसन्न-मुख आकर एक आराम-कुरसी पर गिर पड़े। बड़े ठाकुर ने घबड़ाकर पूछा—यह तुम्हारी क्या हालत है जी! ऐं, यह चोट कैसे लगी? किसी से मार-पीट तो नहीं हो गई?

प्रकाश ने कुरसी पर लेटकर एक बार कराहा, फिर मुसकिराकर बोले—जी, कोई बात नहीं, ऐसी कुछ बहुत चोट नहीं लगी।

'कैसे कहते हो चोट नहीं लगी? सारा हाथ और सिर सूज गया है। कपड़े खून से तर। यह मुआमला क्या है? कोई मोटर-दुर्घटना तो नहीं हो गई?'

बहुत मामूली चोट है साहब, दो-चार दिन में अच्छी हो जायगी। घबराने की कोई बात नहीं।'

प्रकाश के मुख पर आशा-पूर्ण, शान्त मुस्कान थी। क्रोध, लज्जा या प्रतिशोध की भावना का नाम भी न था।

बड़े ठाकुर ने और व्यग्र होकर पूछा—लेकिन हुआ क्या, यह क्यों नहीं बतलाते? किसीसे मार-पीट हुई हो, तो थाने में रपट करवा दूँ।

प्रकाश ने हलके मन से कहा—मार-पीट किसीसे नहीं हुई साहब। बात यह है कि मैं ज़रा झक्कड़ बाबा के पास चला गया था। आप तो जानते हैं, वे आदमियों की सूरत से भागते हैं और पत्थर लेकर मारने दौड़ते हैं। जो डरकर भागा, वह गया। जो पत्थर की चोटें खाकर भी उनके पीछे लगा रहा, वह पारस हो गया। वह यही परीक्षा लेते हैं। आज मैं वहाँ पहुँचा, तो एक पचास आदमी जमा थे, कोई मिठाई लिये, कोई बहुमूल्य भेंट लिये, कोई कपड़ों के थान लिये। झक्कड़ बाबा ध्याना-वस्था में बैठे हुए थे। एकाएक उन्होंने आँखें खोलीं और यह जन-समूह देखा, तो कई पत्थर चुनकर उनके पीछे दौड़े। फिर क्या था, भगदड़ मच गई। लोग गिरते-पड़ते भागे। हुर् हो गये। एक भी न टिका। अकेला मैं घण्टेघर की तरह वहीं डटा रहा। बस, उन्होंने पत्थर चला ही तो दिया। पहला निशाना सिर में लगा। उनका निशाना अचूक पड़ता है। खोपड़ी भन्ना गई। खून की धारा बह चली, लेकिन मैं हिला नहीं। फिर बाबाजी ने दूसरा पत्थर फेंका। वह हाथ में लगा। मैं गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब होश आया, तो वहाँ सन्नाटा था। बाबाजी भी गायब हो गये थे। अन्तर्द्धान हो जाया करते हैं। किसे पुकारूँ, किससे सवारी लाने को कहूँ। मारे दर्द के हाथ फटा पड़ता था और सिर से अभी तक खून जारी था। किसी तरह उठा और सीधा डाक्टर के पास गया। उन्होंने देखकर कहा—हड्डी टूट गई है और पट्टी बाँध दी। गर्म पानी से सेकने को कहा है। शाम को फिर आयेंगे, मगर चोट लगी तो लगी, अब लाटरी मेरे नाम आई धरी है। यह निश्चय है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि झक्कड़ बाबा की मार खाकर कोई नामुराद रह गया हो। मैं तो सबसे पहले बाबा को कुटी बनवा दूँगा।

बड़े ठाकुर साहब के मुख पर संतोष की झलक दिखाई दी। फौरन् पलंग बिछ गया। प्रकाश उस पर लेटे। ठकुराइन पंखा झलने लगीं, उनका मुख भी प्रसन्न था। इतनी चोट खाकर दस लाख पा जाना कोई बुरा सौदा न था।

छोटे ठाकुर साहब के पेट में चूहे दौड़ रहे थे। ज्योंही बड़े ठाकुर भोजन करने

गये, और ठकुराइन भी प्रकाश के लिए भोजन का प्रबंध करने गईं, त्योंही छोटे ठाकुर ने प्रकाश से पूछा—क्या बहुत ज़ोर से पत्थर मारते हैं? ज़ोर से तो क्या मारते होंगे।

प्रकाश ने उनका आशय समझकर कहा—अरे साहब, पत्थर नहीं मारते, बमगोले मारते हैं। देव-सा तो डील-डौल है, और बलवान् इतने हैं कि एक घूँसे में शेरों का काम तमाम कर देते हैं। कोई ऐसा-वैसा आदमी हो, तो एक ही पत्थर में टें हो जाय। कितने ही तो मर गये; मगर आज तक झक्कड़ बाबा पर मुक़दमा नहीं चला। और दो-चार पत्थर मारकर ही नहीं रह जाते, जब तक आप गिर न पड़ें और बेहोश न हो जायँ, वह मारते जायँगे। मगर रहस्य यही है आप जितनी ज्यादा चोटें खायँगे, उतने ही अपने उद्देश्य के निकट पहुँचेंगे।

प्रकाश ने ऐसा रोएँ खड़े कर देनेवाला चित्र खींचा कि छोटे ठाकुर साहब थर्रा उठे। पत्थर खाने की हिम्मत न पड़ी।

(४)

आखिर भाग्य के निपटारे का दिन आया—जुलाई की बीसवीं तारीख क़त्ल की रात। हम प्रातःकाल उठे, तो जैसे एक नशा चढ़ा हुआ था, आशा और भय के द्वन्द्व का। दोनों ठाकुरों ने घड़ी रात रहे गंगा-स्नान किया था और मन्दिर में बैठे पूजन कर रहे थे। आज मेरे मन में श्रद्धा जागी। मंदिर में जाकर मन-ही-मन ठाकुरजी की स्तुति करने लगा—अनाथों के नाथ, तुम्हारी कृपा-दृष्टि क्या हमारे ऊपर न होगी? तुम्हें क्या मालूम नहीं, हमने कितनी मुश्किल से टिकट खरीदे हैं। तुम तो अन्तर्यामी हो। संसार में हमसे ज्यादा तुम्हारी दया कौन deserve करता है? विक्रम सूट-बूट पहने मन्दिर के द्वार पर आया, मुझे इशारे से बुलाकर इतना कहा—मैं डाकखाने जाता हूँ, और हवा हो गया। जरा देर मे प्रकाश मिठाई के थाल लिए हुए घर में से निकले और मंदिर के द्वार पर खड़े होकर कंगालों को बाँटने लगे, जिनकी एक भीड़ जमा हो गई थी। और दोनों ठाकुर भगवान् के चरणों में लौ लगाए बैठे हुए थे, सिर झुकाये आखें बन्द, अनुराग में डूबे हुए।

बड़े ठाकुर ने सिर उठाकर पुजारी की ओर देखा और बोले—भगवान् तो बड़े भक्त-वत्सल हैं, क्यों पुजारीजी?

पुजारी ने समर्थन किया—हाँ सरकार, भक्तों की रक्षा के लिए तो भगवान् क्षीरसागर से दौड़े और गज को ग्राह के मुँह से बचाया।

एक क्षण के बाद छोटे ठाकुर साहब ने सिर उठाया और पुजारीजी से बोले—क्यों पुजारीजी, भगवान् तो सर्वशक्तिमान् हैं, अन्तर्यामी, सबके दिल का हाल जानते हैं?

पुजारी ने समर्थन किया—हाँ सरकार, अन्तर्यामी न होते, तो सबके मन की बात कैसे जान जाते? शबरी का प्रेम देखकर स्वय उसकी मनोकामना पूरी की।

पूजन समाप्त हुआ। आरती हुई। दो भाइयों ने आज ऊँचे स्वर से आरती गाई और बड़े ठाकुर ने दो रुपये थाल में डाले। छोटे ठाकुर ने चार रुपये डाले। बड़े ठाकुर ने एक बार कोप-दृष्टि से देखा और मुँह फेर लिया।

सहसा बड़े ठाकुर ने पुजारी से पूछा—तुम्हारा मन क्या कहता है पुजारीजी?

पुजारी बोला—सरकार को फते है।

छोटे ठाकुर ने पूछा—और मेरी?

पुजारी ने उसी मुस्तैदी से कहा—आपकी भी फते है!

बड़े ठाकुर श्रद्धा से डूबे भजन गाते हुए मदिर से निकले—

'प्रभुजी, मैं तो आयो सरन तिहारे, हाँ प्रभुजी।'

एक मिनट में छोटे ठाकुर साहब भी मदिर से गाते हुए निकले—

'अब पति राखो मोरे दयानिधि तोरी गति लखि ना परे।

मैं भी पीछे निकला और जाकर मिठाई बाँटने में प्रकाश बाबू की मदद करना चाहा, पर उन्होंने थाल हटाकर कहा—आप रहने दीजिये, मैं अभी बाँटे डालता हूँ। अब रह ही कितनी गई है।

मैं खिसियाकर डाकखाने की तरफ़ चला कि विक्रम मुस्किराता हुआ साइकिल पर आ पहुँचा। उसे देखते ही सभी जैसे पागल हो गये। दोनों ठाकुर सामने ही खड़े थे। दोनों बाज की तरह झपटे। प्रकाश के थाल में थोड़ी-सी मिठाई बच रही थी। उसने थाल जमीन पर पटका और दौड़ा। और मैंने तो उस उन्माद मे विक्रम को गोद में उठा लिया, मगर कोई उससे कुछ पूछता नहीं, सभी जय-जयकार की हाँक लगा रहे हैं।

बड़े ठाकुर ने आकाश की ओर देखा—बोलो राजा रामचन्द्र की जय!

छोटे ठाकुर ने छलाँग मारी—बोलो हनुमानजी की जय !

प्रकाश तालियाँ बजाता हुआ चीखा—दुहाई झक्कड़ बाबा की !

विक्रम ने और ज़ोर से कहक़हा मारा—फिर अलग खड़ा होकर बोला—जिसका नाम आया है, उससे एक लाख लूँगा। बोलो, है मजूर ?

बड़े ठाकुर ने उसका हाथ पकड़ा—पहले बता तो !

'ना ! यों नहीं बताता।'

छोटे ठाकुर बिगड़े—महज़ बताने के लिए एक लाख ? शाबाश !

प्रकाश ने भी त्योरी चढाई—क्या डाकखाना हमने देखा नहीं है ?

'अच्छा, तो अपना-अपना नाम सुनने के लिए तैयार हो जाओ।'

सभी फौजी अटेंशन की दशा में निश्चल खड़े हो गये।

'होश-हवाश ठीक रखना।'

सभी पूर्ण सचेत हो गये।

'अच्छा तो सुनिए कान खोलकर, इस शहर का सफाया है। इस शहर का ही नहीं, सम्पूर्ण भारत का सफाया है, अमेरिका के हब्शी का नाम आ गया।

बड़े ठाकुर झल्लाये—झूठ-झूठ, बिलकुल झूठ !

छोटे ठाकुर ने पैतरा बदला—कभी नहीं। तीन महीने की तपस्या यों ही रही ! वाह !

प्रकाश ने छाती ठोक्कर कहा—यहाँ सिर फुड़वाये और हाथ तुड़वाये बैठे हैं, दिल्लगी है !

इतने में और पचासों आदमी उधर से रोनी सूरत लिये निकले। ये बेचारे भी डाकखाने से अपनी किस्मत को रोते चले आ रहे थे। मार ले गया, अमेरिका का हब्शी ! अभागा ! पिशाच ! दुष्ट !

अब कैसे किसी को विश्वास न आता। बड़े ठाकुर झल्लाये हुए मन्दिर में गये और पुजारी को डिसमिस कर दिया—इसी लिए तुम्हें इतने दिनों से पाल रखा है। हराम का माल खाते हो औ चैन करते हो ?

छोटे ठाकुर साहब की तो जैसे कमर टूट गई। दो-तीन बार सिर पीटा और वहीं बैठ गये; मगर प्रकाश के क्रोध का पारावार न था। उसने अपना मोटा सोटा लिया और झक्कड़ बाबा की मरम्मत करने चला।

माताजी ने केवल इतना कहा—सभों ने बेईमानी की है। मैं कभी मानने की नहीं। हमारे देवता क्या करें। किसी के हाथ से थोड़े छीन लायेंगे।

रात को किसी ने खाना नहीं खाया। मैं भी उदास बैठा हुआ था कि विक्रम आकर बोला - चलो होटल से कुछ खा आयें। घर में तो चूल्हा नहीं जला।

मैंने पूछा—तुम डाकखाने से आये, तो बहुत प्रसन्न क्यों थे?

उसने कहा—जब मैंने डाकखाने के सामने हज़ारों की भीड़ देखी, तो मुझे अपने लोगों के गधेपन पर हँसी आई। एक शहर में जब इतने आदमी हैं, तो सारे हिन्दुस्तान मे इसके हज़ार गुने से कम न होंगे और दुनिया मे तो लाख गुने से भी ज़्यादा हो जायँगे। और मैंने आशा का जो एक पर्वत-सा खड़ा कर रखा था, वह जैसे एकबारगी इतना छोटा हुआ कि राई बन गया, और मुझे हँसी आई। जैसे कोई दानी पुरुष छटाँक-भर अन्न हाथ में लेकर एक लाख आदमियों को नेवता दे बैठे—और यहाँ हमारे घर का एक-एक आदमी समझ रहा है कि ..

मैं भी हँसा—हाँ, बात तो यथार्थ मे यही है, और हम दोनों लिखा-पढ़ी के लिए लड़े मरते थे, मगर सच बताना, तुम्हारी नीयत खराब हुई थी कि नहीं?

विक्रम मुसकिराकर बोला—अब क्या करोगे पूछकर। पर्दा ढका रहने दो।

जादू

नीला—तुमने उसे क्यों पत्र लिखा ?

मीना—किसको ?

'उसीको ?'

'मैं नहीं समझी।'

'खूब समझती हो! जिस आदमी ने मेरा अपमान किया, गली-गली मेरा नाम बेचता फिरा, उसे तुम मुँह लगाती हो, क्या यह उचित है ?'

'तुम ग़लत कहती हो!'

'तुमने उसे खत नहीं लिखा ?'

'कभी नहीं।'

'तो मेरी ग़लती, क्षमा करो। तुम मेरी बहन न होतीं, तो मैं तुमसे यह सवाल भी न पूछती।'

'मैंने किसीको खत नहीं लिखा।'

'मुझे यह सुनकर खुशी हुई।'

'तुम मुसकिराती क्यों हो ?'

'मैं!'

'जी हाँ, आप!'

'मैं तो ज़रा भी नहीं मुसकिराई।'

'क्या मैं अन्धी हूँ ?'

'यह तो तुम अपने मुँह से ही कहती हो।'

'तुम क्यों मुसकिराईं ?'

'मैं सच कहती हूँ, ज़रा भी नहीं मुसकिराई।'

'मैंने अपनी आँखों देखा।'

'अब मैं कैसे तुम्हें विश्वास दिलाऊँ ।'

'तुम आँखों में धूल झोंकती हो ।'

'अच्छा मुसकिराई ! बस, या जान लोगी ।'

'तुम्हे किसी के ऊपर मुसकिराने का क्या अधिकार है ?'

'तेरे पैरो पड़ती हूँ नीला, मेरा गला छोड़ दे । मैं बिलकुल नहीं मुसकिराई ।'

'मैं ऐसी अनीली नहीं हूँ ।'

'यह मैं जानती हूँ ।'

'तुमने मुझे हमेशा झूठी समझा है ।'

'तू आज किसका मुँह देखकर उठी है ?'

'तुम्हारा ।'

'तू मुझे थोड़ा सखिया क्यों नहीं दे देती ?'

'हाँ, मैं तो हत्यारिन हूँ ही ।'

'मैं तो नहीं कहती ।'

'अब और कैसे कहोगी, क्या ढोल बजाकर । मैं हत्यारिन हूँ, मदमाती हूँ, दीदा दिलेर हूँ , तुम सर्वगुणागरी हो, सती हो, सावित्री हो । अब खुश हुई ।'

'लो कहती हूँ, मैंने उन्हें पत्र लिखा, फिर तुमसे मतलब ? तुम कौन होती हो मुझसे जवाब तलब करनेवाली ?'

'अच्छा किया लिखा, सचमुच मेरी बेवकूफी थी कि मैंने तुमसे पूछा ।'

'हमारी खुशी, हम जिसको चाहेगे खत लिखेंगे, जिससे चाहेगे बोलेंगे, तुम कौन होती हो रोकनेवाली ? तुमसे तो मैं नहीं पूछने जाती , हालांकि रोज़ तुम्हे पुलिन्दों पत्र लिखते देखती हूँ ।'

'जब तुमने शर्म ही भून खाई, तो जो चाहो करो, अख़्तियार है ।'

'और तुम कबसे बड़ी लज्जावती बन गई ? सोचती होगी अम्माँ से कह दूँगी, यहाँ इसकी परवाह नहीं है । मैंने उन्हे पत्र भी लिखा, उनसे पार्क में मिली भी, बात-चीत भी की, जाकर अम्माँ से, दादा से और सारे महल्ले से कह दो ।'

'जो जैसा करेगा, आप भोगेगा, मैं क्यो किसीसे कहने जाऊँ ।'

'ओ हो, बड़ी धैर्यवाली, यह क्यों नहीं कहती, अंगूर खट्टे हैं !'

'जो तुम कहो वही ठीक ।'

'दिल मे जली जाती हो।'

'मेरी बला जले।'

'रो दो ज़रा।'

'तुम खुद रोओ, मेरा अँगूठा रोये।'

'मुझे उन्होंने एक रिस्टवाच भेंट दी है, दिखाऊँ ?'

'मुबारक हो, मेरी आँखों का सनीचर न दूर होगा।'

'मैं कहती हूँ, तुम इतनी जलती क्यो हो ?'

'अगर मैं तुमसे जलती हूँ, तो मेरी आँखें पट्टम हो जायँ।'

'तुम जितनी ही जलोगी, मैं उतनी ही जलाऊँगी।'

'मैं जलूँगी ही नहीं।'

'जल रही हो साफ।'

'कब सन्देश आयेगा ?'

'जल मरो।'

'पहले तेरी भाँवरें देख लूँ।'

'भाँवरों की चाट तुम्हींको रहती है।'

'अच्छा ! तो क्या बिना भाँवरो का ब्याह होगा ?'

'यह ढकोसले तुम्हे मुबारक रहे, मेरे लिए प्रेम काफी है।'

'तो क्या तू सचमुच ...... !'

'मैं किसीसे नहीं डरती।'

'यहाँ तक नौबत पहुँच गई ! और तू कह रही थी, मैंने उसे पत्र नहीं लिखा और कसमें खा रही थी।'

'क्यों अपने दिल का हाल बतलाऊँ ?'

'मैं तो तुमसे पूछती न थी, मगर तू आप-ही-आप बक चली।'

'तुम मुसकिराई क्यों ?'

'इसलिए कि वह शैतान तुम्हारे साथ भी वही दग़ा करेगा, जो उसने मेरे साथ किया और फिर तुम्हारे विषय में भी वैसी ही बातें कहता फिरेगा। और फिर तुम भी मेरी तरह उसके नाम को रोओगी।'

'तुमसे उन्हें प्रेम नहीं था ?'

'मुझसे ! मेरे पैरों पर सिर रखकर रोता था, और कहता था, मैं मर जाऊँगा और ज़हर खा लूँगा।'

'सच कहती हो ?'

'बिलकुल सच।'

'यही तो वह मुझसे भी कहते हैं।'

'सच ?'

'तुम्हारे सिर की कसम !'

'और मैं समझ रही थी, अभी वह दाने बिखेर रहा है।'

'क्या वह सचमुच……'

'पक्का शिकारी है।'

'मीना सिर पर हाथ रखकर चिन्ता मे डूब जाती है।

नया विवाह

(१)

हमारी देह पुरानी है, लेकिन इसमें सदैव नया रक्त दौड़ता रहता है। नये रक्त के प्रवाह पर ही हमारे जीवन का आधार है। पृथ्वी की इस चिरन्तन व्यवस्था में यह नयापन उसके एक-एक अणु में, एक-एक कण में, तार में बसे हुए स्वरों की भाँति, गूँजता रहता है, और यह सौ साल की बुढिया आज भी नवेली दुलहन बनी हुई है।

जबसे लाला डगामल ने नया विवाह किया है, उनका यौवन नये सिरे से जाग उठा है। जब पहली स्त्री जीवित थी तब वे घर में बहुत कम रहते थे। प्रातः से दस-ग्यारह बजे तक तो पूजा-पाठ ही करते रहते थे। फिर भोजन करके दूकान चले जाते। वहाँ से एक बजे रात को लौटते और थके-माँदे सो जाते। यदि लीला कभी कहती, ज़रा और सबेरे आ जाया करो तो बिगड़ जाते और कहते—तुम्हारे लिए क्या दूकान छोड़ दूँ या रोज़गार बन्द कर दूँ। यह वह जमाना नहीं है कि एक लोटा जल चढा-कर लक्ष्मी प्रसन्न कर ली जाय। आज-कल उनकी चौखट पर माथा रगड़ना पड़ता है तब भी उनका मुँह सीधा नहीं होता! लीला बेचारी चुप हो जाती।

अभी छः महीने की बात है। लीला को ज्वर चढा हुआ था। लालाजी दूकान जाने लगे तब उसने डरते-डरते कहा था—देखो मेरा जी अच्छा नहीं है। ज़रा सबेरे आ जाना।

डगामल ने पगड़ी उतारकर खूँटी पर लटका दी और बोले—अगर मेरे बैठे रहने से तुम्हारा जी अच्छा हो जाय तो मैं दूकान न जाऊँगा।

लीला हताश होकर बोली—मैं दूकान जाने को तो नहीं मना करती। केवल ज़रा सबेरे आने को कहती हूँ।

'तो क्या मैं दूकान पर बैठा मौज किया करता हूँ?'

लीला इसका क्या जवाब देती! पति का यह स्नेहहीन व्यवहार उसके लिए कोई

नयी बात न थी। इधर कई साल से उसे इसका कठोर अनुभव हो रहा था कि उसकी घर में क़द्र नहीं है। वह अक्सर इस समस्या पर विचार भी किया करती, पर अपना कोई अपराध वह न पाती। वह पति की सेवा अब पहले से कहीं ज़्यादा करती, उनके कार्य-भार को हलका करने की बराबर चेष्टा करती रहती, बराबर प्रसन्नचित्त रहती, कभी उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती। अगर उसकी जवानी ढल चुकी थी तो इसमें उसका क्या अपराध था? किसकी जवानी सदैव स्थिर रहती है? अगर अब उसका स्वास्थ्य उतना अच्छा न था तो इसमें उसका क्या दोष? उसे बे कसूर क्यों दण्ड दिया जाता है।

उचित तो यह था कि २५ साल का साहचर्य अब एक गहरी मानसिक और आत्मिक अनुरूपता का रूप धारण कर लेता, जो दोष को भी गुण बना लेता है, जो पक्के फल की तरह ज्यादा रसीला, ज़्यादा मीठा, ज्यादा सुन्दर हो जाता है। लेकिन लालाजी का वणिक हृदय हर एक पदार्थ को वाणिज्य की तराज़ू से तौलता था। बूढ़ी गाय जब न दूध दे सकती है, न बच्चे, तब उसके लिए गोशाला ही सबसे अच्छी जगह है। उनके विचार में लीला के लिए इतना ही काफी था कि घर की मालकिन बनी रहे, आराम से खाय और पड़ी रहे। उसे अख्तियार है चाहे जितने ज़ेवर बनवाये, चाहे जितना स्नान व पूजा करे, केवल उनसे दूर रहे। मानव प्रकृति की जटिलता का एक रहस्य यह था कि डगामल जिस आनन्द से लीला को वञ्चित रखना चाहते थे, जिसकी उसके लिए कोई ज़रूरत ही न समझते थे, खुद उसी के लिए सदैव प्रयत्न करते रहते थे। लीला ४० वर्ष की होकर बूढ़ी समझ ली गई थी, किन्तु वे पैंतालीस के होकर अभी जवान ही थे, जवानी के उन्माद और उल्लास से भरे हुए लीला से अब उन्हें एक तरह की अरुचि होती थी और वह दुखिया जब अपनी त्रुटियों का अनुभव करके प्रकृति के निर्दय आघातों से बचने के लिए रंग व रोग़न की आड़ लेती, तब लालाजी उसके बूढ़े नखरों से और भी घृणा करने लगते। वे कहते—वाह री तृष्णा! सात लड़कों की तो माँ हो गई, बाल खिचड़ी हो गये, चेहरा धुले हुए फलालैन की तरह सिकुड़ गया, मगर आपको अभी महावर, सेंदुर, मेंहदी और उबटन की हवस बाकी ही है। औरतों का स्वभाव भी कितना विचित्र है! न जाने क्यों बनाव-सिंगार पर इतना जान देती हैं? पूछो, अब तुम्हे और क्या चाहिए। क्यों नहीं मन को समझा लेतीं कि जवानी विदा हो गई और इन उपादानों से वह वापस नहीं बुलाई

जा सकती ? लेकिन वे खुद जवानी का स्वप्न देखते रहते थे। उनकी जवानी की तृष्णा अभी शान्त न हुई थी। जाड़ों में रसों और पाकों का सेवन करते रहते थे। हफ्ते में दो बार खिजाब लगाते और एक डाक्टर से मंकीग्लैंड के विषय में पत्र-व्यवहार कर रहे थे।

लीला ने उन्हें असमंजस में देखकर कातर स्वर में पूछा—कुछ बतला सकते हो, कै बजे आओगे।

लालाजी ने शान्तभाव से पूछा—तुम्हारा जी आज कैसा है ?

लीला क्या जवाब दे ? अगर कहती है कि बहुत खराब है तो शायद ये महाशय वहीं बैठ जायँ और उसे जली-कटी सुनाकर अपने दिल का बुखार निकालें। अगर कहती है कि अच्छी हूँ तो शायद निश्चिन्त होकर दो बजे तक कहीं खबर लें। इस दुविधा में डरते-डरते बोली—अब तक तो हलकी थी, लेकिन अब कुछ भारी हो रही है। तुम जाओ, दूकान पर लोग तुम्हारी राह देखते होंगे। हाँ, ईश्वर के लिए एक-दो न बजा देना। लड़के सो जाते हैं, मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता, जी घबराता है।

सेठजी ने अपने स्वर में स्नेह की चाशनी देकर कहा—बारह बजे तक आ जाऊँगा ज़रूर !

लीला का मुख धूमिल हो गया। उसने कहा दस बजे तक नहीं आ सकते ?

'साढे ग्यारह से पहले किसी तरह नहीं।'

'नहीं साढे दस।'

'अच्छा ग्यारह बजे।'

लालाजी वादा करके चले गये, लेकिन दस बजे रात को एक मित्र ने मुजरा सुनने के लिए बुला भेजा। इस निमन्त्रण को कैसे इनकार कर देते। जब एक आदमी आपको खातिर से बुलाता है, तब यह कहाँ की भलमनसाहत है कि आप उसका निमन्त्रण अस्वीकार कर दें।

लालाजी मुजरा सुनने चले गये, दो बजे लौटे। चुपके से आकर नौकर को जगाया और अपने कमरे में जाकर लेट रहे। लीला उनकी राह देखती, प्रतिक्षण विकल वेदना का अनुभव करती हुई न-जाने कब सो गई थी।

अन्त को इस बीमारी ने अभागिनी लीला की जान ही लेकर छोड़ा। लालाजी

को उसके मरने का बड़ा दु.ख हुआ। मित्रों ने समवेदना के तार भेजे। एक दैनिक पत्र ने शोक प्रकट करते हुए लीला के मानसिक और धार्मिक सद्गुणों का ख़ूब बढ़ा-कर वर्णन किया। लालाजी ने इन सभी मित्रों को हार्दिक धन्यवाद दिया और लीला के नाम से बालिका-विद्यालय में पांच वज़ीफे प्रदान किये। और मृतक-भोज तो जितने समारोह से किया गया, वह नगर के इतिहास में बहुत दिनों तक याद रहेगा।

लेकिन एक महीना भी न गुजरने पाया था कि लालाजी के मित्रों ने चारा डालना शुरू कर दिया और उसका यह असर हुआ कि छ महीने की विधुरता के तप के बाद उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। आखिर बेचारे क्या करते? जीवन में एक सहचरी की आवश्यकता तो थी ही, और इस उम्र मे तो एक तरह से अनिवार्य हो गई थी।

(२)

जबसे नयी पत्नी आई, लालाजी के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। दूकान से अब उन्हें उतना प्रेम नहीं था। लगातार हफ्तों न जाने से भी उनके कार-बार मे कोई हर्ज नहीं होता था। जीवन के उपभोग की जो शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी, अब वह छीटे पाकर सजीव हो गई थी, सूखा पेड़ हरा हो गया था, उसमे नयी-नयी कोपलें फूटने लगी थीं। मोटर नया आ गया था, कमरे नये फर्नीचर से सजा दिये गये थे, नौकरो की भी सख्या बढ गई थी, रेडियो आ पहुँचा था, और प्रतिदिन नये-नये उपहार आते रहते थे। लालाजी की बूढ़ी जवानी जवानो की जवानी से भी प्रखर हो गयी थी, उसी तरह जैसे बिजली का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश से ज्यादा स्वच्छ और नेत्ररञ्जक होता है। लालाजी को उनके मित्र इस रूपान्तर पर बधाइयाँ देते, तब वे गर्व के साथ कहते—भई, हम तो हमेशा जवान रहे और हमेशा जवान रहेगे। बुढापा यहाँ आये तो उसके मुँह मे कालिख लगाकर गधे पर उलटा सवार कराके शहर से निकाल दें। जवानी और बुढापे को न जाने क्यो लोग अवस्था से सम्बद्ध कर देते हैं। जवानी का उम्र से उतना ही सम्बन्ध है, जितना धर्म का आचार से, रुपये का ईमानदारी से, रूप का शृङ्गार से। आजकल के जवानो को आप जवान कहते हैं? मैं उनकी एक हज़ार जवानियों को अपने एक घटे से भी न बदलूँगा। मालूम होता है उनकी ज़िन्दगी में कोई उत्साह ही नहीं, कोई शौक ही नहीं। जीवन क्या है, गले मे पड़ा हुआ एक ढोल है।

यही शब्द घटा-बढ़ाकर वे आशा के हृदय-पटल पर अंकित करते रहते थे। उससे बराबर सिनेमा, थियेटर और दरिया की सैर के लिए आग्रह करते रहते। लेकिन आशा को न-जाने क्यों इन बातों से ज़रा भी रुचि न थी। वह जाती तो थी, मगर बहुत टाल-टूल करने के बाद। एक दिन लालाजी ने आकर कहा—चलो आज बजरे पर दरिया की सैर करें।

वर्षा के दिन थे, दरिया चढ़ा हुआ था, मेघ मालाएँ अन्तर्राष्ट्रीय सेनाओं की भाँति रंग-बिरंगी वर्दियाँ पहने आकाश में कवायद कर रही थीं। सड़क पर लोग मलार और बारहमासे गाते चलते थे। बागों में झूले पड़ गये थे।

आशा ने बेदिली से कहा--मेरा जी तो नहीं चाहता।

लालाजी ने मृदु प्रेरणा के साथ कहा—तुम्हारा मन कैसा है, जो आमोद-प्रमोद की ओर आकर्षित नहीं होता? चलो, ज़रा दरिया की सैर देखो। सच कहता हूँ, बजरे पर बड़ी बहार रहेगी।

'आप जायँ। मुझे और कई काम करने हैं।'

'काम करने को आदमी हैं। तुम क्यों काम करोगी?'

'महाराज अच्छे सालन नहीं पकाता। आप खाने बैठेंगे तो योंही उठ जायँगे।'

लीला अपने अवकाश का बड़ा भाग लालाजी के लिए तरह-तरह का भोजन पकाने मे ही लगाती थी। उसने किसी से सुन रखा था कि एक विशेष अवस्था के बाद पुरुष के जीवन का सबसे बड़ा सुख रसना का स्वाद ही रह जाता है।

लालाजी की आत्मा खिल उठी। उन्होंने सोचा कि आशा को उनसे कितना प्रेम है कि वह दरिया की सैर को उनको सेवा के लिए छोड़ रही है। एक लीला थी कि मान-न-मान चलने को तैयार रहती थी। पीछा छुड़ाना पड़ता था, खामखाह सिर पर सवार हो जाती थी और सारा मज़ा किरकिरा कर देती थी।

स्नेह-भरे उलहने से बोले—तुम्हारा मन भी विचित्र है। अगर एक दिन सालन फीका ही रहा, तो ऐसा क्या तूफान आ जायगा। तुम तो मुझे बिलकुल निकम्मा बनाये देती हो। अगर तुम न चलोगी तो मैं भी न जाऊँगा।

आशा ने जैसे गले से फन्दा छुड़ाते हुए कहा—आप भी तो मुझे इधर-उधर घुमा-घुमाकर मेरा मिज़ाज़ बिगाड़े देते हैं। यह आदत पड़ जायगी तो घर का धन्धा कौन करेगा?

'मुझे घर के धन्धे की रत्ती-भर भी परवा नहीं—बाल की नोक बराबर भी नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा मिज़ाज़ बिगड़े और तुम इस गृहस्थी की चक्की से दूर रहो। और तुम मुझे बार-बार आप क्यों कहती हो ? मैं चाहता हूँ, तुम मुझे तुम कहो, तू कहो, गालियाँ दो, धौल जमाओ। तुम तो मुझे 'आप' कहकर जैसे देवता के सिंहासन पर बैठा देती हो। मैं अपने घर में देवता नहीं, चचल बालक बनना चाहता हूँ।

आशा ने मुसकिराने की चेष्टा करके कहा—भला मैं आपको 'तुम' कहूँगी। तुम बराबरवालों को कहा जाता है कि बड़ों को!

मुनीम ने एक लाख के घाटे की खबर सुनाई होती तो भी शायद लालाजी को इतना दुःख न होता जितना आशा के इन कठोर शब्दों से हुआ। उनका सारा उत्साह, सारा उल्लास जैसे ठढा पड़ गया। सिर पर बाँकी रखी हुई फूलदार टोपी, गले में पड़ी हुई जोगिये रग की चुनी हुई रेशमी चादर, वह तजेब का बेलदार कुर्त्ता जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे, यह सारा ठाट जैसे उन्हें हास्य-जनक जान पड़ने लगा, जैसे वह सारा नशा किसी मत्र से उतर गया हो।

निराश होकर बोले—तो तुम्हें चलना है या नहीं ?

'मेरा जी नहीं चाहता।'

'तो मैं भी न जाऊँ ?'

'मैं आपको कब मना करती हूँ।'

'फिर 'आप' कहा।'

लीला ने जैसे भीतर से ज़ोर लगाकर कहा—'तुम' और उसका मुखमण्डल लज्जा से आरक्त हो गया।

'हाँ, इसी तरह 'तुम' कहा करो। तो तुम नहीं चल रही हो ? अगर मैं कहूँ तुम्हें चलना पड़ेगा तो ?'

'तब चलूँगी। आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है।'

लालाजी आज्ञा न दे सके। आज्ञा और धर्म जैसे शब्द उनके कानों में चुभने-से लगे। खिसियाये हुए बाहर को चल पड़े। उस वक्त आशा को उन पर दया आ गई। बोली—तो कब तक लौटोगे ?

'मैं नहीं जा रहा हूँ।'

'अच्छा, तो मैं भी चलती हूँ।'

जैसे कोई ज़िद्दी लड़का रोने के बाद अपनी इच्छित वस्तु पाकर उसे पैरों से ठुकरा देता है, उसी तरह लालाजी ने मुँह बनाकर कहा—तुम्हारा जी नहीं चाहता तो न चलो। मैं आग्रह नहीं करता।

'आप···नहीं तुम बुरा मान जाओगे।'

आशा गई लेकिन उमंग से नहीं। जिस मामूली वेष में थी, उसी तरह चल खड़ी हुई। न कोई सजीली साड़ी, जड़ाऊ गहने, न कोई सिंगार, जैसे कोई विधवा हो।

ऐसी ही बातों पर लालाजी मन में झुँझला उठते थे। ब्याह किया था जीवन का आनन्द उठाने के लिए, झिलमिलाते हुए दीपक मे तेल डालकर उसे और चटक करने के लिए। अगर दीपक का प्रकाश तेज न हुआ तो तेल डालने से लाभ? न जाने इसका मन क्यों इतना शुष्क और नीरस है, जैसे कोई ऊसर का पेड़ हो, कितना ही पानी डालो, उसमें हरी पत्तियों के दर्शन न होंगे। जड़ाऊ गहनों से भरी पेटारियाँ खुली हुई हैं, कहाँ-कहाँ से मँगवाये, दिल्ली से, कलकत्ते से फ्रांस से। कैसी-कैसी बहुमूल्य साड़ियाँ रखी हुई हैं। एक नहीं सैकड़ों। पर केवल सन्दूक में कीड़ों का भोजन बनने के लिए। दरिद्र-घर की लड़कियों में यही ऐब होता है। उनकी दृष्टि सदैव सकीर्ण रहती है। न खा सकें, न पहन सकें, न दे सकें। उन्हे तो खजाना भी मिल जाय तो यही सोचती रहेगी कि इसे खर्च कैसे करें।

दरिया की सैर तो हुई, पर विशेष आनन्द न आया।

(३)

कई महीने तक आशा की मनोवृत्तियों को जगाने का असफल प्रयत्न करके लालाजी ने समझ लिया कि इसकी पैदाइश ही मुहर्रमी है। लेकिन फिर भी निराश न हुए। ऐसे व्यापार में एक बड़ी रकम लगाने के बाद वे उससे अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की वणिक् प्रवृत्ति को कैसे त्याग देते? विनोद की नयी-नयी योजनाएँ पैदा की जाती—ग्रामोफोन अगर बिगड़ गया है, गाता नहीं, या साफ आवाज़ नहीं निकलती, तो उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। उसे उठाकर रख देना तो मूर्खता है।

इधर बूढा महराज एकाएक बीमार होकर घर चला गया था और उसकी जगह उसका सत्रह-अठारह साल का जवान लड़का आ गया था—कुछ अजीब गँवार था, बिलकुल झगड़ उजड्ड। कोई बात ही न समझता था। जितने फुलके बनाता

उतनी तरह के। हाँ, एक बात समान होती। सब बीच में मोटे होते, किनारे पतले, दाल कभी तो इतनी पतली जैसे चाय, कभी इतनी गाढ़ी जैसे दही। नमक कभी इतना कम कि बिलकुल फीकी, कभी इतना तेज़ कि नीबू का शाकीन। आशा मुँह-हाथ धोकर चौके में पहुँच जाती और इस ढपोरसख को भोजन पकाना सिखाती। एक दिन उसने कहा—तुम कितने नालायक आदमी हो जुगल। आखिर इतनी उम्र तक तुम घास खोदते रहे या भाड़ झोंकते रहे कि फुलके तक नहीं बना सकते। जुगल आँखों में आँसू भरकर कहता—बहूजी, अभी मेरी उम्र ही क्या है। सत्रहवाँ ही तो पूरा हुआ है।

आशा को उसकी बात पर हँसी आ गई। उसने कहा—तो रोटियाँ पकाना क्या दस-पाँच साल में आता है?

'आप एक महीना सिखा दें बहूजी, फिर देखिए, मैं आपको कैसे फुलके खिलाता हूँ कि जी खुश हो जाय। जिस दिन हमें फुलके बनाने आ जायँगे, मैं आपसे कोई इनाम लूँगा। सालन तो अब मैं कुछ-कुछ बनाने लगा हूँ, क्यों न?'

आशा ने हौसला बढानेवाली मुसकराहट के साथ कहा—सालन नहीं, वह बनाने आता है। अभी कल ही नमक इतना तेज़ था कि खाया न गया। मसाले में कचाहँद आ रही थी।

'मैं जब सालन बना रहा था, तब आप यहाँ कब थीं?'

'अच्छा, तो मैं जब यहाँ बैठी रहूँ तब तुम्हारा सालन बढ़िया पकेगा!'

'आप बैठी रहती हैं तब मेरी अक्ल ठिकाने रहती है।'

आशा को जुगल की इन भोली बातों पर ख़ूब हँसी आ रही थी। हँसी को रोकना चाहती थी, पर वह इस तरह निकल पड़ती थी, जैसे भरी बोतल उड़ेल दी गई हो।

'और मैं नहीं रहती तब?'

'तब तो आपके कमरे के द्वार पर जा बैठती है।'

'वहाँ बैठकर क्या किया करती है?'

'वहाँ बैठकर अपनी तक़दीर को रोती है।'

आशा ने हँसी को रोककर पूछा—क्यों, रोती क्यों है?

'यह न पूछिए, बहूजी, आप इन बातों को नहीं समझेंगी।

आशा ने उसके मुँह की ओर प्रश्न की आँखों से देखा। उसका आशय कुछ तो समझ गई, पर न समझने का बहाना किया।

'तुम्हारे दादा आ जायँगे तब तुम चले जाओगे ?'

'और क्या करूँगा बहूजी। यहाँ कोई काम दिलवा दीजिएगा तो पड़ा रहूँगा। मुझे मोटर चलाना सिखवा दीजिए। आपको खूब सैर कराया करूँगा। नहीं, नहीं बहूजी, आप हट जाइए मैं पतीली उतार लूँगा। ऐसी अच्छी साड़ी है आपकी, कहीं कोई दाग पड़ जाय तो क्या हो ?'

आशा पतीली उतार रही थी। जुगल ने उनके हाथ से सँड़सी ले लेनी चाही।

'दूर रहो। फूहड़ तो तुम हो ही। कहीं पतीली पाँव पर गिरा ली तो महीनों झींकोगे।'

जुगल के मुख पर उदासी छा गई।

आशा ने मुसकराकर पूछा—क्यों, मुँह क्यों लटक गया सरकार का ?

जुगल रुआँसा होकर बोला—आप मुझे डाँट देती हैं बहूजी, तब मेरा दिल टूट जाता है। सरकार कितना ही घुड़कें, मुझे बिलकुल ही दुख नहीं होता। आपकी नज़र कड़ी देखकर मेरा ख़ून सर्द हो जाता है।

आशा ने दिलासा दिया। मैंने तुम्हें डाँटा तो नहीं, केवल यही तो कहा कि कहीं पतीली तुम्हारे पाँव पर गिर पड़े तो क्या हो ?

'हाथ ही तो आपका भी है। कहीं आपके हाथ से ही छूट पड़े तो ?'

लाला डगामल ने रसोई-घर के द्वार पर आकर कहा—आशा, ज़रा यहाँ आना। देखो, तुम्हारे लिए कितने सुन्दर गमले लाया हूँ। तुम्हारे कमरे के सामने रखे जायँगे। तुम यहाँ धुएँ-धक्कड़ में क्यों हलाकान होती हो। इस लड़के से कह दो, जल्दी महाराज को बुलाये। नहीं मैं कोई दूसरा आदमी रख लूँगा। महाराजों की कमी नहीं है। आखिर कब तक कोई रिआयत करे गधे को ज़रा भी तमीज़ नहीं आई। सुनता है जुगल, लिख दे आज अपने बाप को।

चूल्हे पर तवा रखा हुआ था। आशा रोटियाँ बेलने लगी थी। जुगल तवे के लिए रोटियों का इन्तजार कर रहा था। ऐसी हालत मे भला आशा कैसे गमले देखने जाती ?

उसने कहा—जुगल सारी रोटियाँ टेढी-मेढी बेल डालेगा।

लालाजी ने कुछ चिढ़कर कहा—अगर रोटियाँ टेढी-मेढी बेलेगा, तो निकाल दिया जायगा।

आशा अनसुनी करके बोली—दस-पाँच दिन में सीख जायगा। निकालने की क्या ज़रूरत है?

'तुम आकर बतला दो, गमले कहाँ रखे जायँ।'

'कहती तो हूँ, रोटियाँ बेलकर आई जाती हूँ।'

'नहीं, मैं कहता हूँ, तुम रोटियाँ मत बेलो।'

'आप तो खामखाह ज़िद करते हैं।'

'लालाजी सन्नाटे में आ गये। आशा ने कभी इतनी रुखाई से उन्हें जवाब न दिया था। और यह केवल रुखाई न थी। इसमें कटुता भी थी। लज्जित होकर चले गये। उन्हें ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन गमलों को तोड़कर फेंक दें और सारे पौधों को चूल्हे में डाल दें।

जुगल ने सहमे हुए स्वर में कहा—आप चली जायँ बहूजी, सरकार बिगड़ जायँगे।

'बको मत, जल्दी-जल्दी फुलके सेंको, नहीं निकाल दिये जाओगे। और आज मुझसे रुपये लेकर अपने लिए कपड़े बनवा लो। भिखमगों को-सी सूरत बनाये घूमते हो। और बाल क्यों इतने बढ़ा रखे हैं? तुम्हें नाई भी नहीं जुड़ता?'

जुगल ने दूर की बात सोची। बोला—कपड़े बनवा लूँ तो दादा को हिसाब क्या दूँगा?

'अरे पागल, मैं हिसाब में नहीं देने को कहती। मुझसे ले जाना।'

जुगल काहिलपन की हँसी हँसा।

'आप बनवायेंगी तो अच्छे कपड़े लूँगा। खद्दर के मलमल का कुर्त्ता, खद्दर की धोती, रेशमी चादर, अच्छा-सा चप्पल।'

आशा ने मीठी मुसकान से कहा—और अगर अपने दाम से बनवाने पड़े?

'तब कपड़े ही क्यों बनवाऊँगा?'

'बड़े चालाक हो तुम।'

जुगल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया—आदमी अपने घर में सूखी रोटियाँ

खाकर सो रहता है, लेकिन दावत मे तो अच्छे-अच्छे पकवान ही खाता है। वहाँ भी रूखी रोटियाँ मिलें तो वह दावत में जाय ही नहीं।

'यह सब मैं नहीं जानती। एक गाढे का कुर्त्ता वनवा लो और एक टोपी ले लो, हजामत के लिए दो आने पैसे ऊपर से ले लो।'

जुगल ने मान करके कहा—रहने दीजिए। मैं नहीं लेता। अच्छे कपडे पहनकर निकलूँगा तब तो आपकी याद आवेगी। सड़ियल कपड़े पहनकर तो और जी जलेगा।

'तुम बड़े स्वार्थी हो। मुफ्त के कपड़े लोगे और उसके साथ ही बढिया भी।'

'जब यहाँ से जाने लगूँ तब आप मुझे अपना एक चित्र दीजिएगा।'

'मेरा चित्र लेकर क्या करोगे?'

'अपनी कोठरी में लगाऊँगा और नित्य देखा करूँगा। बस यही साड़ी पहनकर खिचवाना जो कल पहनी थो, और मोतियों की माला भी हो। मुझे नंगी-नगी सूरत नहीं अच्छी लगती। आपके पास तो बहुत गहने होंगे। आप पहनती क्यों नहीं?'

'तो तुम्हें गहने वहुत अच्छे लगते हैं?'

'बहुत।'

लालाजी ने फिर आकर जलते हुए मन से कहा—अभी तक तुम्हारी रोटियाँ नहीं पकीं! जुगल, अगर कल से तूने अपने आप अच्छी रोटियाँ न पकाईं, तो मैं तुझे निकाल दूँगा।

आशा ने तुरन्त हाथ-मुँह धोया और बड़े प्रसन्न मन से लालाजी के साथ गमले देखने चली। इस समय उसकी छवि में प्रफुल्लता का रोगन था, बातों में भी जैसे शक्कर घुली हुई थी। लालाजी का सारा खिसियानापन मिट गया।

उसने गमलों को लुब्ध आँखों से देखा। उसने कहा—मैं इनमें से कोई गमला न जाने दूँगी। सब मेरे कमरे के सामने रखवाना, सब! कितने सुन्दर पौधे हैं, वाह! इनके हिन्दी नाम भी मुझे बतला देना।

लालाजी ने छेड़ा—सब गमले लेकर क्या करोगी? दस-पाँच पसन्द कर लो। शेष मैं बाहर रखवा दूँगा।

'जी नहीं। मैं एक भी न छोड़ूँगी। सब यहीं रखे जायँगे।'

'बड़ी लालचिन हो तुम।'

'लालचिन सही। मैं आपको एक भी न दूँगी।'

'दो-चार तो दे दो। इतनी मेहनत से लाया हूँ।'

'जी नहीं, इनमें से एक भी न मिलेगा।'

(४)

दूसरे दिन आशा ने अपने को आभूषणों से खूब सजाया और फीरोज़ी साड़ी पहनकर निकली तब लालाजी की आँखों में ज्योति आ गई। समझे, अवश्य ही अब उनके प्रेम का जादू 'कुछ-कुछ' चल रहा है। नहीं उनके बार-बार के आग्रह करने पर भी, बार-बार याचना करने पर भी, उसने कोई आभूषण न पहना था। कभी-कभी मोतियों का हार गले मे डाल लेती थी, वह भी ऊपरी मन से। आज वह आभूषणों से अलकृत होकर फूली नहीं समाती, इतराई जाती है, मानो कहती हो, देखो, मैं कितनी सुन्दर हूँ!

पहले जो बन्द कली थी, वह आज खिल गई थी।

लालाजी पर घड़ों का नशा चढा हुआ था। वे चाहते थे, उनके मित्र और बन्धु-वर्ग आकर इस सोने की रानी के दर्शनों से अपनी आँखें ठढी करें। देखें कि वह कितनी सुखी, सतुष्ट और प्रसन्न है। जिन विद्रोहियों ने विवाह के समय तरह-तरह की शकाएँ की थीं, वे आँखें खोलकर देखें कि डगामल कितना सुखी है। विश्वास, अनुराग और अनुभव ने क्या चमत्कार किया है!

उन्होंने प्रस्ताव किया—चलो कहीं घूम आयें। बड़ी मजेदार हवा चल रही है।

आशा इस वक्त कैसे जा सकती थी? अभी उसे रसोई में जाना था। वहाँ से कहीं बारह-एक बजे फुर्सत मिलेगी। फिर घर के दूसरे धन्धे सिर पर 'सवार' हो जायँगे। सैर-सपाटे के पीछे क्या घर चौपट कर दे?

सेठजी ने उसका हाथ पकड़ लिया, कहा—नहीं, आज मैं तुम्हें रसोई में न जाने दूँगा।

महाराज के किये कुछ न होगा।'

'तो आज उसकी शामत भी आ जायगी।'

आशा के मुख पर से वह प्रफुल्लता जाती रही। मन भी उदास हो गया। एक सोफा पर लेटकर बोली—आज न-जाने क्यों कलेजे मे मीठा-मीठा दर्द हो रहा है। ऐसा दर्द कभी नहीं होता था।

सेठजी घबरा उठे।

'यह दर्द कब से हो रहा है ?

'हो तो रहा है रात से ही लेकिन अभी कुछ कम हो गया था। अब फिर होने लगा है।'

'रह-रहकर जैसे चुभन हो जाती है।'

सेठजी एक बात सोचकर दिल ही-दिल में फूल उठे। अब वे गोलियाँ रग ला रही हैं। राजवैद्यजी ने कहा भी था कि ज़रा सोच-समझकर इनका सेवन कीजिएगा। क्यों न हों! खानदानी वैद्य हैं। इनका बाप बनारस के महाराज का चिकित्सक था। पुराने और परीक्षित नुस्खे हैं इनके पास! उन्होंने कहा—तो रात से ही यह दर्द हो रहा है ? तुमने मुझसे कहा नहीं। नहीं वैद्यजी से कोई दवा मँगवाता।

'मैंने समझा था आप ही-आप अच्छा हो जायगा, मगर अब बढ रहा है।'

'कहाँ दर्द हो रहा है ? जरा देखूँ। कुछ सूजन तो नहीं है ?'

सेठजी ने आशा के अचल की तरफ हाथ बढाया। आशा ने शर्माकर सिर झुका लिया। उसने कहा—यह तुम्हारी शरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं अपनी जान से मरती हूँ, तुम्हें हँसी सूझती है। जाकर कोई दवा ला दो।

सेठजी अपने पुंसत्व का यह डिप्लोमा पाकर उससे कहीं ज्यादा प्रसन्न हुए, जितना रायबहादुरी पाकर होते। इस विजय का डंका पीटे बिना उन्हे कैसे चैन आ सकता था ? जो लोग उनके विवाह के विषय मे द्वेषमय टिप्पणियाँ कर रहे थे, उन्हें नीचा दिखाने का कितना अच्छा अवसर हाथ आया है और इतनी जल्दी ?

पहले पंडित भोलानाथ के पास गये और भाग्य ठोककर बोले—भाई, मैं तो बड़ी विपत्ति में फँस गया। कल से उनके कलेजे मे दर्द हो रहा है। कुछ बुद्धि काम नहीं करती। कहती हैं, ऐसा दर्द पहले कभी नहीं हुआ था।

भोलानाथ ने कुछ बहुत हमदर्दी न दिखाई।

सेठजी यहाँ से उठकर अपने दूसरे मित्र लाला फागमल के पास पहुँचे और उनसे भी लगभग इन्हीं शब्दों में यह शोक-सवाद कहा।

फागमल बड़ा शोहदा था। मुसकराकर बोला—मुझे तो आपकी शरारत मालूम होती है।

सेठजी की बाछें खिल गईं। उन्होने कहा—मैं अपना दुख सुना रहा हूँ और तुम्हें दिल्लगी सूझती है। ज़रा भी आदमियत तुममे नही है।

'मैं दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। इसमें दिल्लगी की क्या बात है? वे हैं कमसिन, कोमलांगी, आप ठहरे पुराने लठैत, दंगल के पहलवान। बस! अगर यह बात न निकले तो मूँछें मुँड़ा लूँ।'

सेठजी की आँखें जगमगा उठीं। मन में यौवन की भावना प्रबल हो उठी और उसके साथ ही मुख पर भी यौवन की झलक आ गई। छाती जैसे कुछ फैल गई। चलते समय उनके पग कुछ अधिक मज़बूती से जमीन पर पड़ने लगे, और सिर की टोपी भी न-जाने कैसे बाँकी हो गई। आकृति से बाँकेपन की शान बरसने लगी।

(५)

जुगल ने आशा को सिर से पाँव तक जगमगाते देखकर कहा—बस बहूजी, आप इसी तरह पहने-ओढ़े रहा करें। आज मैं आपको चूल्हे के पास न आने दूँगा।

आशा ने नयन-बाण चलाकर कहा—क्यों, आज यह नया हुक्म क्यों? पहले तो तुमने कभी मना नहीं किया।

'आज की बात दूसरी है।'

'ज़रा सुनूँ, क्या बात है।'

'मैं डरता हूँ, आप कहीं नाराज़ न हो जायँ।'

'नहीं नहीं कहो, मैं नाराज न होऊँगी।'

'आज आप बहुत सुन्दर लग रही हैं।'

लाला डंगामल ने असंख्य बार आशा के रूप और यौवन की प्रशंसा की थी; मगर उनकी प्रशंसा में उसे बनावट की गन्ध आती थी। वह शब्द उनके मुख से निकलकर कुछ ऐसे लगते थे, जैसे कोई पंगु दौड़ने की चेष्टा कर रहा हो। जुगल के इन सीधे शब्दों में एक उन्माद था, नशा थी, एक चोट थी! आशा की सारी देह प्रकम्पित हो गई।

'तुम मुझे नजर लगा दोगे जुगल। इस तरह क्यों घूरते हो?'

'जब यहाँ से चला जाऊँगा तब आपको बहुत याद आयेगी।'

'रसोई पकाकर तुम सारे दिन क्या किया करते हो? दिखाई नहीं देते।'

'सरकार रहते हैं, इसी लिए नहीं आता। फिर अब तो मुझे जवाब मिल रहा है। देखिए भगवान् कहाँ ले जाते हैं।'

आशा की मुख-मुद्रा कठोर हो गई। उसने कहा—कौन तुम्हें जवाब देता है?

'सरकार ही तो कहते हैं, तुझे निकाल दूँगा।'

'अपना काम किये जाओ। कोई नहीं निकालेगा। अब तो तुम फुलके भी अच्छे बनाने लगे।'

'सरकार हैं बड़े गुस्सेवर।'

'दो-चार दिन में उनका मिजाज़ ठीक किये देती हूँ।'

'आपके साथ चलते हैं तो आपके बाप-से लगते हैं।'

'तुम बड़े मुँहफुट हो। खबरदार, जबान सँभालकर बातें किया करो।'

किन्तु अप्रसन्नता का यह झीना आवरण उसके मनोरहस्य को न छिपा सका। वह प्रकाश की भाँति उसके अन्दर से निकला पड़ता था।

जुगल ने फिर उसी निर्भीकता से कहा—मेरा मुँह कोई बन्द कर ले। यहाँ तो सभी यही कहते हैं। मेरा ब्याह कोई ५० साल की बुढ़िया से कर दे तो मैं तो घर छोड़कर भाग जाऊँ। या तो ख़ुद ज़हर खा लूँ, या उसे ज़हर देकर मार डालूँ। फाँसी ही तो होगी।

आशा उस कृत्रिम क्रोध को कायम न रख सकी। जुगल ने उसकी हृदय-वीणा के तारों पर मिजराब की ऐसी चोट मारी थी कि उसके बहुत ज़ब्त करने पर भी मन की व्यथा बाहर निकल आई। उसने कहा—भाग्य भी तो कोई वस्तु है।

'ऐसा भाग्य जाय भाड़ में।'

'तुम्हारा ब्याह किसी बुढ़िया से ही करूँगी। देख लेना।'

'तो मैं भी जहर खा लूँगा। देख लीजिएगा।'

'क्यों, बुढ़िया तुम्हे जवान स्त्री से ज्यादा प्यार करेगी, ज्यादा सेवा करेगी। तुम्हें सीधे रास्ते पर रखेगी।'

'यह सब माँ का काम है। बीबी जिस काम के लिए है, उसी काम के लिए है।'

'आखिर बीबी किस काम के लिए है?'

मोटर की आवाज आई। न-जाने कैसे आशा के सिर का अञ्चल खिसककर कधे पर आ गया था। उसने जल्दी से अँचल सिर पर खींचकर कर लिया और यह कहती हुई अपने कमरे की ओर लपकी। लाला भोजन करके चले जायँ तब आना।

शूद्रा

माँ और बेटी एक झोपड़ी में गाँव के उस सिरे पर रहती थीं। बेटी बाग से पत्तियाँ बटोर लाती, माँ भाड़ झोंकती। यही उनकी जीविका थी। सेर-दो-सेर अनाज मिल जाता था, खाकर पड़ रहती थीं। माता विधवा थी, बेटी क्वाँरी, घर मे और कोई आदमी न था। माँ का नाम गगा था, बेटी का गौरा।

गङ्गा को कई साल से यह चिन्ता लगी हुई थी कि कहीं गौरा की सगाई हो जाय, लेकिन कहीं बात पक्की न होती थी। अपने पति के मर जाने के बाद गङ्गा ने कोई दूसरा घर न किया था, न कोई दूसरा धन्धा करती थी, इससे लोगों को सदेह हो गया था कि आखिर इसका गुज़र कैसे होता है? और लोग तो छाती फाड़ कर काम करते हैं, फिर भी पेट-भर अन्न मयस्सर नहीं होता। यह स्त्री कोई धधा नहीं करती, फिर भी माँ-बेटी आराम से रहती हैं, किसीके सामने हाथ नहीं फैलातीं। इसमे कुछ-न-कुछ रहस्य है। धीरे-धीरे यह सन्देह और भी दृढ हो गया, और वह अब तक जीवित था। बिरादरी मे कोई गौरा से सगाई करने पर राज़ी न होता था। शूद्रों की बिरादरी बहुत छोटी होती है। दस-पाँच कोस से अधिक उसका क्षेत्र नहीं होता। इसलिए एक दूसरे के गुण-दोष किसीसे छिपे नहीं रहते, न उन पर परदा ही डाला जा सकता है।

इस भ्रान्ति को शान्त करने के लिए माँ ने बेटी के साथ कई तीर्थ-यात्राएँ कीं। उड़ीसा तक हो आई, लेकिन सन्देह न मिटा। गौरा युवती थी, सुन्दरी थी, पर उसे किसी ने कुएँ पर या खेतो में हँसते-बोलते नहीं देखा। उसकी निगाह कभी ऊपर उठती ही न थी। लेकिन यह बातें भी सदेह को और पुष्ट करती थीं। अवश्य कोई-न-कोई रहस्य है। कोई युवती इतनी सती नहीं हो सकती। कुछ गुप-चुप की बात अवश्य है।

यों ही दिन गुज़रते जाते थे। बुढ़िया दिन-दिन चिन्ता से घुल रही थी। उधर सुन्दरी की मुख-छवि दिन-दिन निखरती जाती थी। कली खिलकर फूल हो रही थी।

(२)

एक दिन एक परदेशी गाँव से होकर निकला। दस-बारह कोस से आ रहा था। नौकरी की खोज में कलकत्ते जा रहा था। रात हो गई। किसी कहार का घर पूछता हुआ गंगा के घर आया। गङ्गा ने उसका ख़ूब आदर-सत्कार किया, उसके लिए गेहूँ का आटा लाई, घर से बरतन निकालकर दिये। कहार ने पकाया, खाया, लेटा, बातें होने लगीं। सगाई की चर्चा छिड़ गई। कहार जवान था, गौरा पर निगाह पड़ी, उसका रंग-ढंग देखा, उसकी सलज्ज छवि आँखों में खुब गई। सगाई करने पर राज़ी हो गया। लौटकर घर चला गया, दो-चार गहने अपनी बहन के यहाँ से लाया; गाँव के बजाज से कपड़े लिए और दो-चार भाई-बन्दों के साथ सगाई करने आ पहुँचा। सगाई हो गई, यहीं रहने लगा। गङ्गा बेटी और दामाद को आँखों से दूर न कर सकती थीं।

किन्तु दस ही पाँच दिनों में मँगरू के कानों में इधर-उधर की बातें पड़ने लगीं, बिरादरी ही के नहीं, अन्य जातिवाले भी उसके कान भरने लगे। ये बातें सुन-सुनकर मँगरू पछताता था कि नाहक यहाँ फँसा। पर गौरा को छोड़ने का खयाल करके उसका दिल काँप उठता था।

एक महीने के बाद मँगरू अपनी बहन के गहने लौटाने गया। खाना खाने के समय उसका बहनोई उसके साथ भोजन करने बैठा। मँगरू को कुछ संदेह हुआ, बहनोई से बोला तुम क्यों नहीं आते?

बहनोई ने कहा— तुम खा लो, मैं फिर खा लूँगा।

मँगरू—बात क्या है? तुम खाने क्यों नहीं उठते?

बहनोई—जब तक पचाइत न होगी, मैं तुम्हारे साथ कैसे खा सकता हूँ। तुम्हारे लिए बिरादरी तो न छोड़ दूँगा। किसीसे पूछा न गूछा जाकर एक हरजाई से सगाई कर ली।

मँगरू चौके पर से उठ आया, मिर्ज़ई पहनी और ससुराल चला आया। बहन खड़ी रोती रह गई।

उसी रात को वह किसी से कुछ कहे-सुने बगैर, गौरा को छोड़कर कहीं चला गया। गौरा नींद में मग्न थी। उसे क्या ख़बर थी कि वह रत्न जो मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, मुझे सदा के लिए छोड़े चला जा रहा है।

(३)

कई साल बीत गये। मँगरू का कुछ पता न चला। कोई पत्र तक न आया, पर गौरा बहुत प्रसन्न थी। वह माँग में सेंदुर डालती, रंग-बिरंग के कपड़े पहनती और अधरों पर मिस्सी के धड़े जमाती। मँगरू भजनों की एक पुरानी किताब छोड़ गया था। उसे कभी-कभी पढ़ती और गाती। मँगरू ने उसे हिन्दी सिखा दी थी। टटोल-टटोलकर भजन पढ़ लेती थी।

पहले वह अकेली बैठी रहती थी। गाँव की और स्त्रियों के साथ बोलते चालते उसे शर्म आती थी। उसके पास वह वस्तु न थी, जिस पर दूसरी स्त्रियाँ गर्व करती थीं। सभी अपने-अपने पति की चरचा करतीं। गौरा के पति कहाँ था ? वह किसकी बातें करती ? अब उसके भी पति था। अब वह अन्य स्त्रियों के साथ इस विषय पर बातचीत करने की अधिकारिणी थी। वह भी मँगरू की चर्चा करती, मँगरू कितना स्नेहशील है, कितना सज्जन, कितना वीर! पति-चर्चा से उसे कभी तृप्ति ही न होती थी।

स्त्रियाँ पूछतीं— मँगरू तुम्हे छोड़कर क्यों चले गये ?

गौरा कहती—क्या करते ! मर्द कभी ससुराल में रहता है, देश-परदेश में निकलकर चार पैसे कमाना ही तो मर्दों का काम है, नहीं तो मानमरजाद का निर्वाह कैसे हो ?

जब कोई पूछता, चिट्ठी-पत्री क्यों नहीं भेजते ? तो हँसकर कहती—अपना पता ठिकाना बताते डरते हैं। जानते हैं न कि गौरा आकर सिर पर सवार हो जायगी। सच कहती हूँ, उनका पता-ठिकाना मालूम हो जाय तो यहाँ मुझसे एक दिन भी न रहा जाय। वह बहुत अच्छा करते हैं कि मेरे पास- चिट्ठी-पत्री नहीं भेजते। बेचारे परदेश मे कहाँ पर गिरस्ती सँभालते फिरेंगे।

एक दिन किसी सहेली ने कहा—हम न मानेंगे, तुझसे ज़रूर मँगरू से झगड़ा हो गया, नहीं तो बिना कुछ कहे-सुने क्यों चले जाते।

गौरा ने हँसकर कहा—बहन, अपने देवता से भी कोई झगड़ा करता है। वह मेरे मालिक हैं, भला मैं उनसे झगड़ा करूँगी ? जिस दिन झगड़े की नौबत आयेगी, कहीं डूब मरूँगी। मुझसे कहके जाने पाते ? मैं उनके पैरों से लिपट न जाती ?

(४)

एक दिन कलकत्ते से एक आदमी आकर गंगा के घर ठहरा। पास ही के किसी गाँव में अपना घर बताया। कलकत्ते में वह मँगरू के पड़ोस ही में रहता था। मँगरू ने उससे गौरा को अपने साथ लाने को कहा था। दो साड़ियाँ और राह-खर्च के लिए रुपए भी भेजे थे। गौरा फूली न समाई। बूढ़े ब्राह्मण के साथ चलने को तैयार हो गई। चलते वक्त वह गाँव की सब औरतों से गले मिली। गंगा उसे स्टेशन तक पहुँचाने गई। सब कहते थे, विचारी लड़की के भाग जाग गये, नहीं तो यहाँ कुढ़-कुढ़कर मर जाती।

रास्ते-भर गौरा सोचती जाती थी—न-जाने वह कैसे हो गये होंगे। अब तो मूछें अच्छी तरह निकल आई होंगी। परदेश में आदमी सुख से रहता है। देह भर आई होगी। बाबू साहब हो गये होंगे। मैं पहले दो-तीन दिन उनसे बोलूँगी ही नहीं। फिर पूछूँगी तुम मुझे छोड़कर क्यों चले गये? अगर किसीने मेरे बारे में कुछ बुरा-भला कहा ही था, तो तुमने उसका विश्वास क्यों कर लिया? तुम अपनी आँखों से न देखकर दूसरों के कहने पर क्यों गये? मैं भली हूँ या बुरी हूँ, हूँ तो तुम्हारी, तुमने मुझे इतने दिनों रुलाया क्यों? तुम्हारे बारे में अगर इसी तरह कोई मुझसे कहता तो क्या मैं तुमको छोड़ देती? जब तुमने मेरी बाँह पकड़ ली तो तुम मेरे हो गये। फिर तुममे लाख ऐब हों मेरी बला से, चाहे तुम तुर्क ही क्यों न हो जाओ, मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती, तुम क्यों मुझे छोड़कर भागे! क्या समझते थे भागना सहज है? आखिर झक मारकर बुलाया कि नहीं? कैसे न बुलाते? मैंने तो तुम्हारे ऊपर दया की कि चली आई, नहीं कह देती कि मैं ऐसे निर्दयी के पास नहीं जाती, तो तुम आप दौड़े आते। तप करने से तो देवता भी मिल जाते हैं, आकर सामने खड़े हो जाते हैं, तुम कैसे न आते! वह बार-बार उद्विग्न हो-होकर बूढ़े ब्राह्मण से पूछती, अब कितनी दूर है? धरती के ओर पर रहते हैं क्या? और भी कितनी ही बातें वह पूछना चाहती थी, लेकिन सकोच-वश न पूछ सकती थी। मन-ही-मन अनुमान करके अपने को सतुष्ट कर लेती थी। उनका मकान बड़ा-सा होगा, शहर मे लोग पक्के घरों मे रहते हैं। जब उनका साहब इतना मानता है तो नौकर भी होगा। मैं नौकर को भगा दूँगी। मैं दिन-भर पड़े-पड़े क्या किया करूँगी?

बीच-बीच में उसे घर की याद भी आ जाती थी! बिचारी अम्माँ रोती होंगी।

अब उन्हें घर का सारा काम आप ही करना पड़ेगा। न-जाने बकरियों को चराने ले जाती हैं या नहीं। बिचारी दिन-भर मे-में करती होंगी। मैं अपनी बकरियों के लिए महीने-महीने रुपए भेजूँगी। जब कलकत्ते से लौटूँगी तब सबके लिए साड़ियाँ लाऊँगी। तब मैं इस तरह थोड़े ही लौटूँगी। मेरे साथ बहुत-सा असबाब होगा। सबके लिए कोई न-कोई सौगात लाऊँगी। तब तक तो बहुत सी बकरियाँ हो जायँगी।

यही सुख-स्वप्न देखते देखते गौरा ने सारा रास्ता काट दिया। पगली क्या जानती थी कि मेरे मन कुछ और है, कर्त्ता के मन कुछ और। क्या जानती थी कि बूढ़े ब्राह्मणों के भेष में भी पिशाच होते हैं। मन की मिठाई खाने मे मगन थी।

(५)

तीसरे दिन गाड़ी कलकत्ते पहुँची। गौरा की छाती धड़-धड़ करने लगी। वह यहीं कहीं खड़े होंगे। अब आते ही होंगे। यह सोचकर उसने घूँघट निकाल लिया और सँभल बैठी। मगर मँगरू वहाँ न दिखाई दिया। बूढ़ा ब्राह्मण बोला—मँगरू तो यहाँ नहीं दिखाई देता, मैं चारों ओर छान आया। शायद किसी काम में लग गया होगा, आने की छुट्टी न मिली होगी, मालूम भी तो न था कि हम लोग किस गाड़ी से आ रहे हैं। उनकी राह क्यों देखें, चलो, डेरे पर चलें।

दोनों गाड़ी पर बैठकर चले। गौरा कभी ताँगे पर न सवार हुई थी। उसे गर्व हो रहा था। कि कितने ही बाबू लोग पैदल जा रहे हैं, मैं ताँगे पर बैठी हूँ।

एक क्षण में गाड़ी मँगरू के डेरे पर पहुँच गई। एक विशाल भवन था, अहाता साफ-सुथरा, सायबान मे फूलों के गमले रखे हुए थे। ऊपर चढने लगी। विस्मय, आनन्द और आशा से उसे अपनी सुधि ही न थी। सीढियों पर चढ़ते-चढते पैर दुखने लगे, यह सारा महल उनका है! केराया बहुत देना पड़ता होगा। रुपये को तो वह कुछ समझते ही नहीं। उसका हृदय धड़क रहा था कि कहीं मँगरू ऊपर से उतरते आ न रहे हों। सीढ़ी पर भेंट हो गई तो मैं क्या करूँगी। भगवान् करे वह पड़े सोते हों, तब मैं जगाऊँ और वह मुझे देखते ही हड़बड़ाकर उठ बैठें। आखिर सीढियों का अन्त हुआ। ऊपर एक कमरे मे गौरा को ले जाकर ब्राह्मण देवता ने बिठा दिया। यही मँगरू का डेरा था। मगर मँगरू यहाँ भी नदारद! कोठरी में केवल एक खाट पड़ी हुई थी। एक किनारे दो-चार बरतन रखे हुए थे। यही उनकी कोठरी है! तो

मकान किसी दूसरे का है, उन्होंने यह कोठरी केराये पर ली होगी। देखती हूँ चूल्हा ठंढा पड़ा हुआ है, मालूम होता है रात को बाज़ार में पूरियाँ खाकर सो रहे होंगे। यही उनके सोने की खाट है। एक किनारे घड़ा रखा हुआ था। गौरा का मारे प्यास के तालू सूख रहा था। घड़े से पानी उँड़ेलकर पिया। एक किनारे एक झाड़ू रखा हुआ था। गौरा रास्ते की थकी थी, पर प्रेमोल्लास में थकन कहाँ? उसने कोठरी में झाड़ू लगाया, बरतनों को धो-धोकर एक जगह रखा। कोठरी की एक-एक वस्तु यहाँ तक कि उसकी फर्श और दीवारों में उसे आत्मीयता की झलक दिखाई देती थी। उस घर में भी, जहाँ उसने अपने जीवन के २५ वर्ष काटे थे, उसे अधिकार का ऐसा गौरव-युक्त आनन्द न प्राप्त हुआ था।

मगर उस कोठरी में बैठे बैठे उसे सन्ध्या हो गई और मँगरू का कहीं पता नहीं। अब छुट्टी मिली होगी। साँझ को सब जगह छुट्टी होती है। अब वह आ रहे होंगे। मगर बूढ़े बाबा ने उनसे कह तो दिया ही होगा, क्या वह अपने साहब से थोड़ी देर की छुट्टी न ले सकते थे? कोई बात होगी, तभी तो नहीं आये।

अँधेरा हो गया। कोठरी मे दीपक न था। गौरा द्वार पर खड़ी पति की बाट देख रही थी। ज़ीने पर बहुत-से आदमियों के चढ़ने-उतरने की आहट मिलती थी। बार-बार गौरा को मालूम होता था कि वह आ रहे हैं, पर इधर कोई न आता था।

९ बजे बूढ़े बाबा आये। गौरा ने समझा मँगरू है। झपटकर कोठरी के बाहर निकल आई। देखा तो ब्राह्मण! बोली—वह कहाँ रह गये?

बूढ़ा—उनकी तो यहाँ से बदली हो गई। दफ्तर में गया था तो मालूम हुआ कि वह कल अपने साहब के साथ यहाँ से कोई आठ दिन की राह पर चले गये। उन्होंने साहब से बहुत हाथ-पैर जोड़े कि मुझे १० दिन की मुहलत दे दीजिए, लेकिन साहब ने एक न मानी। मँगरू यहाँ लोगों से कह गये हैं कि घर के लोग आयें तो मेरे पास भेज देना। अपना पता दे गये हैं। कल मैं तुम्हें यहाँ से जहाज़ पर बैठा दूँगा। उस जहाज़ पर हमारे देश के और भी बहुत-से आदमी होंगे, इसलिए मार्ग में कोई कष्ट न होगा।

गौरा ने पूछा—कै दिन में जहाज़ पहुँचेगा?

बूढ़ा—आठ-दस दिन से कम न लगेंगे, मगर घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हें किसी बात की तकलीफ न होगी।

(६)

अब तक गौरा को अपने गाँव लौटने की आशा थी। कभी-न-कभी वह अपने पति को वहाँ अवश्य खींच ले जायगी। लेकिन जहाज़ पर बैठकर उसे ऐसा मालूम हुआ कि अब फिर माता को न देखूँगी, फिर गाँव के दर्शन न होंगे, देश से सदा के लिऐ नाता टूट रहा है। वह देर तक घाट पर खड़ी रोती रही, जहाज और समुद्र देखकर उसे भय हो रहा था। हृदय दहला जाता था।

शाम को जहाज़ खुला। उस समय गौरा का हृदय एक अलक्ष्य भय से चचल हो उठा। थोड़ी देर के लिए नैराश्य ने उस पर अपना आतङ्क जमा लिया। न-जाने किस देश जा रही हूँ, उनसे वहाँ भेंट होगी या नहीं। उन्हे कहाँ खोजती फिरूँगी, कोई पता-ठिकाना भी तो नहीं मालूम। बार-बार पछताती थी कि एक दिन पहिले क्यों न चली आई। कलकत्ते में भेंट हो जाती तो मैं उन्हे वहाँ कभी न जाने देती।

जहाज पर और भी कितने ही मुसाफिर थे, कुछ स्त्रियाँ भी थीं। उनमें बराबर गाली-गलौज होती रहती थी, इसलिए गौरा को उनसे बातें करने की इच्छा न होती थी। केवल एक स्त्री उदास दिखाई देती थी। रग-ढग से वह किसी भले घर की स्त्री मालूम होती थी। गौरा ने उससे पूछा—तुम कहाँ जाती हो बहन ?

उस स्त्री की बड़ी-बड़ी आँखें सजल हो गई। बोली, कहाँ बताऊँ बहिन, कहाँ जा रही हूँ। जहाँ भाग्य लिये जाता है, वहीं जा रही हूँ। तुम कहाँ जाती हो ?

गौरा—मैं तो अपने मालिक के पास जा रही हूँ। जहाँ यह जहाज़ रुकेगा, वहीं वह नौकर हैं। मैं कल आ जाती तो उनसे कलकत्ते मे भेंट हो जाती। आने मे देर हो गई। क्या जानती थी कि वह इतनी दूर चले जायेंगे, नहीं क्यों देर करती।

स्त्री—अरे बहन, कहीं तुम्हें भी तो कोई बहकाकर नहीं लाया है ? तुम घर से किसके साथ आई हो ?

गौरा—मेरे मालिक ने तो कलकत्ता से आदमी भेजकर मुझे बुलाया था।

स्त्री—वह आदमी तुम्हारा जान-पहचान का था ?

गौरा—नहीं, उसी तरफ का एक बूढा ब्राह्मण था।

स्त्री—वह लम्बा-सा, दुबला-पतला लकलक बुड्ढा, जिसकी एक आँख में फूली पड़ी हुई है ?

गौरा—हाँ, हाँ वही, क्या तुम उसे जानती हो ?

स्त्री—उसी दुष्ट ने तो मेरा सर्वनाश किया है। ईश्वर करे, उसकी सातों पुश्तें नरक भोगें, उसका निर्वंश हो जाय, कोई पानी देनेवाला न रहे, कोढी होकर मरे। मैं अपना वृत्तान्त सुनाऊँ तो तुम समझोगी झूठी है। किसी को विश्वास न आयेगा। क्या कहूँ, बस यही समझ लो कि इसके कारन मैं न घर की रह गई, न घाट की। किसीको मुँह नहीं दिखा सकती। मगर जान तो बड़ी प्यारी होती है। मिरिच के देश जा रही हूँ कि वहाँ मेहनत मजूरी करके जीवन के दिन काटूँ।

गौरा के प्राण नहों मे समा गये। मालूम हुआ जहाज़ अथाह जल में डूबा जा रहा है। समझ गई कि बूढे ब्राह्मण ने दया की। अपने गाँव में सुना करती थी कि गरीब लोग मिरिच में भरती होने के लिए जाया करते हैं। मगर जो वहाँ जाता है, फिर नहीं लौटता। हा भगवान्, तुमने मुझे किस पाप का यह दण्ड दिया ? बोली—यह सब क्यों लोगों को इस तरह छलकर मिरिच भेजते हैं ?

स्त्री—रुपये के लोभ से, और किस लिए। सुनती हूँ आदमी पीछे इन सभों को कुछ रुपये मिलते हैं।

गौरा— तो बहन वहाँ हमें क्या करना पड़ेगा ?

स्त्री—मजूरी।

गौरा सोचने लगी अब क्या करूँ। वह आशा-नौका, जिस पर बैठी हुई वह चली जा रही थी, टूट गई थी, और अब समुद्र की लहरों के सिवा उसकी रक्षा करनेवाला कोई न था। जिस आधार पर उसने अपना जीवन-भवन बनाया था, वह जलमग्न हो गया। अब उसके लिए जल के सिवा और कहाँ आश्रय है। उसको अपनी माता की, अपने घर की, अपने गाँव की सहेलियों की याद आई और ऐसी घोर मर्म-वेदना होने लगी, मानो कोई सर्प अन्तस्तल में बैठा हुआ बार-बार डस रहा हो। भगवान्! अगर मुझे यही यातना देनी थी, तो तुमने मुझे जन्म ही क्यों दिया था। तुम्हें दुखिया पर दया नहीं आती! जो पिसे हुए हैं, उन्हीं को पीसते हो! करुण स्वर से बोली—तो अब क्या करना होगा बहन ?

स्त्री—यह तो वहाँ पहुँचकर मालूम होगा। अगर मजूरी ही करनी पड़े तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो मैंने निश्चय कर लिया है कि या तो उसी के प्राण ले लूँगी या अपने ही प्राण दे दूँगी!

यह कहते-कहते उसे अपना वृत्तान्त सुनाने को वह उत्कंठा हुई, जो दुखियों को हुआ करती है। बोली--मैं बड़े घर की बेटी और उससे भी बड़े घर की बहू हूँ पर अभागिनी! विवाह के तीसरे ही साल पतिदेव का देहान्त हो गया। चित्त की कुछ ऐसी दशा हो गई कि नित्य मालूम होता, वह मुझे बुला रहे हैं। पहले तो आँख झपकते ही उनकी मूर्ति सामने आ जाती थी, लेकिन फिर तो यह दशा हो गई कि जाग्रत दशा मे भी रह रहकर उनके दर्शन होने लगे। बस यही जान पड़ता कि वह साक्षात् खड़े बुला रहे हैं। किसी से शर्म के मारे कहती न थी, पर मन में यह शङ्का होती थी कि जब उनका देहावसान हो गया है तो वह मुझे दिखाई कैसे देते हैं? मैं इसे भ्रान्ति समझकर चित्त को शान्त न कर सकती थी। मन कहता था जो वस्तु प्रत्यक्ष दिखाई देती है, वह मिल क्यों नहीं सकती। केवल वह ज्ञान चाहिए। साधु-महात्माओं के सिवा ज्ञान और कौन दे सकता है? मेरा तो अब भी विश्वास है कि अभी ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनसे हम मरे हुए प्राणियों से बात-चीत कर सकते हैं, उनको स्थूल रूप में देख सकते हैं। महात्माओं की खोज मे रहने लगी। मेरे यहाँ अकसर साधु-सन्त आते थे, उनसे एकान्त में इस विषय में बातें किया करती थी, पर वे लोग सदुपदेश देकर मुझे टाल देते थे। मुझे सदुपदेशों की ज़रूरत न थी। मैं वैधव्य-धर्म खूब जानती थी। मैं तो वह ज्ञान चाहती थी जो जीवन और मरण के बीच का परदा उठा दे। तीन साल तक मैं इसी खेल में लगी रही। दो महीने होते हैं, वही बूढ़ा ब्राह्मण सन्यासी बना हुआ मेरे यहाँ जा पहुँचा। मैंने इससे भी वही भिक्षा माँगी। इस धूर्त ने कुछ ऐसा मायाजाल फैलाया कि मैं आँखें रहते हुए भी फँस गई। अब सोचती हूँ तो अपने ऊपर आश्चर्य होता है कि मुझे उसकी बातों पर इतना विश्वास क्यों हुआ। मैं पति-दर्शन के लिए सब कुछ झेलने को, सब कुछ करने को तैयार थी, इसने मुझे रात को अपने पास बुलाया। मैं घरवालों से पड़ोसिन के घर जाने का बहाना करके इसके पास गई। एक पीपल से इसकी धूई जल रही थी। उस विमल चाँदनी मे यह धूर्त जटाधारी ज्ञान और योग का देवता-सा मालूम होता था। मैं आकर धूई के पास खड़ी हो गई। उस समय यदि बाबाजी मुझे आग में कूद पड़ने की आज्ञा देते तो मैं तुरन्त कूद पड़ती। इसने मुझे बड़े प्रेम से बैठाया और मेरे सिर पर हाथ रखकर न-जाने क्या कर दिया कि मैं बेसुध हो गई; फिर मुझे कुछ नहीं मालूम कि मैं कहाँ गई, क्या हुआ। जब मुझे होश आया तो मैं रेल पर सवार थी।

जी में आया चिल्लाऊँ; पर यह सोचकर कि अब अगर गाड़ी रुक भी गई, और मैं उतर भी पड़ी तो घर में घुसने न पाऊँगी, मैं चुपचाप बैठी रह गई। मैं परमात्मा की दृष्टि में निर्दोष थी, पर संसार की दृष्टि में तो कलंकित हो चुकी थी। रात को किसी युवती का घर से निकल जाना कलंकित करने के लिए काफी था। जब मुझे मालूम हो गया कि सब मुझे मिर्च के टापू में भेज रहे हैं तो मैंने ज़रा भी आपत्ति नहीं की। मेरे लिए अब सारा संसार एक-सा है। जिसका संसार में कोई न हो, उसके लिए देश-परदेश दोनों बराबर हैं। हाँ, यह पक्का निश्चय कर चुकी हूँ कि मरते दम तक अपने सत की रक्षा करूँगी। विधि के हाथ में मृत्यु से बढ़कर कोई यातना नहीं। विधवा के लिए मृत्यु का क्या भय। उसका तो जीना और मरना दोनों बराबर है। बल्कि मर जाने से जीवन की विपत्तियों का तो अन्त हो जायगा।

गौरा ने सोचा, इस स्त्री में कितना धैर्य और साहस है। फिर मैं क्यों इतनी कातर और निराश हो रही हूँ। जब जीवन की अभिलाषाओं का अन्त हो गया तो जीवन के अन्त का क्या डर। बोली—बहन, हम और तुम एक ही जगह रहेंगी। मुझे तो अब तुम्हारा ही भरोसा है।

स्त्री ने कहा—भगवान का भरोसा रखो और मरने से मत डरो।

सघन अन्धकार छाया हुआ था। ऊपर काला आकाश था, नीचे काला जल। गौरा आकाश की ओर ताक रही थी। उसकी संगिनी जल की ओर। उसके सामने आकाश के कुसुम थे, इसके आगे अनन्त, अखण्ड, अपार अन्धकार था।

जहाज़ से उतरते ही एक आदमी ने यात्रियों के नाम लिखने शुरू किये। इसका पहनाव तो अंग्रेज़ी था, पर वह बातचीत से हिन्दुस्तानी मालूम होता था। गौरा सिर झुकाये अपनी संगिनी के पीछे खड़ी थी। उस आदमी की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ी। उसने दबी आँखों से उसकी ओर देखा। उसके समस्त शरीर में सनसनी-सी दौड़ गई। क्या स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ? आँखों पर विश्वास न आया, फिर उस पर निगाह डाली। उसकी छाती वेग से धड़कने लगी। पैर थर-थर काँपने लगे। ऐसा मालूम होने लगा मानो चारों ओर जल-ही-जल है, और मैं उसमें बही जा रही हूँ। उसने अपनी संगिनी का हाथ पकड़ लिया, नहीं तो ज़मीन पर गिर पड़ती। उसके सम्मुख वही पुरुष खड़ा था, उसका प्राणाधार था और जिससे इस जीवन में भेंट होने की उसे लेशमात्र भी आशा न थी। यह मँगरू था, इसमें ज़रा भी सन्देह न था। हाँ

उसकी सूरत बदल गई थी ! यौवन-काल का वह कान्तिमय साहस, सदय छवि नाम को भी न थी। बाल खिचड़ी हो गये थे, गाल पिचके हुए, लाल आँखों से कुवासना और कठोरता झलक रही थी। पर था वह मँगरू। गौरा के जी में प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी के पैरों से लिपट जाऊँ, चिल्लाने को जी चाहा, पर संकोच ने मन को रोका। बूढ़े ब्राह्मण ने बहुत ठीक कहा था। स्वामी ने अवश्य मुझे बुलाया था और मेरे आने से पहले यहाँ चले आये। उसने अपनी संगिनी के कान में कहा—बहन, तुम उस ब्राह्मण को व्यर्थ ही बुरा कह रही थीं। यही तो वह हैं जो यात्रियों के नाम लिख रहे हैं।

स्त्री—सच, खूब पहचानती हो ?

गौरा—बहन, क्या इसमें भी धोखा हो सकता है ?

स्त्री—तब तो तुम्हारे भाग जग गये। मेरी भी सुध लेना।

गौरा—भला बहन, ऐसा भी हो सकता है कि यहाँ तुम्हें छोड़ दूँ।

मँगरू यात्रियों से बात-बात पर बिगड़ता था, बात-बात पर गालियाँ देता था। कई आदमियों को ठोकर मारे और कई को केवल अपने गाँव का ज़िला न बता सकने के कारण धक्का देकर गिरा दिया। गौरा मन ही-मन गड़ी जाती थी। साथ ही अपने स्वामी के अधिकार पर उसे गर्व भी हो रहा था। आखिर मँगरू उसके सामने आकर खड़ा हो गया और कुचेष्टा-पूर्ण नेत्रों से देखकर बोला—तुम्हारा क्या नाम है ?

गौरा ने कहा—गौरा।

मँगरू चौंक पड़ा, फिर बोला—घर कहाँ है ?

गौरा ने कहा—मदनपुर, ज़िला बनारस।

यह कहते-कहते उसे हँसी आ गई। मँगरू ने अबकी उसकी ओर ध्यान से देखा, तब लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला—गौरा! तुम यहाँ कहाँ? मुझे पहचानती हो ?

गौरा रो रही थी, मुँह से बात न निकली।

मँगरू फिर बोला—तुम यहाँ कैसे आई ?

गौरा खड़ी हो गई, आँसू पोंछ डाले और मँगरू की ओर देखकर बोली—तुम्हीं ने तो बुला भेजा था।

मँगरू—मैंने! मैं तो सात साल से यहाँ हूँ।

गौरा—तुमने उस बूढ़े ब्राह्मण से मुझे लाने को नहीं कहा था ?

मँगरू—कह तो रहा हूँ मैं सात साल से यहाँ हूँ। और मरने पर ही यहाँ से जाऊँगा। भला तुम्हें क्यों बुलाता।

गौरा को मँगरू से इस निष्ठुरता की आशा न थी। उसने सोचा, अगर यह सत्य भी हो कि इन्होंने मुझे नहीं बुलाया, तो भी इन्हें मेरा यों अपमान न करना चाहिए था। क्या यह समझते हैं कि मैं इनकी रोटियों पर आई हूँ। यह तो इतने ओछे स्वभाव के न थे। शायद दरजा पाकर इन्हे मद हो गया है। नारि-सुलभ अभिमान से गरदन उठाकर उसने कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो अब से लौट जाऊँ! तुम्हारे ऊपर भार बनना नहीं चाहती।

मँगरू कुछ लज्जित होकर बोला—अब तुम यहाँ से लौट नहीं सकती गौरा! यहाँ आकर बिरला ही कोई लौटता है :

यह कहकर वह कुछ देर चिन्ता में मग्न खड़ा रहा, मानो सकट में पड़ा हुआ हो कि क्या करना चाहिए। उसकी कठोर मुखाकृति पर दीनता का रग झलक पड़ा। तब कातर स्वर से बोला—जब आ गई हो तो रहो। जैसी कुछ पड़ेगी, देखी जायगी।

गौरा—जहाज़ फिर कब लौटेगा ?

मँगरू—तुम यहाँ से पाँच बरस के पहले नहीं जा सकतीं।

गौरा—क्यों, क्या कुछ जबरदस्ती है!

मँगरू—हाँ, यहाँ का यही हुक्म है।

गौरा—तो फिर मैं अलग मजूरी करके अपना पेट पालूँगी।

मँगरू ने सजल-नेत्र होकर कहा—जबतक मैं जीता हूँ, तुम मुझसे अलग नहीं रह सकतीं।

गौरा—तुम्हारे ऊपर भार बनकर न रहूँगी।

मँगरू—मैं तुम्हे भार नहीं समझता गौरा, लेकिन यह जगह तुम-जैसी देवियों के रहने लायक नहीं है, नहीं तो अब तक मैंने तुम्हें कब का बुला लिया होता। वहीं बूढ़ा आदमी जिसने तुम्हे बहकाया, मुझे घर से आते समय पटने में मिल गया और झाँसे देकर मुझे यहाँ भरती करा दिया। तबसे यहीं पड़ा हुआ हूँ। चलो, मेरे घर में रहो ; वहाँ बातें होंगी। यह दूसरी औरत कौन है ?

गौरा—यह मेरी सखी है, इन्हे भी वही बूढ़ा बहका लाया है।

मँगरू—यह तो किसी कोठी में जायँगी ? इन सब आदमियों की बाँट होगी। जिसके हिस्से में जितने आदमी आयेंगे, उतने हर एक कोठी में भेजे जायँगे।

गौरा—यह तो मेरे साथ रहना चाहती हैं।

मँगरू—अच्छी बात है, उन्हे भी लेतो चलो।

यात्रियों के नाम तो लिखे ही जा चुके थे। मँगरू ने उन्हे एक चपरासी को सौंपकर दोनों औरतों के साथ घर की राह ली। दोनों ओर सघन वृक्षों की कतारें थीं। जहाँ तक निगाह जाती थी, ऊख-ही ऊख दिखाई देती थी। समुद्र की ओर से शीतल, निर्मल वायु के झोंके आ रहे थे। अत्यन्त सुरम्य दृश्य था। पर मँगरू की निगाह उस ओर न थी। वह भूमि की ओर ताकता, सिर झुकाये, सन्दिग्ध चाल से चला जा रहा था। मानो मन-ही-मन कोई समस्या हल कर रहा है।

थोड़ी ही दूर गये थे कि सामने से दो आदमी आते हुए दिखाई दिये। समीप आकर दोनों रुक गये और एक ने हँसकर कहा—मँगरू, इनमें से एक हमारी है।

दूसरा बोला—और दूसरी मेरी।

मँगरू का चेहरा तमतमा उठा था। भीषण क्रोध से काँपता हुआ बोला—यह दोनों मेरे घर की औरतें हैं। समझ गये ?

इन दोनों ने ज़ोर से कहकहा मारा और एक ने गौरा के समीप आकर उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करके कहा—यह मेरी है। चाहे तुम्हारे घर की हो, चाहे बाहर की। बचा हमें चकमा देते हो।

मँगरू—कासिम, इन्हे मत छेड़ो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैने कह दिया, मेरे घर की औरतें हैं।

मँगरू की आँखों से अग्नि-ज्वाला-सी निकल रही थी। वह दोनों उसके मुख का भाव देखकर कुछ सहम गये और समझ लेने की धमकी देकर आगे बढे। किन्तु मँगरू के अधिकार-क्षेत्र से बाहर पहुँचते ही एक ने पीछे से ललकारकर कहा—देखें, कहाँ लेके जाते हो।

मँगरू ने उधर ध्यान न दिया। जरा क़दम बढाकर चलने लगा, जैसे संध्या के एकान्त में हम कब्रिस्तान के पास से गुज़रते हैं, हमे पग-पग पर यह शका होती है कि कोई शब्द कान मे न पड़ जाय, कोई सामने आकर खड़ा न हो जाय, कोई ज़मीन के नीचे से कफन ओढे उठ न खड़ा हो।

गौरा ने कहा—यह दोनों बड़े सोहदे थे।

मँगरू—और मैं किसलिए कह रहा था कि यह जगह तुम-जैसी स्त्रियों के रहने लायक नहीं है।

सहसा दाहिनी तरफ से एक अंग्रेज घोड़ा दौड़ाता हुआ आ पहुँचा और मँगरू से बोला—वेल जमादार, यह दोनों औरतें हमारी कोठी में रहेगा। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं है।

मँगरू ने दोनों औरतों को अपने पीछे कर लिया और सामने खड़ा होकर बोला—साहब, यह दोनों हमारे घर की औरतें हैं।

साहब—ओ हो! तुम झूठा आदमी। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं और तुम दो ले जायगा। ऐसा नहीं हो सकता। (गौरा की ओर इशारा करके) इसको हमारे कोठी पर पहुँचा दो।

मँगरू ने सिर से पैर तक काँपते हुए कहा—ऐसा नहीं हो सकता।

मगर साहब आगे बढ़ गया था, उसके कान में बात न पहुँची। उसने हुक्म दे दिया था और उसकी तामील करना जमादार का काम था।

शेष मार्ग निर्विघ्न समाप्त हुआ। आगे मजूरों के रहने के मिट्टी के घर थे। द्वारों पर स्त्री, पुरुष जहाँ-तहाँ बैठे हुए थे। सभी इन दोनों स्त्रियों की ओर घूरते थे और आपस में इशारे करके हँसते थे। गौरा ने देखा उनमें छोटे-बड़े का लिहाज़ नहीं है, न किसीकी आँख में शर्म है।

एक भदैसल औरत ने हाथ पर चिलम पीते हुए अपनी पड़ोसिन से कहा—चार दिन की चाँदनी, फिर अन्धेरा पाख।

दूसरी अपनी चोटी गूँथती हुई बोली—कलोर हैं न!

(८)

मँगरू दिन-भर द्वार पर बैठा रहा, मानो कोई किसान अपने मटर के खेत की रखवाली कर रहा हो। कोठरी में दोनों स्त्रियाँ बैठी अपने नसीबों को रो रही थीं। इतनी ही देर में दोनों को यहाँ की दशा का परिचय हो गया था। दोनों भूखी-प्यासी बैठी थीं। यहाँ का रंग देखकर भूख-प्यास सब भाग गई थी।

रात के दस बजे होंगे कि एक सिपाही ने आकर मँगरू से कहा—चलो, तुम्हें जण्ट साहब बुला रहे हैं।

मॅंगरू ने बैठे-बैठे कहा—देखो नब्बी, तुम भी हमारे देश के आदमी हो। कोई मौक़ा पड़े तो हमारी मदद करोगे न? जाकर साहब से कह दो, मॅंगरू कहीं गया है। बहुत होगा जुरबाना कर देंगे।

नब्बी—न भैया, गुस्से मे भरा बैठा है, पिये हुए है, कहीं मार चले तो बस, यहाँ चमड़ा इतना मज़बूत नहीं है।

मॅंगरू—अच्छा तो जाकर कह दो, नहीं आता।

नब्बी—मुझे क्या, जाकर कह दूँगा, पर तुम्हारी खैरियत नहीं है।

मँगरू ने ज़रा देर सोचकर लकड़ी उठाई और नब्बी के साथ साहब के बँगले पर चला। यह वही साहब थे, जिनसे आज मॅंगरू से भेंट हुई थी। मॅंगरू जानता था कि साहब से विगाड़ करके यहाँ एक क्षण भी निर्वाह नहीं हो सकता। जाकर साहब के सामने खड़ा हो गया। साहब ने दूर ही से डाटा, वह औरत कहाँ है? तुम उसे अपने घर में क्यों रखा है?

मॅंगरू—हजूर वह मेरी ब्याहता औरत है।

साहब—अच्छा, वह दूसरा कौन है?

मँगरू—वह मेरी सगी बहन है हुजूर।

साहब—हम कुछ नही जानता। तुमको लाना पड़ेगा। दो में से कोई, दो में से कोई।

मॅंगरू पैरों पर गिर पड़ा और रो-रोकर अपनी सारी रामकहानी सुना गया। पर साहब ज़रा भी न पसीजे। अन्त में वह बोला—हुजूर, वह दूसरी औरतों की तरह नहीं हैं। अगर यहाँ आ भी गईं, तो प्राण दे देंगी।

साहब ने हँसकर कहा—ओ! जान देना इतना आसान नहीं है।

नब्बी—मॅंगरू अपनी दाँव रोते क्यों हो? तुम हमारे घर में नहीं घुसे थे? अब भी जब घात पाते हो जा पहुँचते हो, अब रोते क्यों हो?

एजेण्ट—ओ, यह बदमाश है। अभी जाकर लाओ, नहीं तो हम तुमको हण्टरों से पीटेगा।

मॅंगरू—हजूर जितना चाहें पीट लें। मगर मुझसे वह काम करने को न कहें, जो मैं जीते-जी नहीं कर सकता।

एजेण्ट—हम एक सौ हण्टर मारेगा।
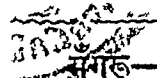
मँगरू—हजूर एक हज़ार हण्टर मार लें, लेकिन मेरे घर की औरत से न बोलें।

एजेण्ट नशे में चूर था। हण्टर लेकर मँगरू पर पिल पड़ा और लगा सड़ासड़ जमाने। दस-बारह कोड़े तो मँगरू ने धैर्य के साथ सहे, फिर हाय-हाय करने लगा। देह की खाल फट गई थी और मास पर जब चाबुक पड़ता था तो बहुत ज़ब्त करने पर भी कण्ठ से आर्त्त-ध्वनि निकल आती थी और अभी एक सौ में कुल पन्द्रह चाबुक पड़े थे।

रात के दस बज गये थे। चारों ओर सन्नाटा छाया था और उस नीरव अंधकार में मँगरू का करुण-विलाप किसी पक्षी की भाँति आकाश में मँडला रहा था। वृक्षों के समूह भी हत्-बुद्धि-से खड़े मौन रोदन की मूर्ति बने हुए थे। यह पाषाणहृदय, लम्पट, विवेक-शून्य जमादार इस समय एक अपरिचित स्त्री के सतीत्व की रक्षा करने के लिए अपने प्राण तक देने पर तयार था, केवल इस नाते कि यह उसके पत्नी की सगिनी थी। वह समस्त संसार की नज़रों में गिरना गवारा कर सकता था, पर अपनी पत्नी की भक्ति पर अखण्ड राज्य करना चाहता था। इसमें अणुमात्र की कमी भी उसके लिए असह्य थी। उस अलौकिक भक्ति के सामने उसके जीवन का क्या मूल्य था?

× × × ×

ब्राह्मणी तो ज़मीन पर ही सो गई थी, पर गौरा बैठी पति की बाट जोह रही थी। अभी तक वह उससे कोई बात न कह सकी थी। सात वर्षों की विपत्ति कथा कहने और सुनने के लिए बहुत समय की ज़रूरत थी, और रात के सिवा वह समय फिर कब मिल सकता था। उसे ब्राह्मणी पर कुछ क्रोध-सा आ रहा था कि यह क्यों मेरे गले का हार हुई। इसीके कारण तो वह घर में नहीं आ रहे हैं।

यकायक वह किसीका रोना सुनकर चौंक पड़ी। भगवान्, इतनी रात गये कौन दुख का मारा रो रहा है! अवश्य कोई कहीं मर गया है। वह उठकर द्वार पर आई और यह अनुमान करके कि मँगरू यहाँ बैठा हुआ है, बोली—वह कौन रो रहा है? जरा देखो तो।

लेकिन जब कोई जवाब न मिला तो वह स्वयं कान लगाकर सुनने लगी। सहसा उसका कलेजा धक्-से हो गया। यह तो उन्हीं की आवाज है। अब आवाज़ साफ

सुनाई दे रही थी। मँगरू की आवाज़ थी। वह द्वार के बाहर निकल आई। उसके सामने एक गोली के टप्पे पर एजेण्ट का बँगला था। उसी तरफ से आवाज़ आ रही थी। कोई उन्हें मार रहा है। आदमी मार पड़ने ही पर इस तरह रोता है। मालूम होता है, वही साहब उन्हें मार रहा है। वह वहाँ खड़ी न रह सकी, पूरी शक्ति से उस बँगले की ओर दौड़ी, रास्ता साफ था। एक क्षण में वह फाटक पर पहुँच गई। फाटक बन्द था। उसने ज़ोर से फाटक पर धक्का दिया, लेकिन वह फाटक न खुला और कई बार ज़ोर-जोर से पुकारने पर भी कोई बाहर न निकला तो वह फाटक के जँगलों पर पैर रख के भीतर कूद पड़ी और उस पार जाते ही उसने एक रोमांचकारी दृश्य देखा। मँगरू नंगेबदन बरामदे में खड़ा था और एक अँग्रेज उसे हण्टरों से मार रहा था। गौरा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह एक छलाँग में साहब के सामने जाकर खड़ी हो गई और मँगरू को अपने अक्षय-प्रेम-सबल हाथों से ढककर बोली—सरकार, दया करो, इनके बदले मुझे जितना चाहो मार लो, पर इनको छोड़ दो।

एजेण्ट ने हाथ रोक लिया और उन्मत्त की भाँति गौरा की ओर कई कदम आकर बोला—हम इसको छोड़ दें तो तुम यहाँ मेरे पास रहेगा।

मँगरू के नथने फड़कने लगे। यह पामर, नीच अंग्रेज मेरी पत्नी से इस तरह की बातें कर रहा है। अब तक वह जिस अमूल्य रत्न की रक्षा के लिए इतनी यातनाएँ सह रहा था, वही वस्तु साहब की हाथ में चली जा रही है, यह असह्य था। उसने चाहा कि लपककर साहब की गरदन पर चढ बैठूँ, जो कुछ होना है हो जाय, यह अपमान सहने के बाद जीकर ही क्या करूँगा? लेकिन नब्बी ने उसे तुरन्त पकड़ लिया और कई आदमियों को बुलाकर उसके हाँथ-पाँव बाँध दिये। मँगरू भूमि पर छटपटाने लगा॥

गौरा रोती हुई साहब के पैरों पर गिर पड़ी और बोली—हजूर, इन्हें छोड़ दें, मुझ पर दया करें।

एजेण्ट—तुम हमारे पास रहेगा?

गौरा ने खून का घूँट पीकर कहा—हाँ रहूँगी।

(९)

बाहर मँगरू बरामदे में पड़ा कराह रहा था। उसकी देह में सूजन थी और घावों

में जलन, सारे अंग जकड़ गये थे। हिलने की भी शक्ति न थी। हवा घावों में शर के समान चुभती थी, लेकिन यह सारी व्यथा वह सह सकता था। असह्य यह था कि साहब गौरा के साथ इसी घर मे विहार कर रहा है और मैं कुछ नहीं कर सकता। उसे अपनी पीड़ा भूल-सी गई थी, कान लगाये सुन रहा था कि उनकी बातों की भनक कान में पड़ जाय, देखूँ क्या बातें हो रही हैं। गौरा अवश्य चिल्लाकर भागेगी और साहब उसके पीछे दौड़ेगा। अगर मुझसे उठा जाता तो उस वक्त बचा को खोदकर गाड़ ही देता। लेकिन बड़ी देर हो गई, न तो गौरा चिल्लाई, न बँगले से निकलकर भागी। वह उस सजे-सजाये कमरे में साहब के साथ बैठी सोच रही थी क्या इसमें तनिक भी दया नहीं है? मँगरू का पीड़ा-क्रन्दन सुन-सुनकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। क्या इसके अपने भाई-बद, माँ-बहन नहीं हैं? माता यहाँ होती तो उसे इतना अत्याचार न करने देती। मेरी अम्माँ लड़कों पर कितना बिगड़ती थीं, जब वह किसीको पेड़ पर ढेले चलाते देखती थीं। पेड़ में भी प्राण होते हैं। क्या इसकी माता इसे एक आदमी के प्राण लेते देखकर भी इसे मना न करती। साहब शराब पी रहा था और गौरा गोश्त काटने का छुरा हाथ में लिये खेल रही थी।

सहसा गौरा की निगाह एक चित्र की ओर गई। उसमें एक माता बैठी हुई थी। गौरा ने पूछा—साहब, यह किसकी तसवीर है। साहब ने शराब का ग्लास मेज़ पर रखकर कहा—और वह हमारे खुदा की माँ मरियम है।

गौरा—बड़ी अच्छी तसवीर है। क्यों साहब, तुम्हारी माँ जीती हैं न!

साहब—वह मर गया। हम जब यहाँ आया तो वह बीमार हो गया। हम उसको देख भी नहीं सका।

साहब के मुख-मण्डल पर करुणा की झलक दिखाई दी।

गौरा बोली—तब तो उन्हे बड़ा दुःख हुआ होगा तुम्हें अपनी माता का भी प्यार नहीं था। वह रो-रोकर मर गई और तुम देखने भी न गये। तभी तुम्हारा दिल इतना कड़ा है।

साहब—नहीं, नहीं, हम अपनी मामा को बहुत चाहता था। वैसा ... दुनिया में न होगा। हमारा बाप हमको बहुत छोटा-सा छोड़कर मर गया था। ... ने कोयले की खान में मजूरी करके हमको पाला।

गौरा—तब तो वह देवी थीं। इतनी गरीबी का दुःख सहकर भी तुम्हे ...

पर तरस नहीं आती। क्या वह दया की देवी तुम्हारी बेदरदी देखकर दुखी न होती होंगी। उनकी कोई तसवीर तुम्हारे पास है?

साहब—ओ. हमारे पास उनके कई फोटो हैं। देखो, वह उन्हींकी तसवीर है, वह दीवाल पर!

गौरा ने समीप जाकर तसवीर देखी और आकर करुण-स्वर में बोली—सचमुच देवी थीं, जान पड़ता है दया की देवी हैं। वह तुम्हें कभी मारती थीं कि नहीं? मैं तो जानती हूँ वह कभी किसी पर न बिगड़ती रही होंगी। बिलकुल दया की मूर्ति हैं।

साहब—ओ, मामा हमको कभी नहीं मारता था। वह बहुत गरीब था, पर अपनी कमाई में कुछ-न-कुछ जरूर खैरात करता था। किसी बे-बाप के बालक को देखकर उसकी आँखों में आँसू भर आता था। वह बहुत ही दयावान था।

गौरा ने तिरस्कार के स्वर में कहा—और उसी देवी के पुत्र होकर तुम इतने निर्दयी हो! क्या वह होतीं तो तुम्हे किसी को इस तरह हत्यारों की भाँति मारने देतीं? वह सरग मे रो रही होंगी। सरग-नरक तो तुम्हारे यहाँ भी होगा। ऐसी देवी के पुत्र तुम कैसे हो गये?

गौरा को ये बातें कहते हुए ज़रा भी भय न होता था। उसने अपने मन में एक दृढ़ सकल्प कर लिया था और अब उसे किसी प्रकार का भय न था। जान से हाथ धो लेने का निश्चय कर लेने के बाद भय की छाया भी नहीं रह जाती, किन्तु वह हृदय-शून्य अँग्रेज इन तिरस्कारों पर आग हो जाने के बदले और भी नम्र होता था। गौरा मानवी भावों से कितनी ही अनभिज्ञ हो, पर इतना जानती थी कि अपनी जननी के लिए प्रत्येक हृदय मे, चाहे वह साधु का हो या कसाई का, आदर और प्रेम का एक कोना सुरक्षित रहता है। ऐसा भी कोई अभागा प्राणी है, जिसे मातृ-स्नेह की स्मृति थोड़ी देर के लिए रुला न देती हो, उसके हृदय के कोमल भाव को जगा न देती हो?

साहब की आँखें डबडबा गई थीं। सिर झुकाये बैठा रहा। गौरा ने फिर उसी ध्वनि में कहा—तुमने उनकी सारी तपस्या धूल में मिला दी। जिस देवी ने मर-मरकर तुम्हारा पालन किया, उसीको मरने के पीछे तुम इतना कष्ट दे रहे हो? क्या इसीलिए माता अपने पुत्र को अपना रक्त पिला-पिलाकर पालती है? अगर वह बोल सकतीं तो क्या चुप बैठी रहतीं, तुम्हारे हाथ पकड़ सकतीं तो न पकड़तीं? मैं तो समझती हूँ, वह जीती होतीं तो इस वक्त विष खाकर मर जातीं।

साहब अब जब्त न कर सके। नशे में क्रोध की भाँति ग्लानि का वेग भी ही में उठ आता है। दोनों हाथों से मुँह छिपाकर साहब ने रोना शुरू किया, इतना रोया कि हिचकी बँध गई। माता के चित्र के सम्मुख जाकर वह कुछ देर खड़ा रहा, मानो माता से क्षमा माँग रहा हो। तब आकर आर्द्र-कण्ठ से वे हमारे मामा को अब कैसे शान्ति मिलेगा! हाय-हाय! हमारे सबब से उसको मे भी सुख नहीं मिला। हम कितना अभागा है!

गौरा—अभी ज़रा देर में तुम्हारा मन बदल जायगा और तुम फिर दूसरों यही अत्याचार करने लगोगे।

साहब—नहीं, नहीं, अब हम मामा को कभी दुख नहीं देगा। हम अभी को अस्पताल भेजता है।

(१०)

रात ही को मँगरू अस्पताल पहुँचा दिया गया। एजेण्ट खुद उसको पहुँचा आया। गौरा भी उसके साथ थी। मँगरू को ज्वर हो आया था, बेहोश पड़ा हुआ

मँगरू ने तीन दिन आँखें न खोलीं और गौरा तीनों दिन उसके पास बैठी एक क्षण के लिए भी वहाँ से न हटी। एजेण्ट भी कई बार हाल-चाल पूछने जाता और हर मरतबा गौरा से क्षमा माँगता।

चौथे दिन मँगरू ने आँखें खोली तो देखा गौरा सामने बैठी हुई है। गौरा आँखें खोलते देखकर पास आ खड़ी हुई और बोली—अब कैसा जी है?

मँगरू ने कहा—तुम यहाँ कब आई?

गौरा—मैं तो तुम्हारे साथ ही यहाँ आई थी, तब से यहीं हूँ।

मँगरू—साहब के बँगले मे क्या जगह नहीं है?

गौरा—अगर बँगले की चाह होती तो सात समुद्र पार तुम्हारे पास क्यों

मँगरू—आकर कौन-सा सुख दे दिया है। तुम्हें यही करना था तो मुझे क्यों न जाने दिया?

गौरा ने झुँझलाकर कहा—तुम इस तरह की बातें मुझसे न करो। ऐसी से मेरी देह में आग लग जाती है।

मँगरू ने मुँह फेर लिया, मानो उसे गौरा की बात पर विश्वास नहीं आया दिन-भर गौरा मँगरू के पास बे दाना-पानी खड़ी रही। गौरा ने कई बार

बुलाया, लेकिन वह चुप्पी साधे रह गया। यह सदेह-युक्त निरादर कोमलहृदय गौरा के लिए असह्य था। जिस पुरुष को वह देव-तुल्य समझती थी, उसके प्रेम से वंचित होकर वह कैसे जीवित रह सकती थी? यही प्रेम उसके जीवन का आधार था। उसे खोकर अब वह अपना सर्वस्व खो चुकी थी।

आधी रात से अधिक बीत चुकी थी। मँगरू बेखबर सोया हुआ था। शायद वह कोई स्वप्न देख रहा था। गौरा ने उसके चरणों पर सिर रखा और अस्पताल से निकली। मँगरू ने उसे परित्याग कर दिया था। वह भी उसका परित्याग करने जा रही थी।

अस्पताल के पूर्व दिशा मे एक फर्लाङ्ग पर एक छोटी-सी नदी बहती थी। गौरा उसके कगार पर खड़ी हो गई। अभी कई दिन पहले वह अपने गाँव में आराम से पड़ी हुई थी। उसे क्या मालूम था कि जो वस्तु इतनी मुश्किल से मिल सकती है, वह इतनी आसानी से खोई भी जा सकती है। उसे अपनी माँ की, अपने घर की, अपनी सहेलियों की, अपने बकरी के बच्चों की याद आई। वह सब कुछ छोड़कर इसीलिए यहाँ आई थी! पति के ये शब्द—'क्या साहब के बँगले मे जगह नहीं है' उनके मर्मस्थान मे बाणों के समान चुभे हुए थे। यह सब मेरे ही कारण तो हुआ? मैं न रहूँगी तो वह फिर आराम से रहेंगे। सहसा उसे ब्राह्मणी की याद आ गई। उस दुखिया के दिन यहाँ कैसे कटेंगे। चलकर साहब से कह दूँ कि उसे या तो उसके घर भेज दें या किसी पाठशाला मे काम दिला दें।

वह लौटा ही चाहती थी कि किसीने पुकारा—गौरा! गौरा!!

वह मँगरू का करुण-कम्पित स्वर था। वह चुपचाप खड़ी हो गई। मँगरू ने फिर पुकारा—

गौरा। गौरा! तुम कहाँ हो, मैं ईश्वर से कहता हूँ कि ‥ .

गौरा ने और कुछ न सुना। वह धम से नदी मे कूद पड़ी। बिना अपने जीवन का अन्त किये वह स्वामी की विपत्ति का अन्त न कर सकती थी!

धमाके की आवाज़ सुनते ही मँगरू भी नदी में कूदा। वह अच्छा तैराक था। मगर कई बार गोते मारने पर भी गौरा का कहीं पता न चला।

प्रातःकाल दोनों लाशें साथ-साथ नदी में तैर रही थीं। जीवन-यात्रा मे उन्हें यह चिर-संग कभी न मिला था। स्वर्ग-यात्रा मे दोनों साथ-साथ जा रहे थे!!